* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

Recd
5/5/86

कल्याण

गी० १०८

स्वामीनाथ



वर्ष ६०] 'आँगन फिरत घुटरुवनि धाये' [संख्या ३

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,६५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर चैत्र, श्रीकृष्ण-संवत् ५२११, मार्च १९८६

चित्र-सूची

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य भारतमें १.२५ रु० विदेशमें १५ पैंस

जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य भारतमें ३०.०० रु० विदेशमें ८०.००रु० (५ पौण्ड)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका

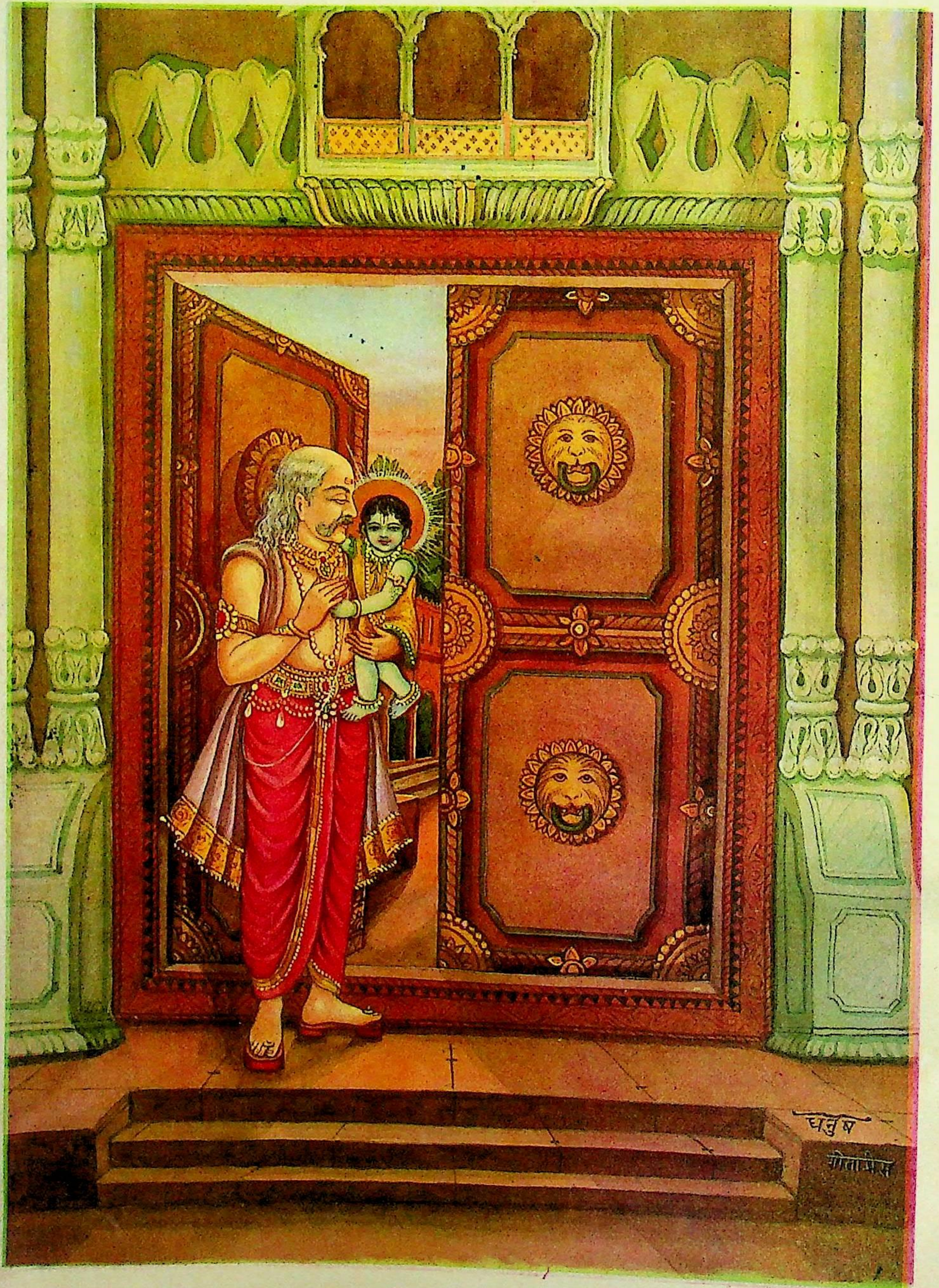
गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

(भारत-सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



पिताकी गोदमें श्रीराम

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥





कल्याण

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ॥

वर्ष ६० } गोरखपुर, सौर चैत्र, श्रीकृष्ण-संवत् ५२११, मार्च १९८६ ई० { संख्या ३ पूर्ण संख्या ७१२

महाराज दशरथकी गोदमें श्रीराम

अवधेसके द्वारें सकारें गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे ।
अवलोकि हौं सोच-विमोचनको ठगि-सी रही, जे न ठगे धिक-से ॥
तुलसी मन-रंजन रंजित-अंजन नैन सुखंजन-जातक-से ।
सजनी ससिमें समसील उभै नवनील सरोरुह-से बिकसे ॥

(अयोध्याकी कोई युवती अपनी किसी सखीसे कहती है—) मैं आज सवेरे अयोध्यापति महाराज दशरथके द्वारपर गयी थी । उसी समय महाराज पुत्रको गोदमें लिये बाहर आये । मैं तो उनके सकल शोकहारी शिशुको देखकर ठगी-सी रह गयी । उन्हें देखकर जो मोहित न हों, उन्हें धिक्कार है । शिशुके अञ्जन-रञ्जित मनोहर नेत्र खञ्जन-पक्षि-शावकके नयन-जैसे थे । हे सखि ! वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो चन्द्रमाके भीतर दो समान रूपवाले नवीन नील-कमल खिले हुए हों ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कल्याण

वाणीका संयम करनेका एक ही उपाय है—भगवन्नाम-जप एवं स्वाध्यायको वाणीका विषय बना लेना। जीभके लिये भगवान्‌के नामका जप ही एकमात्र काम रह जाय, दूसरे किसी भी कामके लिये उसमेंसे समय निकालना न पड़े। जो व्यक्ति इस प्रकारका जीवन बना लेता है, वह जहाँ रहता है, वहीं उसके द्वारा जगत्‌को एक बहुत बड़ी चीज अपने-आप अनायास ही मिलती रहती है।

वाणीको भगवान्‌के नाममें लगा दे। कम-से-कम जितनी बात, जब जिस रूपमें बोलनी आवश्यक हो, उतनी ही, उस रूपमें बोले, बाकी समयमें अपनेको मौन-सा करके भगवान्‌के नामका जप करता रहे। जीभसे भगवान्‌का नाम लेता रहे और अपने कानोंद्वारा उसे सुनता रहे।

जीभ स्थूल अङ्ग है; कर्मेन्द्रिय है पर यदि यह भगवान्‌के नामके साथ लगी रहती है तो यह जीवनको उत्तम स्तरपर खींच ले जाती है। फिर तो जीवनके अन्तमें भगवान्‌का नाम मुखसे आया कि काम बना।

भगवान्‌के नाम-जपका अभ्यास होनेके बाद मनसे सोचते और हाथसे काम करते रहनेपर भी अभ्यासवश जीभसे नाम अपने-आप निकलता रहेगा। सारे शास्त्रोंके सत्संगका (स्वाध्यायका) फल भी तो यही है कि भगवान्‌के नाममें रुचि हो जाय।

श्रीभगवान्‌के एक भी गुणका रहस्य, एक भी नामकी महिमा, एक भी चरित्रका प्रभाव, एक भी शक्तिका तत्त्व जान लिया जाय अथवा एक भी रूपकी जरा-सी भी झाँकीका ज्ञान हो जाय तो फिर भगवान्‌से क्षणभरके लिये भी चित्त न हटे।

मनमें यह विश्वास होना चाहिये कि नाम भगवान् ही हैं। भगवान् जब मेरी जिह्वापर आ गये तो भगवान्‌के सारे दिव्य गुण मेरे भीतर आ गये। भगवान्‌के गुणोंको अपने अन्दर उतरता देखे—'करुणा, दया, प्रेम, अहिंसा, अस्तेय आदि गुण मुझमें आ रहे हैं। नाम मुँहमें आते ही अपनेको माने—'मैं पवित्र हूँ, मैं सर्वथा पवित्र हूँ।'

नाम-नामी एक हैं, अतएव भगवान्‌के नाम-जपके समय यह अनुभव करे कि 'भगवान् मेरे हृदयमें आ रहे हैं, भगवान्‌की झाँकी मेरे हृदयमें उतर रही है'। नामकी शरण हो जाय—दूसरे किसी साधनकी आकाङ्क्षा एवं अपेक्षा न करे। भगवान्‌के नामपर अपनेको निर्भर कर दे। नाम सर्वशक्तिमान् है—यह विश्वास करके उसीपर निर्भर हो जाय अर्थात् अपनेको उसपर छोड़कर निश्चिन्त हो जाय। अपना भला कब, कैसे होगा, इसके विषयमें निश्चिन्त हो जाय। शरणागत कुछ माँगता नहीं, वह कुछ चाहता नहीं, वह भगवान्‌पर ही निर्भर रहता है—सब प्रकारसे। अपना भला किसमें है, इसका निश्चय भी वह नहीं करता। वह भगवान्‌से कहता है—'मेरा भला किसमें है तथा उसे कैसे प्राप्त करना है—यह आप जानें। नाथ! मेरी तो एक ही भावना है—आपकी शक्तिसे ही सब काम होगा और वही काम होगा, जो आप चाहेंगे।' आप वही चाहेंगे जिसमें मेरी भलाई होगी।

श्रीभगवान्‌पर विश्वास रखकर उनका नाम-जप करना चाहिये और उनकी कृपापर भरोसा करके अपनेको सर्वतोभावसे उन्हींपर छोड़ देना चाहिये।

संतों-महात्माओंकी दृष्टिमें सबसे सरल साधन है—नामका अभ्यास। मुखसे निरन्तर भगवान्‌के नामका उच्चारण होता रहे और हाथोंसे काम। अभ्यास होनेपर ऐसा होना सर्वथा सम्भव है—बस, **'मुख नामकी ओट लई है'**। विश्वास होगा तो इस नामोच्चारणमात्रसे ही कल्याण हो जायगा।

—**'शिव'**

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

महारसायन

(महात्मा श्रीश्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी महाराज)

[विशेषाङ्क पृष्ठ-संख्या ४५ से आगे]

तृतीय स्पन्दन

क्यों रे, सो रहा है ?

वाह ! कितनी दौड़-धूप और कितना काम कर रहा हूँ—सोऊँगा कैसे ?

क्या दौड़-धूप करना ही जाग्रत् रहना है ? विषयके पीछे दौड़-धूप करना तो निद्राका लक्षण है।

तो फिर किसको जाग्रत् कहते हो ?

जिसकी जिह्वा सर्वदा मेरा नाम लेती है, जिसकी एक भी साँस व्यर्थ नहीं जाती—वही यथार्थमें जाग्रत् है। समयके सदुपयोगमें असमर्थ व्यक्ति ही निद्रित है। वह केवल निद्रित ही नहीं, अपितु महानिद्रित अर्थात् मृत है। जाग, जागकर नाम ले।

नाम ले, नाम ले, यह बात तुम कहते हो, किंतु क्या नामके अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं है ?

हाँ, कर्मयोग और ज्ञानसे भी लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है, किंतु यह कलियुग है। इस युगमें विशुद्ध द्रव्य, शुद्ध मन्त्र और योग्य कर्ता न होनेके कारण यज्ञादि कर्म नहीं हो सकते। त्याग करनेमें समर्थ न होनेके कारण योगमें फल-प्राप्ति दुष्कर है। यति न होनेसे वेदान्त-ज्ञानका अधिकारी नहीं होता। इसलिये तुझ-जैसे जिह्वालोलुप और इन्द्रियलोलुप क्षुद्र प्राणीके लिये नामको छोड़कर दूसरी गति नहीं है। तू उच्च स्वरसे दिग्-दिगन्तको प्रतिध्वनित कर नाम ले। वैखरी-को सिद्ध होने दे।

उच्च स्वरसे नाम न लेनेसे क्या लाभ नहीं होता ?

उच्च स्वरसे नाम लेनेसे सब जीवोंका उपकार होता है। ओह ! तभी तो नरसिंहपुराणमें कहा है—

तं सन्तः सर्वभूतानां निरुपाधिकबान्धवाः।
ये नृसिंह भवन्नाम गायन्त्युच्चैर्मुदान्विताः॥

'नृसिंह ! जो साधुगण तुम्हारा नाम उच्च स्वरसे आनन्द-चित्त होकर गाते हैं, वे ही वास्तवमें सब प्राणियोंके मित्र हैं।' देख, जो गृहमें अथवा वनमें मेरा नाम मन-ही-मन जपता है, वह स्वयं कृतार्थ और पवित्र होता है, उसका कर्मबन्धन दूर होता है, किंतु—

न चैवमेकं वक्तारं जिह्वा रक्षति वैष्णवी।
आश्राव्य भगवत्ख्यातिं जगत् कृत्स्नं पुनाति हि॥

(हरिभक्तिसुधोदय)

'विष्णु-नाम लेनेवाली जिह्वा केवल नाम लेनेवालेकी ही रक्षा करे—ऐसा नहीं, प्रत्युत वह श्रीभगवान्‌की ख्याति समस्त जगद्वासियोंको सुनाकर पवित्र करती है, समझे ! विशेषतः यह कलियुग है। इस युगमें नामको छोड़कर अन्य कोई उपाय नहीं है। नाम-साधना अति सरल साधना है। जिह्वायन्त्रद्वारा मेरे नाम-रूप महामन्त्रकी घोषणा करना ही साधना है।

योगी अथवा ज्ञानी होनेके लिये त्यागकी आवश्यकता है, संयम, अभ्यास करना पड़ता है, किंतु इस नाम-साधनामें कुछ भी नहीं करना पड़ता, केवल निरन्तर नाम लेनेसे ही मैं उस भक्तका हाथ पकड़कर उसे भाव-राज्यमें ले जाता हूँ। 'त्याग'-'त्याग' करके उसे दौड़नेकी आवश्यकता नहीं रहती, त्याग ही उसके पीछे-पीछे दौड़ेगा। जिस प्रकार बादलकी ओर देखते-देखते चातक-की समस्त इन्द्रियाँ निरुद्ध हो जाती हैं, उसी प्रकार अविराम नाम लेते-लेते भक्त बाह्य जगत्‌को भूल जाता है, मैं उसे छातीसे लगा लेता हूँ। मेरा भक्त मेरी छातीपर सिर रखकर सो जाता है—शान्ति मिलती है उसे। उसके सब दुःख निवृत्त हो जाते हैं। क्यों रे, चुप क्यों हो गया ? विश्वास नहीं कर सका ?

नहीं, नहीं, यह नहीं। जब तुम कह रहे हो, तब मैं उस बातपर क्या अविश्वास कर सकता हूँ ? अब मैं सोच रहा हूँ—हाय ! मैंने कितना समय व्यर्थ नष्ट किया। इसलिये कभी यशके लिये, कभी धनकी आशामें,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कभी स्त्रियोंके साथ यह अमूल्य समय यों ही गँवा दिया, इसीलिये बड़ा दुःख हो रहा है। अब तुम्हारे दोनों चरण पकड़कर रोनेकी इच्छा होती है। अश्रुओंसे तुम्हारे चरणोंको धोनेकी इच्छा होती है।

अहा! रो, हृदयका मालिन्य आँसुओंके बिना और किसीसे नहीं धुलता। भक्त पहले आँसुओंके द्वारा अपना हृदय स्वच्छ करता है, तत्पश्चात् मेरे लिये आसन बिछा देता है। देख, मेरे अन्तर और बाह्य पूजाके प्रधान उपचार हैं——अश्रुजल। इस उपचारसे जो मेरी पूजा कर सकता है, उसकी पूजाका फल 'शान्ति' मैं तत्क्षण ही दे देता हूँ। रो, रो, खूब रो। हरि-हरि कहकर रोते-रोते अपने वक्षःस्थलको प्लावित कर दे। आँसू मुझे बड़े प्रिय हैं। मेरा नाम लेकर जो रोता है, उसके हाथ मैं बिक जाता हूँ—

गीत्वा च मम नामानि रुदन्ति मम संनिधौ।
तेषामेव परिक्रीतो नान्यक्रीतो जनार्दनः॥

—आदिपुराण

देखो, निशिदिन विषय-विषपानसे हृदय मरुभूमि बन गया है। आँखें दोनों पथरा गयी हैं। कितना भी 'हरि', 'हरि' करते हैं, किंतु नेत्रोंमें एक बिन्दु अश्रु नहीं आता।

न आये, तब भी तुझसे कहता हूँ——जो मेरा नाम लेता है वह यदि पाषाण, काष्ठ-सदृश भी हो तथापि उसे अभीष्ट फल देता हूँ—**'पाषाणकाष्ठसदृशाय ददाम्यभीष्टम्।'**

तू जगत्में किस लिये आया है? तो फिर कहता हूँ——नाम ले। जगत्में नाम-प्रचार करनेके लिये आया है। नाम ले, नाम ले, नाम ले।

हे रसने! अब नीरव न रहना। वह सुन, महा-मलिनकी पुकार। अविराम कह——

जय रघुनन्दन जय सियाराम।
जानकिवल्लभ सीताराम॥

(क्रमशः)

कसाईके हाथ गाय बेचनेसे सर्वनाश

एक गाँवमें एक धनी वैश्य-घराना था। घर धन-धान्यसे सम्पन्न था और कुटुम्ब बड़ा था। उनके घरमें गायें भी थीं। उनमें एक ऐसी गाय थी जो चरनेके लिये खोलते समय और दुहनेके लिये उठाते समय बहुत तंग करती थी। घरके लोगोंने उसे कसाईके हाथ बेच देनेका निश्चय किया। एक दिन गाँवमें कसाई आया। उन लोगोंने उसके हाथ गाय बेच दी। कसाई जब गायको खोलने लगा, तब रस्सी खोलते ही वह खड़ी हो गयी और कसाईके आगे-आगे चल दी। गाँवके लोगोंने बहुत रोका और कहा कि 'लालजी! गौको वापस ले लो। यह साक्षात् लक्ष्मी है। इसे कसाईके साथ मत जाने दो।' परंतु उन लोगोंने बात नहीं मानी। गायको कसाई ले गया और वह काट डाली गयी!

रातको स्वप्नमें वैश्यने देखा, मानो गोमाता शाप दे रही है——'तूने मेरी वास्तविकता न समझकर मुझे निर्दय कसाईके हाथों बेच दिया, अतः अब शीघ्र ही तेरा सर्वनाश हो जायगा।'

कहना न होगा कि इसके कुछ ही दिनोंके बाद बड़े जोरकी बाढ़ आयी और उसमें उनका तमाम अनाज बह गया। लोगोंके गिरवी रक्खे हुए जेवर-बर्तन खत्तोंमें थे, वे सब-के-सब बह गये। इसके बाद ही प्लेगका प्रकोप हुआ और सात-आठ दिनोंमें ही स्त्री-पुरुष, बच्चे मिलाकर घरके साठ आदमी बेमौत मर गये। इस तरह हरी-भरी धन-धान्य-सम्पन्न गृहस्थी गोमाताके शापसे कुछ ही दिनोंमें उजड़ गयी। जो अन्ततक भी नहीं सँभल सकी है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परमानन्दकी खेती

(ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

'भैया, इतनी दूर कैसे आये ?'—स्वागत करनेके बाद पंजाबमें रहनेवाले मित्रने पूछा । राजपूतानासे पंजाब आनेका कोई कारण विशेष अवश्य होगा, उसने समझ लिया था ।

'मेरे यहाँ अकाल पड़ा हुआ है । लोग दाने-दानेके लिये तरस रहे हैं और क्षुधासे तड़प-तड़पकर प्राण छोड़ रहे हैं । व्याकुल होकर मैं आपके पास आ गया ।'—राजपूतानाके वैश्यने अपने मित्रसे सच्ची बात बता दी । अपने मित्रके पास अन्नका ढेर देखकर वह मन-ही-मन प्रसन्न भी हो रहा था ।

'आप यहाँ आ गये, बड़ा अच्छा किया । आपका ही घर है, आनन्दपूर्वक रहिये ।'—वैश्यके मित्रने बड़े प्रेमसे उत्तरमें कहा ।

'आपके यहाँ तो अन्नराशि बिखरी पड़ी है, पर हमारे देशमें तो अन्नके दर्शन भी किसी भाग्यशालीको होते हैं, वहाँ तो एक-एक दानेके लिये चील्ह-कौओंकी तरह छीना-झपटी हो रही है । आपके यहाँ सहस्रों मन एकत्र गल्लेको देखकर तो मेरे जी-में-जी आ गया ।' वैश्यने स्थिति स्पष्ट की ।

'यहाँ तो भगवत्कृपासे अन्नका अभाव नहीं है । इसमें आश्चर्यकी कोई बात भी नहीं है, यहाँ तो कोई भी आवे उसके लिये अन्नकी कमी नहीं रहेगी । आप तो हमारे मित्र हैं, यहाँ तो सब कुछ आपका ही है । यहाँ आकर आपने बड़ा अच्छा किया ।'—मित्र बोला । वह चतुर और अनुभवी किसान था ।

'आपकी सभी वस्तुएँ हमारी हैं, इसमें तो सन्देह नहीं है, पर मैं जानना चाहता हूँ कि इतनी अन्नराशि आपके पास आयी कहाँसे ?'—वैश्यने चकित होकर पूछा ।

'हमारे यहाँ बराबर खेती होती रहती है । उसीका यह प्रताप है ।' किसान मित्रने वैश्य-बन्धुका समाधान करना चाहा—'आप भी खेती करने लगें तो आपके पास भी अन्नके ढेर लग जायँगे ।'

'बड़ी सुन्दर बात है । कृषिके कार्यमें मैं भी जुट जाऊँगा । पर इसका अनुभव मुझे नहीं है । मेरे पास एक सहस्र रुपये हैं । इतनेसे खेती आरम्भ हो सकती है क्या ?'—वैश्यने पूछा ।

'एक हजारकी पूँजी कम नहीं है । इतने रुपयेसे खेतीका काम आप बड़ी सुन्दरतासे आरम्भ कर सकते हैं । मेरा पूरा सहयोग रहेगा ही ।'—किसानने सहानुभूतिपूर्ण शब्दोंमें अपने वैश्य मित्रसे कहा ।

'मुझे तो इसका कोई ज्ञान नहीं है । आप जैसा उचित समझें, करें ।' अपनी समस्त पूँजी किसानके हाथमें समर्पित करते हुए वैश्यने जवाब दिया ।

× × ×

'देखिये, ये तो सब गेहूँ मिट्टीमें मिल गये । गेहूँका एक-एक दाना फूटकर नष्ट हो गया ।'—अत्यन्त निराश होकर वैश्यने कहा । उसने अपने पंजाबी किसान मित्रके किसी काममें बाधा नहीं दी थी । किसानने मित्रकी पूँजीसे बीज आदिका प्रबन्ध करवाकर हल चलवा दिया था । बीज बो दिये गये थे, पर, अनुभवहीन वैश्य यह सब देखकर चिन्तित हो रहा था । दो-तीन दिन भी नहीं बीतने पाये कि वह खेतमें जाकर खोदकर गेहूँके दाने देखने लगा । उसे बहुत-से बीज अंकुरित दीखे, इसपर उसने समझा कि मेरे सारे रुपये मिट्टीमें मिल गये । अत्यन्त दुखी होकर उसने अपने मित्रसे उपर्युक्त बात कही ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

'आपके खेतमें अंकुर निकलने शुरू हो गये हैं। आप कोई चिन्ता न करें। बीजके लक्षण अच्छे हैं। आपको पता नहीं है।'—किसान मित्रने वैश्यको आश्वासन दिया।

'मुझे तो धन और श्रमका व्यय करनेपर भी कोई लाभ होता नहीं दीखता। मैं तो बहुत चिन्तित हो गया हूँ।'—वैश्यने मनकी व्यथा-कथा स्पष्टतः व्यक्त कर दी।

'प्रारम्भमें ऐसा ही होता है। आप निश्चिन्त रहें। आपकी खेती बड़ी सुन्दर हो रही है।'—किसान मित्रने बड़े प्रेमसे उत्तर दिया।

वैश्य चुप था। इसके अतिरिक्त उसका बश ही क्या था ?

× × ×

'मेरे खेतमें तो सर्वत्र घास-ही-घास दीख रही है। मुझे तो बड़ी हानि हुई। मेरा सारा रुपया व्यर्थ गया।'—वैश्यने थोड़े ही दिनोंमें फिर किसानसे कहा। एक-एक बित्ते गेहूँके पौधोंको उसने घास समझ लिया था।

घबराया हुआ किसान स्वयं खेतपर गया, पर वहाँ खेती देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई।

'अरे! आपका खेत तो आस-पासके सभी खेतोंसे बढ़कर है'—किसानने हतोत्साह मित्रका भ्रम निवारण किया—'आप समझ लें कि अब गेहूँका विशाल ढेर आपके पास एकत्र होनेवाला ही है। पर इस बातका ध्यान अवश्य रखें कि ये पौधे सूखने न पावें। इन सुकुमार पौधोंका जीवन पानी है। इसकी व्यवस्था आप शीघ्र कर लें। इनकी सिंचाईके लिये आप शीघ्र ही एक कुँआ खोदवा लें। साथ ही खेतके चारों ओर काँटोंकी बाड़ लगाकर रूँध दें, नहीं तो दूसरेके जानवर आकर इसे चर जायँगे। खेतकी रखवाली आपको सावधानीसे करनी होगी।'

'आपकी प्रत्येक आज्ञाका मैं शब्दशः पालन करूँगा।'—वैश्यने कहा। और वैसा ही किया। कुँआ खोदकर खूब सिंचाई की। भगवत्कृपासे बीच-बीचमें बादल-दलने भी जल-वर्षण किया। पौधे बढ़ने लगे।

× × ×

'पौधेके बीच-बीचमें जो घासें उग आयी हैं, उन एक-एक घासका निरान कर डालिये। ये गेहूँकी वृद्धिके बाधक हैं।'—एक दिन खेतपर आकर किसानने वैश्यको प्रेमभरे शब्दोंमें परामर्श दिया।

'एक घास भी खेतमें नहीं रह पायेगी'—वैश्यने तुरंत उत्साहपूर्ण शब्दोंमें उत्तर दिया।

× × ×

'गेहूँके दाने तो हो गये, पर ये तो सब-के-सब कच्चे ही हुए हैं।'—माथेका पसीना पोंछते हुए वैश्यने किसान बन्धुसे कहा। वह खेतसे दौड़ता आया था और जोरोंसे हाँफ रहा था। उसने अपने किसान मित्रके परामर्शानुसार अपने खेतमें घासका कोई चिह्न भी अवशिष्ट नहीं रहने दिया था। उसका परिश्रम अतुलनीय था। गेहूँमें बालियाँ भी लगी थीं, पर इतने दिनों बाद उसने देखा तो सब-की-सब बालियाँ कच्ची ही थीं। खेतीके ज्ञानसे शून्य होनेके कारण वह गरीब घबरा गया था। उसने समझा—रुपयेके साथ-साथ मेरी एँड़ी-चोटीका पसीना भी व्यर्थ सिद्ध हो रहा है। उसने दो-तीन बालियाँ भी किसानके सामने रख दीं, जिन्हें वह साथ ही लेता आया था।

'आपके गेहूँके दाने तो बड़े पुष्ट हैं। ये अब जल्दी ही पक जायँगे। अब इसमें विलम्ब नहीं होगा; घबराएँ नहीं। किसी प्रकारका विचार भी न करें। आपके घरमें गेहूँ और भूसेका पहाड़ लग जायगा।'—प्रसन्नताभरे शब्दोंमें किसानने वैश्यसे कहा। 'पर ऐसे समय पक्षी आ-आकर काकली—मीठी-मीठी बोली सुनाते हैं और सब दाने खा जाया करते हैं, अतः खेतीकी खूब रक्षा करनी होगी। पक्षियोंसे रक्षा किये बिना पक्षी सारे खेतका नाश कर डालेंगे।'

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

× × ×

'मैं आपका कृतज्ञ हूँ । मेरे आनन्दकी सीमा नहीं है । मेरे पास गेहूँका विशाल ढेर लग गया है'—वैश्यने आनन्दभरे शब्दोंमें किसान मित्रका आभार प्रदर्शन किया ।

'यह सब भगवान्‌की कृपा और आपके श्रमका फल है । आप पक्षियोंके कलरवपर ध्यान न देकर उन्हें उड़ानेमें ही लगे रहते थे । आपने बड़ी तत्परतासे कृषिकी रक्षा की थी ।'—किसानने वैश्यबन्धुको ही यश दिया ।

वैश्य नतमस्तक हो गया । उसकी आकृतिपर आनन्द हँस रहा था ।

× × ×

यह कहानी एक दृष्टान्तरूपसे कही गयी है । इसे परमार्थ-विषयमें इस प्रकार घटाना चाहिये कि सच्चे सुखकी प्राप्तिके लिये साधन करनेवालेको यहाँ अकाल-पीड़ित वैश्य समझना चाहिये । सांसारिक कष्टोंकी ज्वालासे उत्पन्न सच्चे सुखकी साधककी अभिलाषाको अकालपीड़ित वैश्यकी भूखकी ज्वालाके कारण अन्नकी आवश्यकता समझनी चाहिये । महात्माको पंजाबमें रहनेवाला वैश्यका किसान-मित्र समझना चाहिये । वैश्यका जो राजपूतानासे अपने मित्रके पास पंजाब जाना है, यही साधकका अपने घरसे महात्माके आश्रममें महात्माके पास जाना है । मित्रके पास जाकर वैश्यका जो अपने कष्टकी बात कहना है, यही जिज्ञासु साधकका महात्माको अपना दुःख निवेदन करना है । वैश्य भाईका जो अपनी सम्पूर्ण पूँजी मित्रको सौंप देना है, यही साधकका अपने मानव-जीवनका अवशेष समय महात्माके चरणोंमें समर्पित करना है । मित्रके कहे अनुसार जो धन खर्च करना है, यही महात्माके आज्ञानुसार समयका सदुपयोग करना है । किसान मित्रका जो जमीन और बीजका प्रबन्ध करवा देना है, इसको महात्माका समयको सदुपयोगमें लानेकी शिक्षा देना समझना चाहिये । खेतीके लिये जो अपने सुखका त्याग करना है, इसको परम आनन्दकी प्राप्तिके लिये वर्तमान सांसारिक सुखका त्याग करना समझना चाहिये । बीजका जो खेतमें बो देना है, इसको महात्माके द्वारा प्राप्त साधनके बीजमन्त्रका हृदयमें धारण करना समझना चाहिये । खेती करनेसे खेतमें बीजोंका अंकुर फूटनेपर बेसमझीके कारण दुःख और निराशाका अनुभव होनेको साधनकालमें होनेवाली निराशा और तज्जनित क्लेश समझना चाहिये । वैश्यका भ्रमसे गेहूँके छोटे पौधोंको जो घास समझना है, यही साधनकालमें साधनकी उन्नति होनेपर भी साधनमें परिश्रम अधिक होनेके कारण उसे भ्रमसे साधन न समझकर व्यर्थ समझना है । मन और इन्द्रियोंके संयमको बाड़ समझना चाहिये । अध्यात्मविषयको सांसारिक स्वार्थी मनुष्योंके सम्पर्कमें खर्च नहीं करना ही पशुओंसे खेतको बचाना है । भगवान्‌के नामका जप, गुण-प्रभावसहित उनके रूपकी स्मृति और स्वाध्यायको खेतको कुँआ खोदकर सींचते रहना समझना चाहिये । अपने-आप जप-ध्यानका अभ्यास चलनेको ईश्वर-कृपासे समयपर स्वतः वर्षा हो जाना समझना चाहिये । दुर्गुणों और दुराचारोंको अपने हृदयसे हटाते रहना यहाँ गेहूँके अतिरिक्त अन्य घास-फूसका निरान करना है । परमात्माके ध्यानकी जमावटको यहाँ गेहूँका फलना तथा स्वार्थी मनुष्योंके द्वारा की जानेवाली साधककी स्तुति-कीर्तिको यहाँ गेहूँको खानेके लिये आनेवाले पक्षियोंकी काकली समझना चाहिये । साधनको परिपक्व करनेके लिये स्तुति-कीर्तिकी तथा स्तुति-कीर्ति करनेवालोंकी अवहेलना करनेको यहाँ खेतीकी रक्षाके लिये पक्षियोंको हटा देना समझना चाहिये एवं सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव होकर परमानन्दस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति हो जानेको गेहूँके पक जानेपर उसका ढेर लग जाना समझना चाहिये ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

क्या नाम-महिमा अर्थवाद है ?

(अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज)

[गताङ्क पृ० ४९० से आगे]

पुराण वेदवत् हैं

नाम-संकीर्तनकी महिमापर उठनेवाले संशय, तत्सम्बन्धी पूर्वपक्ष और उत्तरपक्षपर एक दृष्टि डाली गयी। अब इसके सम्बन्धमें सिद्धान्त उपस्थित किया जाता है।

बात यह है कि स्मृतियों और पुराणोंके बीच विरोधके प्रसंगमें विकल्प-व्यवस्था अथवा समुच्चय आदिका समावेश नहीं है; कारण—इन दोनोंकी प्रामाणिकता समान नहीं है। अन्ततोगत्वा स्मृतियाँ क्या हैं? वेदद्वारा पदार्थका ज्ञान प्राप्त करके महर्षिगण अपने पदोंद्वारा उसी अर्थके अन्य वाक्योंकी जो रचनाएँ करते हैं, वे ही स्मृतियाँ हैं। और पुराण? वे तो वेद ही हैं। महाभारत और मनुस्मृतिमें कहा है—इतिहास-पुराणके द्वारा वेदोंका समुपबृंहण करना चाहिये। समुपबृंहणका अर्थ है—संवर्धन; जो पूरण करे वह पुराण। अवेदसे वेदकी वृद्धि नहीं हो सकती। स्वर्णके अधूरे कंगनको शीशेसे पूर्ण नहीं किया जा सकता।

यह शङ्का निरर्थक है कि जैसे विजातीय जलद्वारा दूधकी वृद्धि की जाती है, वैसे ही वेदसे भिन्न इतिहास-पुराणोंद्वारा वेदकी वृद्धि की जाती है। कारण, जलसे दूधकी वृद्धि नहीं, क्षय होता है; अतः यह शङ्का अयुक्त है। वस्तुतः वेद और पुराण—दोनों ही एक विशिष्ट अर्थका प्रतिपादन करनेवाले पद-समूह एवं अपौरुषेय हैं, अतः वे अभिन्न हैं। भेदका निर्देश तो इसलिये किया जाता है कि वेदोंमें उदात्तादि स्वरोंका नियम होता है, पुराणोंमें नहीं। वैदिक मन्त्रोंमें जैसी आनुपूर्वी है, वैसी पौराणिक वचनोंमें नहीं, यही भेद-निर्देशका हेतु है।

पुराणोंमें पुराणोंके लिये साक्षात् 'वेद' शब्दका ही प्रयोग है। पुराणोंको पञ्चम वेद भी कहा गया है। यदि दोनों एक जातिके न होते तो पञ्चम संख्या-का संनिवेश न होता। ब्रह्मयज्ञाध्ययनके प्रसङ्गमें 'ब्राह्मण,' इतिहास और पुराणका स्वाध्याय भी विहित है। यह पुराणोंके अवेद होनेपर कथमपि सम्भव नहीं था। स्वयं भगवान्‌ने कहा है कि कालवशात् पुराणोंका प्रचार-प्रसार कम देखकर मैं व्यासावतार ग्रहण कर उनका संकलन करता हूँ। मात्स्य, कौर्म आदि नाम काठक आदिके समान प्रवचनमूलक हैं अथवा आनुपूर्वी-के निर्माणके कारण हैं। श्रुतियों और पुराणोंमें विरोध होनेपर नियतानुपूर्वीयुक्त श्रुतियाँ पुराणोंकी अपेक्षा प्रबल होती हैं; किंतु जहाँ स्मृति और पुराणोंका विरोध होता है, वहाँ स्मृतियोंकी अपेक्षा पुराण ही प्रबल हैं।

ऐसी स्थितिमें पुराणोंका प्रामाण्य निःसंदिग्ध है। उनके द्वारा प्रतिपादित अर्थ वास्तविक हैं। यह संशय नितान्त असंगत है कि पौराणिक वचनोंकी ऐसी प्रामाणिकता स्वीकार करनेपर स्मृतियोंका विषय-सर्वस्व ही बाधित हो जायगा। हमारा कहना है कि भले ही स्मृतियाँ बाधित हो जायँ, पर पुराणोंका स्वारस्य कुचल कर व्यवस्था आदिकी कल्पना नहीं की जा सकती। नारदीयपुराणमें कहा गया है कि 'वेदार्थसे भी अधिक पुराणार्थ है।' पुराणोंमें वेदार्थ प्रतिष्ठित हैं। यदि शान्त-दान्त पुरुष भी पुराणोंको मिथ्या माने तो उसकी सद्गति नहीं होती। उसे तिर्यग्योनि प्राप्त होती है। स्कन्दपुराण भी यही आशय प्रकट करता है। श्रुति-स्मृति नेत्र हैं। पुराण है हृदय। नेत्र एक न हो तो काना, दो न हो तो अन्धा, परंतु पुराण ही न हो तो

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हृदय-शून्य । अतः स्मृति और पुराणके बीच विरोधमें पुराण ही न्यायतः विजयी है ।

पौराणिक व्यवस्थाका आशय

कोई यह कहे कि यदि हम अपनी ओरसे व्यवस्था करते तो दूसरी बात थी; पुराणोंके वचन ही स्वयं अपनी व्यवस्था बनाते हैं । जैसे जबतक वैराग्य न हो, तबतक कर्माधिकार है । जब न पूर्ण वैराग्य हो और न पूर्ण आसक्ति, तब भक्तियोगाधिकार है । पूर्ण वैराग्य होनेपर ज्ञानयोगाधिकार है । ऐसी स्थितिमें व्यवस्था-पक्षी हमपर आक्षेप क्यों ?

इसका उत्तर यह है कि इस प्रकारकी व्यवस्था मुमुक्षुके लिये है । मुमुक्षुके जीवनमें उसकी चित्त-दशाके भेदसे कर्म, भक्ति एवं ज्ञानकी व्यवस्था है । उसमें कोई विरोध नहीं है । 'विश्वासके अनुरूप सिद्धि मिलती है ।' इस वचनसे भी कीर्तन आदिकी शक्तिका माप नहीं होता । उसकी शक्ति अपरिमित है । पात्रके परिमाणसे समुद्र-जलका परिमाण निश्चित करना तर्क-संगत नहीं । मन्त्रका प्रभाव निरंकुश होता है । विश्वासकी मात्रासे वह एक मात्रामें गृहीत होता है ।

कीर्तन श्रद्धा-निरपेक्ष

जो लोग कहते हैं कि श्रद्धापूर्वक नाम-संकीर्तन करनेपर ही फलप्रद होता है, उनका मत ठीक नहीं है । हम उनसे पूछते हैं कि क्या श्रद्धासे मनुष्यकी प्रवृत्ति मात्र कीर्तनमें ही पुराणोंको इष्ट है अथवा कीर्तनादिके फलसाधनमें श्रद्धाका अन्तर्भाव होता है ? अभिप्राय यह कि यदि श्रद्धा वृत्तिका ही हेतु है तब तो कोई बिना श्रद्धाके कीर्तन करने लगे तो उसे फल अवश्य मिलेगा; क्योंकि फलका हेतु कीर्तन है अर्थात् पापक्षय होगा ही, होगा ही । यदि कहो कि श्रद्धा पापक्षयरूप फलमें हेतु है, तो यह हेतुता अर्थात् पापक्षयकी साधनता कैसे ज्ञात हुई—शास्त्रसे अथवा प्रत्यक्षादि किसी अन्य प्रमाणसे ? इसके सम्बन्धमें अनेक पक्ष-प्रतिपक्ष हैं । श्रद्धा-सहकृत कीर्तनको श्रद्धाका आलम्बन माननेपर आत्माश्रय, अन्योन्याश्रय, चक्रक एवं अनवस्था आदि दोषोंकी प्राप्ति होती है । अतः शास्त्रप्रमाणद्वारा कीर्तनमें श्रद्धाकी अपेक्षा मानना असंगत है । श्रद्धा तो हो कोई आपत्ति नहीं है, परंतु न हो तो पापक्षयरूप फलमें न्यूनता नहीं आ सकती । निष्कर्ष इतना ही है कि कीर्तनमें श्रद्धाकी अनिवार्यता नहीं है ।

यदि वह पूर्वपक्ष उठाया जाय कि जैसे विश्वास-पूर्वक आयुर्वेदिक औषधका सेवन करनेपर रोग-निवृत्तिरूप लाभ होता है, वैसे ही विश्वासपूर्वक कीर्तन भी लाभकारी है । इसका उत्तर यह है कि औषधविषयक विश्वास लोक-व्यवहारके दर्शनसे होता है, केवल शास्त्रोक्त होनेसे ही नहीं; किंतु कीर्तन और पापक्षयका सम्बन्ध प्रत्यक्षादिगम्य नहीं, शास्त्रगम्य है, अतीन्द्रिय है, उसे श्रद्धाकी सहायता अपेक्षित नहीं है । हेत्वाभासदूषित अनुमानों-द्वारा कीर्तनको श्रद्धा-परतन्त्र बनानेकी आवश्यकता नहीं ।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि किसी कर्मके अनेक अंग हों, वह बहुधनसाध्य हो, यदि वर्षोंतक करना पड़े और करनेमें बहुत कठिन हो, तब श्रद्धाके बिना उस कर्ममें किसीकी प्रवृत्ति नहीं होती । वहाँ श्रद्धालु अधिकारी होता है और साधन श्रद्धासापेक्ष होता है । पर जहाँ साधन सुगम होता है, जैसे कीर्तनादि, वहाँ प्रकारान्तरसे भी प्रवृत्ति हो सकती है । वहाँ श्रद्धासे ही प्रवृत्ति हो, यह आवश्यक नहीं । शास्त्रीय व्यवस्था भी ऐसी ही है । अतः श्रद्धाको कीर्तनाधिकारका हेतु मानना अयुक्त है ।

भक्ति कीर्तनके पहले नहीं, पीछे

भक्तिपूर्वक नाम-संकीर्तनसे पापक्षय होगा—यह कल्पना भी असंगत ही है; क्योंकि यदि नवधा भक्ति

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्राप्त करके कीर्तन करें, ऐसा अभिप्राय हो तब तो नवधा भक्तिके अन्तर्गत कीर्तनका अधिकारी नवधा भक्तिविशिष्ट होना चाहिये, इस कथनमें ही वदतोव्याघात है। यदि भावकी भक्तिसे युक्त कीर्तनका अधिकारी है—ऐसा कहें तो भाव-भक्ति कीर्तनका फल है, अपने पूर्ववर्ती अधिकारका विशेषण नहीं। भावभक्तिकी प्राप्तिकी इच्छासे कीर्तन करें—ऐसा कहा जा सकता है। पापाचरणजनित दोषके निरासके लिये कीर्तन करें—ऐसा कहना ठीक है। कीर्तनसे पापक्षय होता है।

कुछ लोग कहते हैं कि 'भावोदय होनेके पश्चात् भगवद्भजन ही पापका नाश करता है—यह ठीक है। परंतु भावोदयके पूर्वके पापोंके प्रायश्चित्तके लिये स्मार्त विधि-विधानके अनुसार व्रतादिका अनुष्ठान करना ही चाहिये।' किंतु उनका यह कथन अविचारित-रमणीय है; क्योंकि कीर्तनसे पाप नष्ट होनेपर ही भाव-उदय होगा। पापके नष्ट होनेपर भी अन्तःकरणमें कामादिकी विद्यमानताके कारण पुनः-पुनः अशुभ वासनाका उदय होना सम्भव है। उनकी निवृत्तिके लिये भावोदयकी अपेक्षा है, पापक्षयके लिये नहीं।

पुराणोंमें ऐसे प्रसंग आते हैं कि यमराज अपने दूतोंको आदेश देते हैं;—'सावधान ! भूलकर भी भगवत्प्रेमी भक्त संतोंके पास मत जाना। उन्हें दूरसे ही छोड़ देना। हम उनके शासक नहीं हैं' इत्यादि। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि ऐसे भगवत्प्रेमी संतोंके पास यमदूतोंके जानेका प्रसंग ही कहाँ है ? उनके पास न पाप है और न वे पापी हैं। वहाँ यमदूतोंके निषेधका क्या अभिप्राय है ?

यह सच है कि सत्पुरुषोंके द्वारा पाप नहीं होते। राग-द्वेष आदि न होनेपर भी प्रमादवश कुछ हो जाय तो भावपूर्वक नाम-कीर्तनसे ही वह मिट जाता है। वहाँ भी कीर्तन ही पापको नष्ट करता है। भाव तो वहाँ भी उदासीन ही रहता है। अत्यन्त तुच्छके साथ क्या उलझना ; ऐसे सत्पुरुषोंके लिये यमपुरीमें लाने या नरकमें गिरानेका तो कोई प्रसंग ही नहीं है। बात यह है कि उनके आस-पास रहनेवाले लोग भी यमराजके शासनसे बाहर हैं, अतः यमराज यमदूतोंको उपदेश देते हैं कि 'जिस पथपर संतोंकी कुटिया भी पड़ती हो, वहाँ मत जाओ। दूरसे-दूरतकसे उन्हें छोड़ दो।'

उपनिषदोंमें भी ऐसे प्रसंग आते हैं कि जिन्हें सर्वत्र भगवद्भाव अथवा सर्वात्मभावकी प्राप्ति हो गयी है, उनके दृष्टिगोचर हुए सभी प्राणी यमराजके शासनसे मुक्त हो जाते हैं। उनके द्वारा दृष्टिगोचर सीमामें यमराज अथवा यमराजके दूतोंकी गति नहीं है।

यह तो प्रसिद्ध ही है कि तीर्थादि चिरकालमें पवित्र करते हैं और संत दर्शनमात्रसे ही। वह दर्शन भले ही संत प्राणीका करे या प्राणी संतका—दोनों ही पावन हैं। कीर्तनकी ध्वनि चारों ओर फैलकर सारे व्यवधानोंको फाड़ डालती है और अन्ध-बधिरोंके लिये भी कीर्तन ही पापक्षयका हेतु है, भक्ति न उसका अङ्ग है और न अधिकारीका विशेषण।

कीर्तनमें ज्ञानकी शर्त नहीं

कीर्तनीय परमेश्वरका ज्ञान भी कीर्तनमें पापक्षयके लिये अपेक्षित नहीं है। विवशता, संकेत, परिहास, दस्युच्छल आदि प्रसंगोंमें उच्चरित नाम भी पापध्वंसक है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि इनका कोई अन्य तात्पर्य नहीं है; क्योंकि ये बार-बार दुहराये गये हैं और समस्त शास्त्रोंमें इनका संवाद है। **'अपि'** शब्दका प्रयोग भी सर्वत्र हो, ऐसा नहीं है। कहीं-कहीं 'यद् व्याजहार विवशो:' आदिमें **'अपि'** शब्दका प्रयोग नहीं है। वहाँ **'अपि'** शब्दका अध्याहार करना भी उचित नहीं है; क्योंकि शास्त्रोक्त बातको सिद्ध करनेके लिये अध्याहार किया जाता है, शास्त्रोक्तका बाध करनेके

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लिये नहीं। नाम-संकीर्तन तद्विषया मति अर्थात् ब्रह्म-विद्या एवं स्वस्त्ययन अर्थात् मोक्ष भी दे सकता है तो पापक्षयमें क्या रखा है—देखिये, शास्त्रवचन ही स्पष्ट निर्देश करते हैं—

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसां दहत्येधो यथाऽनलः॥
यथाऽगदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया।
अजानतोऽप्यात्मगुणान् कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः॥
हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयाऽपि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥

ज्ञान और अज्ञान दोनों दशाओंमें उच्चरित नाम पापक्षयका हेतु है। दृष्टान्त है, ज्ञात-अज्ञात दोनोंका ही अग्नि दाहक होता है। ज्ञात-अज्ञात दोनों प्रकारके मन्त्र अपना गुण प्रकट करते हैं। दुष्टचित्त पुरुषोंद्वारा स्मृत हरि भी पापहरण करते हैं, जैसे अनिच्छासे संस्पृष्ट अग्नि भी जलाती है। चार अक्षर 'नारायण', दो अक्षर 'हरि', दो अक्षर 'शिव' यह कहनेका अभिप्राय ही यह है कि नाम अर्थानुसंधानकी अपेक्षा नहीं रखता। निष्कर्ष यह कि नाम-संकीर्तनके लिये ज्ञानकी अपेक्षा नहीं है। कीर्तनके द्वारा पापक्षय होने-पर ज्ञानकी उत्पत्ति होती है, ज्ञान प्राप्त करके कीर्तन किया जाय, तब तो सर्वथा उल्टा ही हो जायगा। फलको साधन बनानेकी चेष्टा अनुचित है।

कीर्तनमें अनुतापकी अपेक्षा नहीं

यह कहना कि पाप करनेके बाद जिसे पश्चात्ताप होता है उसका तो एक बार नामोच्चारणसे ही पाप नष्ट हो जाता है, परंतु जिसे पश्चात्ताप नहीं होता उसे पुनः-पुनः नामकीर्तन करना चाहिये। पर यह व्यवस्था भी पूर्णतः मान्य नहीं है। मुख्य विचारणीय यह है कि पापकी निवृत्ति विधिकी सामर्थ्यसे होती है तो दोनों ही जगह पश्चात्तापकी आवश्यकता है; क्योंकि जिसे पश्चात्ताप है, वही प्रायश्चित्तका अधिकारी है। यदि नामकी सामर्थ्यसे पापकी निवृत्ति होती है तो कहीं भी पश्चात्तापका उपयोग नहीं है। सूर्य तपस्वीकी आँखोंके सामनेसे अन्धकार हटा दे और भोगीके नेत्राङ्गणमें व्याप्त अन्धकारका अपनयन न करे—ऐसा सम्भव नहीं है; क्योंकि पदार्थका स्वभाव पुरुषगत योग्यताकी अपेक्षा नहीं रखता।

यह निश्चय है कि नाम अपनी महिमासे ही पापक्षय करता है, विधानकी सामर्थ्यसे नहीं। विधिके दो प्रकार हैं। एक 'कीर्तितव्य' आदि वाक्य और दूसरा कीर्तनरूप कार्य। इनमेंसे प्रथम विधि प्रमाणरूप ही है। प्रमाण प्रमेयमें अविद्यमान महिमाको उत्पन्न नहीं करता; किंतु यथावस्थित वस्तुतत्त्वको ही अज्ञातसे ज्ञात कराता है। शबर स्वामीने ठीक ही कहा है कि मनुष्यको उपायका ज्ञान नहीं है, इसलिये उसे उपाय बतलाया जाता है। नैष्कर्म्यसिद्धिकार श्रीसुरेश्वराचार्य कहते हैं कि शास्त्र सूर्यवत् है, वह प्राप्ति-परिहारके उपाय प्रकाशित करता है। यदि विधिका प्रकार नाम-कीर्तनादिका अनुष्ठान हो तो वह सीधे अपने फल पापक्षयको उत्पन्न करेगा, वह दूसरे साधनके अधीन नहीं होगा। नाम स्वतः पावन और पाप-निवर्तक है। क्या सूर्य जन-नयनाङ्गणसे तिमिरापनयन करनेके लिये बार-बार उदय होता है? एक बारका नाम पर्याप्त है—पापक्षयके लिये।

ऐसी स्थितिमें जिन शास्त्र-वचनोंमें अनुताप और आवृत्तिका अभिधान है, उनकी क्या व्याख्या हो सकती है?

लीजिये, पश्चात्ताप होनेपर एकमात्र हरिसंस्मरण ही केवल प्रायश्चित्त है, इसका एतावन्मात्र ही अभिप्राय है कि कीर्तन पापक्षयका साधन है।' 'प्रायश्चित्त' शब्दका मुख्य अर्थ कीर्तन नहीं है। प्रायः = तप। चित्त=निश्चय। कीर्तन न तप है न निश्चय। अभिप्राय

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यह है कि जैसे प्रायश्चित्त हितका साधन है वैसे कीर्तन हितका साधन है। हित क्या है? सुखकी प्राप्ति और अनर्थकी निवृत्ति। अनर्थ-परिहाररूप हित यह स्पष्ट करता है कि कीर्तन विधि-प्राप्त है। जो जिससे अनुतप्त होता है उसके लिये अनुतापके कारणकी निवृत्ति ही हित होती है। जो पापसे अनुतप्त है उसके लिये कीर्तन हित अर्थात् पाप-निवृत्तिका साधन है। बार-बार 'परम', 'एकम्', 'सकृत्' कहकर इसे निरपेक्ष साधन बताया गया है।

हाँ, इतना अवश्य है कि संकीर्तन कोई कठिन कार्य नहीं है, अतः पश्चात्ताप होनेपर ही इसमें प्रवृत्ति हो, यह आवश्यक नहीं है। सुन-सुनाकर, देख-दिखाकर इसमें प्रवृत्ति हो सकती है। पापक्षयकी कामना हो तभी कीर्तन फल दे, यह आवश्यक नहीं है। यदि कोई यज्ञ करे तो उसे स्वर्ग मिलेगा, परंतु वह इतना बड़ा काम है कि कौतूहलसे या देख-सुनकर उसमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। काम्य कर्मका परित्याग कर देना चाहिये—ऐसा भी शास्त्रादेश है। —क्रमशः

भगवान्‌के दिव्य श्रीविग्रहके दर्शन—८

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

केलेका स्तम्भ ऊपरकी परत उतारनेपर जैसा चिकना और कोमल होता है वैसी ही भगवान्‌की जाँघ है। भगवान्‌की कटि सिंहकी-सी मानी गयी है। कमरमें वस्त्रके ऊपर एक तागड़ी है। यह भिन्न-भिन्न रूपोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी मानी गयी है। भगवान् श्रीकृष्णके रूपमें तथा मथुरा और द्वारकाकी लीलामें भी बालरूपकी माधुरी भिन्न प्रकारकी मानी गयी है। तागड़ी यों तो सोनेकी कही जाती है, पर वह सोना लौकिक सोनेकी अपेक्षा कुछ और चीज है। सोनेसे वह हल्का होता है, किंतु होता उससे कहीं अधिक बहुमूल्य है। आभूषणोंका बोझा भगवान्‌को नहीं मालूम होता; क्योंकि भगवान्‌के आयुध, आभूषण और वस्त्र भगवान्‌से भिन्न नहीं हैं, उन्हींके अङ्ग-सदृश हैं। इसके अतिरिक्त उस सोनेमें एक बिजलीकी-सी चमक है, किंतु उससे आँखें चौंधियाती नहीं। उसका प्रकाश सौम्य, शीतल एवं स्निग्ध है।

करधनीके बीचमें लड़ें लहरदार हैं जो वस्त्रोंपर लटकती हैं और उनके बीच-बीचमें एक-एक छोटी-छोटी घण्टिकाएँ हैं जो बजती हैं। घूँघरूकी तरह उनका मुख बन्द नहीं है। घण्टी स्वयं बजती है और उसका संघर्ष लटकनोंके साथ होनेसे उसमें और भी विलक्षण शब्द निकलता है। इसका शब्द दूरसे भी सुनकर गोपियोंको भगवान्‌के आनेका पता लग जाता था।

भगवान्‌के उदरमें तीन रेखाएँ हैं, जो एक प्रकारसे तीन देवताओं अथवा तीन गुणोंका रूप हैं।

भगवान्‌की नाभि पेंचदार है। उसे भी कमलकी उपमा दी जाती है। भगवान्‌की नाभिमें मानो संसारको उत्पन्न करनेका बीज है। इस नाभिमें सारा जगत् एवं उसके ज्ञान-(वेद-) को अपने अन्दर समेटकर लीन किये रहता है। संकल्प होनेपर वे बाहर आ जाते हैं। इसका आध्यात्मिक रहस्य भी है।

इसके ऊपर भगवान्‌के स्तन हैं। महापुरुषोंके स्तनकी नोही-(चूचुक-)की जगह एक रेखा-सी होती है। भगवान्‌के स्तनोंमें अङ्ग-वर्णसे विलक्षण एक श्यामता है। भगवान्‌का वक्षःस्थल बहुत विशाल है; इसका आशय है कि उनका हृदय विशाल है। उसमें सबके लिये गुंजाइश है। महान्-से-महान् पापी अथवा क्रूर मनुष्यके लिये भी उसमें स्थान है। हृदय शरीरका प्रधान अङ्ग है। विना हृदयका मनुष्य मनुष्य नहीं

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कहलाता। भगवान्‌का हृदय हृदयहीनोंको सहृदय बना देता है। भृगुका प्रसंग इसका परिचायक है। भगवान्‌का अङ्ग दर्पणके समान है। उसके साथ जो स्पर्शमें आता है, वह वहाँ अङ्कित हो जाता है। इसीलिये भगवान् भृगुलताको धारण करते हैं। यह वैष्णवताका चिह्न है। यह सारे अवतारोंमें होता है। शत्रुता रखनेवालोंके प्रति भी उनके हृदयमें स्नेह भरा रहता है। उन्हें भी मुक्त कर देना चाहते हैं। मातृ-हृदयमें भगवान्‌के हृदयकी एक छाया है। वे गुणोंको देखकर हमारे ऊपर प्रसन्न नहीं होते। भगवान्‌के मनसे भी शरण हो जानेपर भगवान् शरणागतके वशीभूत हो जाते हैं। वे उसे अपनानेके लिये दौड़ पड़ते हैं। पहलेकी बात तो देखते ही नहीं। गुण-दोषोंको देखकर अथवा पूरी पूजा ग्रहण कर जो किसीको अपनाते हैं वे वास्तवमें शरणागत-वत्सल नहीं हैं।

'न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः'।

आमिषभोजी गृध्रको भगवान् पिताकी भाँति अञ्जलि देते हैं। मर्यादापुरुषोत्तम होते हुए भी वे गुहसे गले लगकर मिलते हैं। शबरीके बेर खाते हैं। भगवान्‌के हृदयकी कोमलताकी झलक कुछ-कुछ उनके सन्तोंमें देखनेको मिलती है। सन्तोंके हृदयको नवनीतकी उपमा दी गयी है। उनके अवतारका हेतु भी उनकी दया ही है। भक्तके दुःखको देखकर भगवान् ठहर नहीं सकते। गजेन्द्रके आख्यानमें इसका बड़ा अच्छा दिग्दर्शन होता है। भगवान्‌के सम्मुख जो गया उसका उद्धार हो गया—'सम्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। कोटि जन्म अघ नासहिं तबहीं।'

भगवान्‌का कण्ठ शङ्खका-सा माना गया है। कौस्तुभ, श्रीवत्स, वैजयन्ती—ये सब विग्रहोंमें होते हैं। इनके अतिरिक्त भगवान् श्रीकृष्ण वनमाला धारण करते हैं। उसमें गूथे तुलसी आदिके पत्ते भी खोंसे रहते हैं। अनेक रंगकी मिट्टी भी वे अपने शरीरमें पोते रहते हैं। उसकी कुछ विचित्र आभा होती है। मुक्ताहार गुञ्जाकी माला तथा पत्तोंकी माला है।

मुरलीधर द्विभुज हैं। बायें हाथमें बेंत और दाहिने हाथमें मुरली है। मुरलीमें छेद हैं, दोनों हाथोंमें कंकण और फूलोंके गजरे हैं तथा बाहुओंमें बाजूबंद हैं।

होठ बिम्बाफलके समान हैं। हँसी भी दो प्रकारकी है—उच्च हास्य और मुस्कराहट। मुस्कुराहट सदा रहती है। क्रोधकी अवस्थामें भी उनकी मुस्कुराहट बनी रहती है। संहार करते समय भी वे हँसते रहते हैं।

दन्तपंक्तियाँ उनकी बड़ी श्वेत और प्रकाशयुक्त हैं। ओठोंकी आभासे मिलकर धवलिमा अत्यन्त शोभाको धारण करती है।

नाकमें बुलाक रहता है। मुख, नासा, नेत्र, मस्तक और कर्ण मुखकी शोभाके लिये होते हैं। भगवान्‌का मुख तनिक-सा लम्बा (ऊपरकी ओर) और बाकी गोल है। कपोल न पिचके हैं और न उभरे हुए हैं। कपोलोंपर चार आभाएँ और आती हैं। बिखरी हुई अलकावलीकी छाया, कुंडलोंकी आभा, सिरपरके मुकुटकी और नेत्रोंसे सदा निकलनेवाली ज्योति—ये सब उसपर पड़ती हैं। नासिका अग्रभागपर कुछ मुड़ी हुई है।

नेत्र रक्तकमलके-से हैं। अरुणिमा उनकी खास चीज है। वे गुस्सेकी-सी लाल नहीं हैं। उनकी ललाई स्वाभाविक है। क्रोधमें तो रक्त नीचे उतर आता है।

भृकुटी इतनी सुन्दर है कि उसके देख लेनेपर काम-नाश हो जाता है। नेत्र-रोम घने, काले और साफ हैं। नेत्र बड़े कटीले हैं। उनके सौन्दर्यकी कोई उपमा नहीं है। भगवान्‌का सबसे सुन्दर अङ्ग नेत्रोंके नीचेका मुखभाग है।

मस्तक बड़ा विशाल है, उसपर वल्लभसम्प्रदायवालोंका-सा तिलक है। उसके ऊपर रत्नका मुकुट है और उसपर मोरका चँदवा है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मोक्ष अथवा आत्म-साक्षात्कार

(लेखक –प्रो० श्रीमूलचन्दजी शर्मा)

अनात्मन्यात्मधीर्बन्धस्तन्नाशो मोक्ष उच्यते।
बन्धमोक्षौ न विद्येते नित्ययुक्तस्य चात्मनः॥
(योगवासिष्ठ)

योगवासिष्ठ भारतीय संस्कृतिका सर्वमान्य धर्मग्रन्थ है, जिसके इस श्लोकद्वारा मोक्षका स्वरूप भलीभाँति स्पष्ट कर दिया गया है। श्लोकका अर्थ है—'अनात्मपदार्थों अर्थात् देहादिमें आत्मबुद्धिका अध्यास ही बन्धन है। इसका अपकरण ही मोक्ष है; क्योंकि नित्ययुक्त आत्माके बन्धन या मोक्षकी कल्पना भ्रान्ति-मात्र ही है।' जो आत्मा सदैव मुक्त है, उसके बन्धन-की बात नितान्त भ्रम है। मुक्ति तो बद्धकी होती है। जो बद्ध ही नहीं, उसकी मुक्ति कैसी !* इसका स्पष्ट आशय यह है कि 'मैं शरीर हूँ' ऐसा भ्रमवश स्वीकार करना बन्धन है और 'मैं आत्मा हूँ' ऐसा यथार्थ ज्ञानका होना ही मोक्ष कहलाता है। दूसरे शब्दोंमें यह कहें कि देहादिके धर्म आत्माके धर्मोंसे बिल्कुल भिन्न हैं तो इसमें कोई अत्युक्ति या भूल नहीं हो सकती; क्योंकि देहादि क्षणभङ्गुर, विनाशी, अनित्य, विकारी एवं परिवर्तनशील हैं, लेकिन आत्मा अनादि, अनन्त, अविकारी तथा शाश्वत है। इसमें कभी भी कोई विकार या परिवर्तन नहीं हो सकता। वह सदा एकरूपमें ही स्थित है।

अद्वैतपञ्चकमें आदिश्रीशंकराचार्यने इसी तथ्यको समझाते हुए कहा है—

नाहं जातो न प्रवृद्धो न नष्टो
देहस्योक्ताः प्राकृताः सर्वधर्माः।
कर्तृत्वादिश्चिन्मयस्यास्ति नाहं-
कारस्यैव ह्यात्मनो मे शिवोऽहम्॥
(शा० ग्र० ११ अद्वैतपञ्चरत्नम्)

अर्थात्—'प्रकृतिके षट् भावविकार (१–जन्म, २–स्थिति, ३–वृद्धि, ४–परिणाम, ५–क्षयकाल (ह्रास) और ६–मृत्यु) शरीरके ही धर्म हैं—मेरे नहीं; क्योंकि 'मैं' कर्तव्यरहित निर्विकार चिन्मय शिवरूप आत्मा हूँ। कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व अर्थात् कर्तापन और कर्मके फलको भोगना मेरे आत्माके धर्म नहीं हैं।' ये तो केवल अहंकारके धर्म हैं। अहंकार अन्तःकरणकी एक वृत्ति है और अन्तःकरण सूक्ष्मशरीरका एक तत्त्व है। इसके साथ मेरा सच्चा सम्बन्ध नहीं है। अविकारी आत्मा देहादिसे भिन्न है, मैं अविकारी शिव-स्वरूप ही हूँ।

वैसे तो आत्माके स्वरूपका निरूपण वाणी-द्वारा 'इदंतया' कठिन ही नहीं, असम्भव है। इसे तो केवल योगी ही अनुभव कर सकता है; वह भी वाणीद्वारा नहीं बतला सकता। फिर भी इस रहस्यको यों समझना चाहिये। गुड़, गन्ना, मिश्री, खाँड, किस्मिस आदिकी मिठासका अन्तर केवल रसना ही अनुभव कर सकती है; अर्थात् इनकी मिठासका पारस्परिक अन्तर वाणीद्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। यह केवल अनुभव-गम्य है। इन मीठी वस्तुओंको खानेवाला इनकी मिठासके सम्बन्धमें केवल इतना ही कह सकता है कि अमुक वस्तुमें मिठास अधिक है और दूसरीमें कम। उसके लिये मिठास क्या है, कैसा है—इसका

* वास्तवमें यह बात अधिकार-प्राप्तिके लिये ही है। श्रीरामके लिये वसिष्ठका कथन तो ठीक है, पर सर्वसाधारण-के लिये क्रम-क्रमसे साधना, षट्-सम्पत्ति, आचार्योपसदन, वैराग्य, पूर्ण ज्ञान-प्राप्तिके बादका है। ऐसा सोचना उपयुक्त होगा। यह लेखमें आगे स्पष्ट है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यथार्थ निरूपण करना अशक्य है। उसे तो केवल रसना ही जानती है। वाणीद्वारा उक्त मीठी वस्तुओं-की मिठासका यथार्थ विवरण नहीं दिया जा सकता है। वैसे ही आत्माके परमानन्दके स्वरूपका निरूपण अत्यन्त कठिन है। वह वाणीद्वारा अगम्य है, पर अनुभवसे गम्य है। इसीलिये वेदान्तमें आत्माको विलक्षण कहा है—

योऽयमात्मा स्वयंज्योतिः पञ्चकोशविलक्षणः।
अवस्थात्रयसाक्षी सन्निर्विकारो निरञ्जनः।
सत्स्वरूपः स विज्ञेयः स्वात्मत्वेन विपश्चिता॥
सर्वे येनानुभूयन्ते यः स्वयं नानुभूयते।
तमात्मानं वेदितारं विद्धि बुद्ध्या सुसूक्ष्मया॥

(विवेक-चूडामणि २१३, २१६)

इन श्लोकोंसे केवल यह समझा जा सकता है कि आत्माको सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा ही नहीं, बल्कि सुसूक्ष्म-बुद्धिद्वारा जानना चाहिये; क्योंकि यह विलक्षण है। अनुभवगम्य तत्त्व ही विलक्षण कहा जाता है।

इससे यह भी अच्छी तरह स्पष्ट हो चुका है कि निर्विकार आत्मा अनात्म-देहादिके जन्म, मृत्यु, व्याधि आदि धर्मोंको भ्रान्तिवश अपनेमें कल्पित करके सांसारिक बन्धनमें पड़ा हुआ है और देहादिके सुख-दुःखोंको भोगता-सा मालूम होता है। वस्तुतः आत्मा शारीरिक रोगोंसे बिल्कुल अछूता, असङ्ग, निस्पृह, अविकारी होनेसे केवल द्रष्टामात्र है।

आत्माकी भ्रान्तिके कारण

१–देहाध्यास––अनादिकालमें परमात्मा योगनिद्रा-में सोये हुए थे। उन्होंने जागकर चारों ओर दृष्टि दौड़ायी; लेकिन कुछ भी न दिखायी दिया। उनकी संकल्परूपमें इच्छा प्रस्फुरित हुई कि **'एकोऽहंबहु स्याम्'** अर्थात् 'मैं अकेला हूँ, अतः मैं बहुत रूप धारण करूँ।' उनका यह संकल्प प्रकृतिपर प्रतिफलित हुआ। प्रकृति जड़ थी। उसमें कोई क्रिया या गति न दिखायी दी। इसलिये उन्हें अपने अनेक अंशोंसे प्रकृतिमें प्रवेश करना पड़ा; क्योंकि उन्हें क्रीड़ा करनी थी। उनके प्रवेश करते ही सारी प्रकृति चेतनामयी हो गयी। इस रहस्यको विद्यारण्यमुनिने पञ्चदशीमें इन शब्दोंमें व्यक्त किया है—

'ईक्षणादिप्रवेशान्ता सृष्टिरीशेन निर्मिता'।

(पञ्चदशी २)

इस तरह अनादिकालसे आत्माका सम्बन्ध प्रकृति-के साथ चला आ रहा है। तीनों स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर प्रकृतिके ही विकार हैं। चिरन्तन दीर्घकालीन साहचर्यसे आत्मा अन्तःकरणके भोगोंपर आसक्त होकर उसके साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर चुका है और अन्तःकरणके भोगोंको अपने ही भोग मान बैठा है। शरीरके धर्मोंको अपने ऊपर लादकर उसे दृढ़ देहाध्यास हो चुका है और उन भोगोंमें सुखकी तलाश करता हुआ उल्टा दुःख भोग रहा है।

२–आत्म-विस्मृति––ऊपर वर्णित देहाध्यासके कारण ही आत्मा स्वयंको शरीर मान बैठा है; क्योंकि अनादिकालसे अन्तःकरणका प्रतिबिम्ब आत्मापर पड़ रहा है। दीर्घकालीन मात्र प्रतिबिम्ब पड़नेसे आत्माको अपने स्वरूपकी विस्मृति हो गयी है। इसी विषयको लेकर अध्यात्मरामायणमें भगवान् राम ताराको समझाते हुए कहते हैं—

यथाविशुद्धः स्फटिकोऽलक्तकादिसमीपगः।
तत्तद्वर्णयुगाभाति वस्तुतो नास्ति रञ्जनम्॥
बुद्धीन्द्रियादिसामीप्यादात्मनः संसृतिर्बलात्।
आत्मा स्वलिङ्गं तु मनः परिगृह्य तदुद्भवान्॥

(४।३।२२-२३)

अर्थात्––'शुद्ध स्फटिकमणि श्वेत होता है, पर उसके सामने यदि लाख या गुलाब आदिके फूल रख दिये जायँ तो स्फटिकमणिका रंग उनके प्रतिबिम्बकी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तरह लाल, पीला, नीला आदि प्रतीत होने लगता है। लेकिन रंग स्फटिकमें प्रविष्ट नहीं हो सकते। इसी तरह अन्तःकरणका प्रतिबिम्ब आत्मामें प्रविष्ट नहीं हो सकता। स्फटिक तो अपने स्वरूपमें अर्थात् श्वेतवर्णमें ही स्थित रहता है। वे रंग स्फटिकके असली स्वरूपमें कोई विकृति नहीं पैदा कर सकते। हाँ, वे रंग स्फटिकके मनमें भ्रान्ति पैदा करके उसे आत्म-स्वरूप-विस्मृतिके अन्धकूपमें बेशक ढकेल सकते हैं, लेकिन उसके यथार्थ रंगमें कुछ भी अन्तर नहीं ला सकते। यदि भ्रमवश स्फटिक यह कहे कि मेरा रंग लाल, पीला या नीला हो गया है, तो ऐसा उसके कथनमात्रसे वह लाल, पीला या नीला नहीं बन सकता। लाख या गुलाब आदिके फूलोंको उसके सामनेसे हटा दिया जाय तो स्फटिकका असली शुद्धरूप अर्थात् श्वेत वर्ण सामने आ जायगा। इसी तरह शुद्ध आत्माके सामनेसे अन्तःकरणके मल, विक्षेप आदि दोषोंको धोकर अन्तः-करणको आत्माकी तरह शुद्ध किया जाय तो दोनोंका रंग श्वेत निकल आयेगा। एक ही श्वेतवर्ण होनेके कारण अन्तःकरणका प्रतिबिम्ब आत्मापर नहीं पड़ेगा और आत्मा सदाके लिये उससे छुटकारा पा जायगा। इसे ही मोक्ष कहते हैं। मोक्ष कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो बाहरसे लायी जा सके। इसका कहीं निवास-स्थान नहीं है। इसी सम्बन्धमें कहा गया है—

न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पाताले न भूतले।
सर्वाशाक्षये चेतःक्षयो मोक्ष इतीर्यते॥
(योगवासिष्ठ)

अर्थात् 'मोक्ष न आकाशके पृष्ठपर, न पाताल या भूतलमें ही मिल सकता है। समस्त आशाओंके क्षय हो जानेपर जब अन्तःकरणका नाश हो जाता है तो उसीको मोक्ष कहा जाता है।' वासनाके नाशके साथ-साथ अन्तःकरणकी भी मृत्यु हो जाती है और यही मोक्ष है। **'चेतःक्षयः'** से अन्तःकरणका 'क्षय' यह अर्थ किया जाता है; क्योंकि चित्त एक अन्तःकरणकी वृत्तिका नाम है। अन्तःकरणकी मृत्यु होनेपर 'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी' वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है और तत्काल मोक्षका द्वार खुल जाता है।

जीवभाव

अद्वैतपञ्चक श्लोक—२ में आदिशंकराचार्य कहते हैं—

रज्ज्वज्ञानाद् भाति रज्जौ यथाहिः
स्वात्माज्ञानादात्मनो जीवभावः।
आप्तोक्त्या हि भ्रान्तिनाशे स रज्जु-
र्जीवो नाहं देशिकोक्त्या शिवोऽहम्॥

भाव यह कि 'रास्तेमें पड़ी हुई रस्सी है' इस रहस्यको न जाननेके कारण द्रष्टा रस्सीको भ्रमवश साँप समझने लगता है और उसके डरसे उसके पास भी न जाकर अन्य निकटमार्गसे अपना रास्ता तय करता हुआ दुर्गम भवाटवीमें भटक जाता है। जबतक ईश्वर-कृपासे उसे सत्संगकी प्राप्ति न हो और वह सत्संगरूपी ज्ञानसे प्राप्त प्रकाशका दीपक हाथमें पकड़कर उस भटके हुए समयके मनसे साँपके वहमको मिटाता नहीं, तबतक वह इधर-उधर भटकता ही रहेगा और कहीं भी थाह नहीं प्राप्त कर सकता। वह स्वयंको भूल चुका है कि मैं स्वयं परमानन्दस्वरूप हूँ। सांसारिक पदार्थ या शरीरके भोग उसे सुख नहीं दे सकते; बल्कि परिणाममें उल्टा दुःखके ही कारण हैं। आत्मा अपने स्वरूपके अज्ञानके कारण रस्सीमें साँपकी भ्रान्तिकी तरह भवाटवीमें भटकता हुआ जीवभावको प्राप्त हो गया है। इस तथ्यको शास्त्रमें इस तरह स्पष्ट किया है—

यावद् विषयभोगाशा जीवाख्या तदात्मनः।
अविवेकेन सम्पन्ना साप्याशा न च वस्तुतः॥

आत्मानन्दको साँप समझकर भागता हुआ बाह्य सांसारिक भोगोंमें उस शाश्वत आनन्दकी तलाशमें लीन आत्मा जीवभावको प्राप्त होता है, लेकिन उसका यह निष्फल प्रयास दुराशामात्र है। इसका निष्कर्ष यह है

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कि अपने लक्ष्यमार्गसे भटके हुएकी दुर्गति अनिवार्य हो जाती है। इस जीवभावकी आत्यन्तिक निर्वृत्ति ही मोक्ष है।

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है **'मम माया दुरत्यया'** अर्थात् 'मेरी मायाका पार नहीं पाया जा सकता।' इसी मायाके प्रभावसे मोहित आत्मामें सदैव अन्त:करणकी समीपताके कारण सांसारिक विषयवासनाने अपना सुदृढ किला बना रखा है। इसीलिये आत्माको अटल विश्वास है कि इसमें ही पूर्ण सुख निहित है। साधारणतया रोगकी चिकित्सा तो हो सकती है, लेकिन भ्रमकी चिकित्सा अत्यन्त कठिन एवं दुष्कर है। जबतक इस भ्रमको सर्वथा उत्पाटित न किया जाय तबतक अन्य लाखों उपायोंसे भी जीवभावकी निर्वृत्ति नहीं हो सकती।

उस परम पिता परमात्माने प्रकृतिमें प्रवेश करनेके क्षणमें ही अपनी मायाका आवरण डालकर देहाध्यासकी फाँसी गलेमें डालते हुए जीवभावको प्राप्त आत्माको विवशतापूर्वक अपनी क्रीडाकी कठपुतली बना लिया था। लेकिन परमात्मा अकारण करुणा-वरुणालय हैं। जीवपर उन्होंने संसारसे छुटकारा पानेके लिये कृपादृष्टि एवं विशाल सुविधा-सुधालहरियोंकी बौछार प्रारम्भसे ही कर रखी है, जिन्हें यह समझ नहीं पाता और कँटीली भवाटवीमें सुखकी तलाशमें युगान्तरोंसे भटकता हुआ कहीं भी राह नहीं पा रहा है। जैसे हम ईश्वरकी मायाको नहीं समझ सकते, उसी तरह आत्माके जीवभावको भी नहीं जान सकते। किसी अनिर्वचनीय ढंगसे आत्मा जीवभावको प्राप्त हो चुका है। हमें उस पचड़ेमें न पड़कर उससे छुटकारा पानेका प्रयत्न करना चाहिये। इसी बातमें हमारा कल्याण निहित है।

सांसारिक दृष्टिसे देखा जाय तो मनुष्य-शरीर एक गंदगीका पुतला है। इस शरीरका कोई भी अवयव किसी भी काममें नहीं लाया जा सकता। पशुओंके शरीरका एक-एक अवयव संसारके लिये लाभप्रद है। यहाँतक कि गौ आदिका गोबरतक इतना लाभदायक है कि उसके गुणोंका वर्णन करना अशक्य है। फिर भी मनुष्य-शरीर परमात्माकी समस्त सृष्टिकी सर्वोत्तम कलाकृति माना गया है। उसका कारण केवल यही है कि चौरासी लाख योनियोंसे तिरासी लाख निन्यानबे हजार नौ सौ निन्यानबे योनियाँ केवल भोग-योनियाँ हैं। उनमें केवल प्रारब्ध भोग भोगनेकी क्षमता है। वे मोक्षकी अधिकारिणी नहीं बन सकतीं। केवल मनुष्य-योनि ही ऐसी श्रेष्ठतम है, जो प्रारब्धको अपास्तकर शनैः शनैः नवीन कर्म-सम्पादन करके मोक्ष प्राप्त करनेकी अधिकारिणी है। इसी कारण देवतालोग भी इसे प्राप्त करनेके लिये सदा लालायित रहते हैं—

दुर्लभं मानुषं जन्म प्रार्थ्यं त्रिदशैरपि।
तल्लब्ध्वा परलोकार्थं यत्नं कुर्याद् विचक्षणः॥
(विवेकचूडामणि)

मनुष्य-योनिमें जन्म ग्रहण करना बहुत कठिन है; क्योंकि शेष योनियोंमें प्रारब्धभोग भोगकर शरीर छोड़ने पड़ते हैं। उनमें विवेककी कमी होती है। विवेक केवल मनुष्ययोनिमें विकासको प्राप्त कर सकता है, यदि मनुष्य चाहे तो; अन्यथा यह दो पगके बैलके समान गुजरा होता है।

प्रारब्ध-भोग तो सभी योनियोंमें समानरूपमें स्वतः उपलब्ध होते हैं। उनके लिये मनुष्यको प्रयत्न नहीं करना चाहिये। इन्द्रको जो सुख शचीसे प्राप्त होता है, वही सुख शूकरको शूकरीसे, कुत्तेको कुत्तीसे और नरको नारीसे प्राप्त होता है; किंतु चतुर पुरुष वही होता है जो विवेकद्वारा यम-नियम आदिका पालन करता हुआ मुमुक्षुताका अधिकार प्राप्त करनेके पश्चात् पूर्णतया साधनसम्पन्न होकर अपने जीवनलक्ष्य मोक्षकी ओर बढ़ता है। उस परमपिताने मनुष्यको कर्म करनेमें स्वतन्त्र बनाया है। चाहे वह बुरे कर्म करके नरकगामी हो या यज्ञ, दानादि करके स्वर्ग प्राप्त करे या ज्ञानसे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आत्मसाक्षात्कार करके ज्ञानाग्निद्वारा समस्त क्रियमाण एवं सञ्चित कर्मोंको भस्म करके मोक्ष प्राप्त करे। ज्ञानद्वारा प्रारब्ध कर्मोंका नाश नहीं होता। वे तो भोगने ही पड़ेंगे और प्रारब्ध-भोगतक शरीर टिका ही रहेगा। इसलिये जीवन्मुक्त होकर निर्लिप्तभावसे जीवन-निर्वाह करनेके विषयमें वह बिल्कुल स्वतन्त्र है। मनुष्य-जीवनका मुख्य लक्ष्य मोक्ष ही है।

अतः '**ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः**'—इस युक्तिको दृष्टिकोणमें रखकर अहर्निश उपनिषद्‌की निम्नलिखित उक्तिका भलीभाँति मनन एवं आचरण करना चाहिये, जिससे कि भविष्यमें जन्म-मरणके दुःखोंके कुचक्रमें न फँसना पड़े और मोक्ष लाभकर वह कृतार्थ हो सके। इसके लिये उठो, जागरूक बनो और बड़ोंके यहाँ जाकर समझो—

'**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत॥**'

संकीर्तनमें नाम-महिमा

(लेखक—स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज)

सृष्टिके प्रारम्भमें स्वायम्भुव-मन्वन्तरकी वैदिक संस्कृतिका सूर्योदय अजनाभ—भारतवर्षमें हुआ था। उस समय मानव इस कल्याण-कामनामें निरत हो गया कि उसके श्रवण कल्याणकारी शब्द ही सुनें, नेत्र मङ्गलमय दृश्य ही देखें। वैदिक कर्मोंकी सामर्थ्य प्राप्त कर सुपुष्ट अङ्गवाले हम मानवों, देवताओं एवं विश्वका हित हो, अर्थात् हम सत्कर्म करते हुए आयु बितायें। परम यशस्वी सर्वैश्वर्यसम्पन्न देवराज इन्द्र, ज्ञानागार पूषा, अरिष्टनेमि (कश्यप-पुत्र) तार्क्ष्य तथा बृहस्पति हमारा कल्याण करें—

'**ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः। भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः। स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥**' (ऋक् सं० १।८९।८, वाजसं० २५।२१, साम १८-७४)

जहाँ एक ओर वेद कानोंसे कल्याणकारी शब्द सुनकर तदनुरूप कार्यमें प्रवृत्त होनेकी ओर संकेत करते हैं, वहीं साधक ऋग्वेदके मन्त्रके अनुसार कामना करता है कि 'मेरी वाणी मनमें और मन वाणीमें प्रतिष्ठित हो, अर्थात् मनके निश्चयानुरूप ही वचन हो और वैसा ही चिन्तन हो।'

'**ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम्।**'

इन मन्त्रोंका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि मनसा-वाचा-कर्मणा सर्वतो-भावेन मानवका कल्याण हो। वाणी सर्वदा कल्याणकारी भावनाओंसे ओतप्रोत रहे। इसके लिये सर्वश्रेष्ठ और सरल उपाय है—भगवन्नाम-संकीर्तन। इसके अनवरत अभ्याससे जीवनके दो अलभ्य लाभ प्राप्त होंगे। ये ही दोनों मानव-जीवनके मुख्य लक्ष्य हैं। इनमें प्रथम है—परमानन्दकी प्राप्ति। इसपर विचार करें।

आनन्दकी कामना प्राणिमात्रका स्वभाव है। श्रेष्ठ आनन्द अखण्ड और अविचल ब्रह्मानन्द ही है। इस अक्षुण्ण आनन्दका स्रोत नाम-संकीर्तन है। नाम-संकीर्तनमें लगन और तन्मयतासे जितना सबल रसप्लावन होगा, उतना ही प्रबल उसका आविर्भाव और प्रभाव भी होगा। रूपगोस्वामी भी इसी बातकी पुष्टि करते हुए अपने भाव व्यक्त करते हैं—'पता नहीं, ये दो अक्षर 'कृष्ण' कैसे अद्भुत अमृतसे सने हुए हैं कि जबसे जिह्वापर आये, तबसे हृदय आतुर हो उठा है कि जिह्वाकी अनेक पंक्तियाँ क्यों नहीं उपलब्ध हुईं!

'**तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावलीं लब्धये।**'

(विदग्ध-माधव)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इस प्रकार एक बार चित्त भगवदाकार हो जाय तो जीवनमें पूर्ण शान्तिका अनुभव होगा। चैतन्यमहाप्रभुने भी कहा था—**'मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानाम्'** भगवन्नाम मधुरसे भी मधुर है और मङ्गलोंका भी मङ्गल है। इसके समक्ष विश्वका कोई भी अमङ्गल ठहर नहीं सकता। क्या यह जीवनकी सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि नहीं है?

दूसरा लाभ यह है कि मानव लौकिक जीवनमें श्रेष्ठ सद्गुणोंसे मण्डित हो जाता है, जो व्यावहारिक जीवनकी उत्कृष्टताका द्योतक है। यदि दूसरे शब्दोंमें कहें तो श्रेष्ठ मानवकी गणनामें स्वयंको लानेहेतु नाम-संकीर्तनका अभ्यास परम आवश्यक है। नित्य-निरन्तर नाम-चिन्तनसे उन महान् आत्माओंके आदर्श जीवनमें अवतरित होंगे, जो मानवीय गुणोंके संरक्षण एवं संवर्धनके लिये संजीवनी बनकर उसे पल्लवित और पुष्पितकर भगवत्-प्राप्तिरूपी सुमधुर फल प्रदान करायेंगे।

पुण्य-वृक्षका तो स्वभाव ही है—अचिन्तित फल शीघ्र प्रदान करना—**'अचिन्त्यं हि फलं सूते सद्यः सुकृतपादपः।'** वैदिक संस्कृति इहलोक और परलोक—दोनोंके सुधारकी विधायिका है। इसके लिये उसने भगवान्के लीला-चरित्र और गुणोंके गानका चयन किया है। भगवान्की लीलाकथा अमृतस्वरूप है, विरहसे तप्त लोगोंके लिये वह जीवन है, भक्त कवियोंने उसका गान किया है, वह पाप-तापको तो मिटाती ही है, साथ ही श्रवणमात्रसे मङ्गलका दान भी करती है। वह परम सुन्दर और अत्यन्त विस्तृत है। जो उस लीला-कथाका गान करते हैं, वे ही भूलोकमें सबसे बड़े दाता हैं—

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३१। ९)

भगवान् कृष्ण स्वयं अपने प्रिय भक्त पार्थके समक्ष इस मन्तव्यकी पुष्टि करते हैं कि जिनका चित्त और प्राण मुझमें लगा है, जो मेरी चर्चा और गुणानुवाद कहकर संतुष्ट होते हैं तथा जो निरन्तर प्रेमपूर्वक मेरे भजनमें लगे रहते हैं, उन्हें मैं स्वयं बुद्धियोग प्रदान करता हूँ, जिससे वे मुझे प्राप्त कर लेते हैं—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। ९-१०)

साधकका जीवन अहंकार एवं आडम्बरपूर्ण नहीं होता, वरन् वह सरल एवं सात्त्विक होता है। नाम-संकीर्तनके अभ्याससे प्रेमरससे आप्लावित हो जानेके बाद 'अहं' प्रायः साधकके जीवनसे सर्वदा दूर भाग जाता है। ज्ञान-मार्गमें अहंकार तो दुर्लङ्घ्य अर्गला है, पर वह भक्ति-शक्तिके सामने नहीं टिकता।

आचार्य पुष्पदन्त भी शुकदेवजी एवं तुलसीदासजीकी तरह भगवन्नाम-संकीर्तनके सम्बन्धमें विचित्र भाव व्यक्त करते हैं—

मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः।
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता॥

(शिवमहिम्नः स्तोत्र ३)

'हमारे गुणानुवादका अभिप्राय परमेश्वरको रिझाना नहीं, वरन् अपनी जिह्वाको पवित्र बनानेका प्रयोजन मात्र है।'

चित्तकी तुलना लाक्षा तथा दर्पणसे की गयी है। दर्पणपर चढ़ा आवरण उसे विकृत बना देता है। उसको भी स्वच्छ करनेका उपाय नाम-संकीर्तन है। संकीर्तनाचार्य चैतन्यने कहा है—परमोत्कृष्ट श्रीकृष्ण-नामका संकीर्तन चित्तरूपी दर्पणको शुद्ध करनेवाला, संसाररूपी विशाल दावाग्निका शामक, कल्याणरूपी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कुमुदिनीके लिये चन्द्रिकाका वितरक, विद्यारूपी वधूका जीवन, आनन्दसागरका वर्धक, पद-पदपर पूर्णामृतका आस्वादन करानेवाला और सबकी आत्माको प्रेमसागरमें स्नान करानेवाला है, वह विजयी है—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयः कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥
(चैतन्यशिक्षाष्टक)

कुछ लोग कलियुगका रोना रोकर सदाचारसे पिंड छुड़ाना चाहते हैं। कलियुगकी विषम स्थितिका अवलोकन अपने दिव्य चक्षुओंसे महर्षियोंने बहुत पहले ही किया था। अनेक ग्रन्थोंमें भी कलियुगकी भयावह स्थितिका वर्णन मिलता है, किंतु ऋषियोंने संकीर्तनको उससे भी त्राण पानेका उपाय कहा है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

राजस्थानमें कीर्तन-प्रधान भक्तिकी अखण्ड धाराको प्रवाहित करनेवाली मीराने भी कहा था—

राम नाम जप लीजे प्राणी कोटिक पाप कटै रे।
जनम जनम के खत जु पुराने, नामहि लेत फटै रे॥

नाम-संकीर्तनसे जन्म-जन्मके पाप कटनेकी बात सुनिश्चित है। गोस्वामी तुलसीदासके मतानुसार तो संकीर्तन वह कल्पवृक्ष है, जो प्रतिकूल परिस्थितियोंको भी अनुकूल बना देता है—

कलि नाम कामतरु रामको।
दलनिहार दारिद दुकाल दुःख दोष, घोर घन घाम को॥
नाम लेत दाहिनो होत मन, वाम बिधाता बामको।
कहत मुनीस महेस महातम, उलटे सूधे नामको॥
भलो लोक परलोक तासु जाके बल ललित ललामको।
तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकामको॥
(विनयपत्रिका १५६)

रहीम तो नाम-नौकाका सहारा लेकर भवसागरको पार करनेके लिये उद्यत दीख पड़ते हैं—

गति सरनागत नाम की भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर और न कछू उपाव॥

वस्तुतः भगवच्चिन्तनके बिना व्यर्थ बीता हुआ क्षणभरका भी समय सबसे बड़ी हानि, महान् दोष, अंधापन, जड़ता एवं मूर्खताका कार्य कहा गया है—

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा चान्धजडमूढता।
यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवं न चिन्तयेत्॥

अतः सभी समय भगवत्स्मरण-नाम-गुण-कीर्तनमें निरत रहना निष्कण्टक पुण्य एवं श्रेयका सरल मार्ग है।

अपराध स्वीकार करके निर्दोषको बचाना

एक पाठशालामें पाठ लेते समय बच्चे मुँहसे बार-बार सीटी बजाया करते थे। एक दिन गुरुजीने कहा—'अबसे पाठ लेते समय कोई सीटी बजायेगा तो उसे सजा दी जायगी।' इसलिये उस दिन किसीने सीटी नहीं बजायी। परंतु दूसरे दिन पाठके समय फिर सीटी सुनायी दी। पाठशालामें एक लड़का बदमाशी करने और बार-बार सीटी बजानेके लिये प्रसिद्ध था। गुरुजीने समझा कि उसीने सीटी बजायी होगी। उसको बुलाकर पूछनेपर उसने कहा—'गुरुजी! मैंने सीटी नहीं बजायी है।' पर गुरुजीको उसकी बातपर विश्वास नहीं हुआ। गुरुजीने गुस्सेमें आकर उसे मारनेके लिये ज्यों ही बेंत उठायी कि झटसे एक लड़केने सामने आकर विनयके साथ कहा—'गुरुजी! इसने सीटी नहीं बजायी, सीटी तो भूलसे मैंने बजायी थी। सजा मुझको दीजिये।'

गुरुजीने प्रसन्न होकर कहा—'तुझे सजा नहीं होगी, तूने अपने-आप सामने आकर अपना अपराध स्वीकार किया है और दूसरेको अन्यायका भोगी होनेसे बचाया है। तेरी इस सद्बुद्धिपर मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ। सब बालकोंको तेरे ही समान सच बोलनेवाला बनना चाहिये।'

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

साधकोंके प्रति—

(श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[असत्—शरीरादिसे सम्बन्ध नहीं है]

साधन करनेवालोंके मनमें एक बात ऐसे गम्भीर-रूपसे बैठी हुई है, जो आध्यात्मिक लाभमें बड़ी बाधा पहुँचाती है। लोगोंने यह धारणा बना ली है कि 'हम बातें सुनते तो हैं, पर वे हमारे काममें नहीं आतीं'। यह धारणा महान् बाधक है। आप इसपर भलीभाँति ध्यान दें। जिसे आप काममें आना मानते हैं, उस असत्से सम्बन्ध बना रहता है। आप असत् (शरीर)को 'मैं' मानकर और असत्को अपना मानकर उस असत्से तो सम्बन्ध जोड़े रहते हैं और फिर कहते हैं कि सत्सङ्गकी बातें आचरणमें नहीं आतीं।

मान लें, आपके मनमें कोई बुरी फुरना हुई, तो जिस मनमें फुरना होती है, वह मन भी असत् है और वह फुरना भी असत् है; परंतु उस फुरना तथा मनसे सम्बन्ध बनाये रखकर आप अपने सत्-स्वरूपमें विकार देखते रहते हैं और मानते रहते हैं कि मैं विकारी हूँ। यह मूल भूल है। असत्में विकार स्वाभाविक है, इसलिये उसमें विकार होते ही रहते हैं, पर आप इन मन, बुद्धि आदिके विकारोंको अपने सत्-स्वरूपमें मानते रहते हैं। आप साक्षात् परमात्माके अंश हैं, आपमें कोई विकार नहीं है; पर आपने असत्के साथ 'मैं' और 'मेरा'का सम्बन्ध मान लिया है अर्थात् नाशवान् शरीरको 'मैं' और विनाशी पदार्थोंको 'मेरा' मान लिया है। इस प्रकार 'असत्'को 'मैं' तथा 'मेरा' माननेसे उसके साथ आपका सङ्ग हो गया है।

'असत्'में विकार होते ही हैं, यह कभी निर्विकार रह ही नहीं सकता। पर आप अपनेमें उन विकारोंको मानते हैं और कहते हैं कि सत्सङ्गकी बातें काममें नहीं आतीं। आप जरा सोचिये कि विकार तो आते हैं और जाते हैं, पर आप तो वैसे-के-वैसे ही रहते हैं। इसलिये आप अपने स्वरूपमें स्थित रहें, तथा 'मैं' और 'मेरा' जो माना हुआ है, उसमें स्थित न रहें। इस प्रकार स्वरूपमें स्थित रहनेसे आप **'समदुःखसुखः स्वस्थः'** (गीता १४ । २४)—सुख-दुःखमें 'सम' हो जायँगे अर्थात् आप सुख-दुःखमें निर्विकार रहेंगे। जब आप निर्विकार रहेंगे, तब बातें काममें आ जायँगी।

सुख-दुःखोंके भोक्तापनमें हेतु कौन होता है? **'पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्'** (गीता १३ । २१) जो पुरुष प्रकृतिमें स्थित होता है, वही प्रकृतिजन्य गुणोंका भोक्ता है। इसलिये उसे ही सुख-दुःखका भोक्ता बनना पड़ता है—ऐसा कहा जाता है—**'पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते'** (गीता १३ । २०)। प्रकृतिमें स्थित होना क्या है? असत्के साथ मैं और मेरेपनका सम्बन्ध जोड़ना प्रकृतिस्थ होना है तथा मैं और मेरा—यही माया (प्रकृति) है।

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया।

(मानस, अरण्य० १४ । २)

इस मायाको पकड़कर लोग कहते हैं कि बात काममें नहीं आती। सम्बन्धको तो आप छोड़ते नहीं और विकारोंसे बचना चाहते हैं। मायाके साथ सम्बन्ध रखते हुए विकारोंसे कैसे बच सकते हैं? किसी प्रकार नहीं बच सकते। इसलिये मनकी वृत्तियोंको आप अपनी मत मानें।

देखिये, 'मैं हूँ'—इसका कभी अभाव नहीं होता; क्योंकि आप सत्-स्वरूप हैं। सत्का कभी अभाव

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नहीं होता और सत्का अभाव न होनेसे उसमें कभी भी कमी नहीं आती। हमारे स्वरूपमें भी कभी कमी नहीं आती। इसलिये हमें चाह नहीं होती। जब अपनेको कुछ चाहिये ही नहीं, तब अपने लिये कुछ भी करना नहीं है। शरीरसे जो करना है, वह सब केवल दूसरोंके हितके लिये ही करना है। इससे सिद्ध हुआ कि मुझे नहीं चाहिये, मेरा कुछ नहीं है और अपने लिये कुछ करना भी नहीं है—ऐसा निश्चय होनेपर कर्मयोग स्वाभाविक होगा।

असत्में स्वाभाविक क्रियाएँ हो रही हैं। उन क्रियाओंके साथ हम मिल जाते हैं और क्रियाओंको अपनेमें मिला लेते हैं—यह भूल होती है। इसलिये यह विवेक स्पष्टरूपसे सुदृढ़ रहे कि हमारा असत्से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, हमें कुछ भी नहीं चाहिये, हमें अपने लिये कुछ नहीं करना है और यहाँ हमारा कुछ नहीं है। कभी कहीं असत्के साथ किंचित् सम्बन्ध दीख भी जाय तो वहाँ थोड़ा ठहरकर विचार करें कि असत्के साथ मेरा सम्बन्ध कैसे हो सकता है? हाँ, पुराने अभ्याससे असत्के साथ सम्बन्ध जुड़नेकी भ्रान्ति हो सकती है, परंतु असत्के साथ मेरा सम्बन्ध है ही नहीं, हो सकता ही नहीं और होना सम्भव ही नहीं है; क्योंकि यह तो जाननेमें आनेवाला है और मैं जाननेवाला हूँ तो 'जाननेमें आनेवाले' से 'जाननेवाला' सर्वथा भिन्न होता है। जाननेमें आनेवाली वस्तु जाननेवाले मुझमें कैसे आ सकती है? जैसे मैं खंभेको जानता हूँ तो खंभा मुझमें कभी हो सकता है क्या? इसी तरह मन, बुद्धि और इन्द्रियोंमें जो विकार प्रतीत हो रहे हैं, मैं उन्हें जानता हूँ तो वे मेरेमें कैसे हो सकते हैं?

जिसे 'यह' कहते हैं, वह 'मैं' नहीं हो सकता—यह नियम है। तो फिर 'यह' 'मैं' कैसे होगा? 'यह' तो 'यह' ही रहेगा। **'इदं शरीरम्'** (गीता १३।१)—भगवान्ने शरीरको 'इदम्' कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि शरीर 'यह' है, आपसे न्यारा है। आप इसे जाननेवाले हैं और यह आपके जाननेमें आनेवाला है। आप कभी भी शरीर नहीं हैं। इसलिये शरीरको 'मैं' मानना भूल है। भगवान् कहते हैं—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

(गीता १५।७)

अर्थात् यह जीव मेरा ही अंश है और शरीर प्रकृतिका अंश है। इससे सिद्ध हुआ कि आप परमात्माके अंश हैं और आपका अपना कहलानेवाला यह शरीर प्रकृतिका अंश है, आपका नहीं है। इस शरीरको 'मैं' और 'मेरा' मानना भूल है। जितने भी विकार आते हैं, वे सब मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदिमें ही आते हैं और ये सभी 'क्षेत्र' (शरीर) कहलाते हैं। स्वयंमें विकार कभी आता ही नहीं। जब आप यह जानते हैं कि विकार आता है और जाता है, तब आने-जानेवाले विकारोंसे आपका सम्बन्ध कैसा? आने-जानेवाले विकार आपमें कैसे आ सकते हैं? बस, यह बात याद रखें। इस बातको पक्का कर लें कि मैं रहनेवाला हूँ और ये विकार आने-जानेवाले हैं। इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। आने-जानेवाले विकार मेरेमें नहीं हैं।

यह एक नियम है कि संसारके साथ मिलनेमें संसारका ज्ञान नहीं होता और परमात्मासे अलग रहनेपर परमात्माका ज्ञान नहीं होता। संसारसे अलग होनेपर ही संसारका ज्ञान होगा और परमात्मासे अभिन्न होनेपर ही परमात्माका ज्ञान होगा। इसलिये यदि असत्के साथ मिल जायँगे, तो न सत्का ज्ञान होगा और न असत्का ज्ञान होगा। वास्तवमें संसारसे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आपकी भिन्नता है। इसलिये संसारसे भिन्न होनेपर ही सत्का ज्ञान हो पायेगा। विकारोंको अपनेमें मानते रहनेसे असत्से भिन्नता नहीं होती और असत्से भिन्नता न होनेसे स्वरूपका बोध नहीं होता। तात्पर्य यह है कि असत्का ज्ञान होनेसे ही असत्की निवृत्ति होकर स्वतः सत्में स्थिति हो जाती है।

यदि आपको यह बात न जँचती हो तो कोई हानि नहीं। आपको यदि यह विश्वास हो कि जप आदिके अभ्याससे अन्तःकरण शीघ्र शुद्ध हो सकता है तो वही कर लें, अवश्य कर लें, मैं मना नहीं करता; परंतु अन्तःकरण शुद्ध करनेकी चेष्टा करनेसे वह उतना शीघ्र शुद्ध नहीं होगा, जितना कि उससे सम्बन्ध-विच्छेद करनेसे होगा। कारण कि शुद्ध करनेकी चेष्टामें आप असत्को सत् मानते रहेंगे। आप सत्-स्वरूप हैं। सत्-स्वरूप होकर आपने असत् मन, बुद्धि आदिको अपना मानकर उन्हें सत्ता दे दी अर्थात् उन्हें सत् मान लिया। इस प्रकार असत्को सत् मानकर ठीक करना चाहेंगे तो बड़ी देर लगेगी और वह ठीक होगा भी नहीं।

हमें संतोंसे एक नयी बात मिली है। वह यह है कि तीनों ही शरीर (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) **'इदम्'** हैं अर्थात् अपनेसे न्यारे हैं। इसे जो जानता है, वह है **'क्षेत्रज्ञ'**। क्षेत्रज्ञसे शरीर सर्वथा अलग है; क्योंकि यह जाननेवाला है और स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण—ये तीनों ही शरीर जाननेमें आनेवाले हैं। इन तीनों शरीरोंसे आपका सम्बन्ध नहीं है। आपका सम्बन्ध परमात्मासे है—**'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि'** (गीता १३। २)। यदि आप अपना सम्बन्ध शरीर आदिके साथ न मानकर **'माम्'** अर्थात् परमात्माके साथ मानेंगे तो इससे जितना शीघ्र शुद्धि होगी, उतना अपनेमें सद्गुण-सदाचारोंके लानेके प्रयाससे नहीं होगी।

आप परमात्माके साथ जितने अभिन्न रहेंगे उतनी ही आपमें स्वाभाविक शुद्धि आयेगी तथा शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धिमें स्वतः ही शुद्धि आ जायगी। कारण कि आपने सत्के साथ अभिन्नता मान ली, मूल वस्तु पकड़ ली। यह बहुत सीधी बात है। इसपर आप खूब गहरा विचार करें।

आपका स्वरूप सत् है और आने-जानेवाला नहीं है। शरीर आदि पदार्थ आने-जानेवाले हैं और असत् हैं—**'मात्रास्पर्शाः·········आगमापायिनः'** (गीता २। १४)। इनके साथ सम्बन्ध मत मानें। अपने स्वरूपमें स्थित रहें; क्योंकि जो भी इन्द्रियों और विषयोंके संस्पर्श हैं, वे सब आने-जानेवाले हैं। इनके साथ सम्बन्ध करनेसे ये **'शीतोष्णसुखदुःखदाः'** हैं, अर्थात् अनुकूलता और प्रतिकूलताके द्वारा सुख और दुःख देनेवाले हैं। ये दुःखके उत्पत्तिस्थान हैं। इन संयोगजन्य सुखोंमें आप रमण करते हैं, तब असत्का सङ्ग हो जाता है। असत्का सङ्ग पकड़कर जोर लगाते हैं मन आदिको शुद्ध करनेका और समझते हैं कि हम ठीक कर रहे हैं, पर बात काबूमें नहीं आती, यही उलझन है, यही असमर्थता है। इससे साधकमें हताशपना आ जाती है कि अब कैसे भगवत्प्राप्ति होगी? इसका उपाय यह है कि अपना स्वरूप तो ज्यों-का-त्यों है और उसके साथ असत्का सम्बन्ध है ही नहीं। असत्के साथ माने हुए सम्बन्धको आप छोड़ दें और केवल परमात्माके साथ अपना सम्बन्ध मान लें कि 'मैं परमात्मा हूँ और परमात्मा मेरे हैं।'

आपने असत्को 'मैं' और 'मेरा' मान लिया—यहीं तो भूल हुई है। असत्को अपना मानकर असत्को शुद्ध करना सम्भव नहीं है। कारण कि सत्ने अपना सम्बन्ध असत्से मानकर असत्को सत्ता दे दी और

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अब आप असत्‌को शुद्ध करना चाहते हैं—यह कैसे सम्भव हो सकता है ? अर्थात् ममतारूपी मलको साथ रखे रहें तो अन्तःकरण आदि असत्‌को कैसे शुद्ध बना सकते हैं ? इसलिये पहले इन असत् मन, बुद्धि, शरीर, इन्द्रिय आदिसे अपना सम्बन्ध छोड़ दें और आपका सम्बन्ध केवल भगवान्‌से है—इस बातको दृढ़तासे मान लें तो ये स्वतः शुद्ध हो जायँगे ।

जैसे, जब बालक छोटा रहता है, तब वह अपनी माँकी गोदमें ही रहना चाहता है । यदि उसे माँकी गोदसे नीचे उतार दिया जाय तो वह रोने लगता है । इसी तरह आप असत्‌में जाते हैं तो रोते क्यों नहीं ? रोइये कि हम कहाँ आ पड़े ? हम तो भगवान्‌की गोदमें ही रहेंगे । सत्‌का आश्रय रहे, भगवान्‌के साथ सम्बन्ध रहे तब तो ठीक है और असत्‌के साथ सम्बन्ध होते ही रोने लग जाइये तो भगवान्‌को आपका माना हुआ असत्‌का सम्बन्ध मिटाकर आपको अपने साथ रखना पड़ेगा, भगवान् माँसे भी बहुत अधिक दयालु हैं । उनसे आपका यह परमात्मविषयक दुःख सहन नहीं हो सकता है ।

नारायण ! नारायण ! नारायण !

सूरकाव्यमें श्रीकृष्णलीला-दर्शन

(लेखक—डॉ० श्रीकान्तिगोपालजी पुरोहित, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, पी-एच्० डी०)

हरि इच्छा करि जग प्रगटायौ ।
अरु यह जगत जदपि हरि रूप है तउ माया कृत जानि ।
ताते मन निकारि सब ठौंतें एक कृष्ण मन आनि ॥[1]

× × ×

माधुर्यमूर्ति, सच्चिदानन्दस्वरूप कृष्ण भक्तोंके सर्वस्व हैं । वे गोपियोंके प्राणवल्लभ, नन्द-यशोदाके प्राणाधार और कंस तथा आततायी दैत्योंके संहारक हैं । सूरने अन्तश्चक्षुओंसे उनके दर्शन कर ऐसा हृदयग्राही और मनोरम रूप प्रस्तुत किया कि स्वभावोक्तिको अलंकार न माननेवाले भी उनके सम्मुख नतमस्तक हुए । निम्नाङ्कित रूप-वर्णनको मनोरम और हृदयग्राही सभी मानते हैं, जिससे वात्सल्यरसकी सत्ता और महत्ता स्वतः सिद्ध हो गयी है—

शोभित कर नवनीत लिये ।
घुटुरुन चलत, रेणु तनु मण्डित, मुख दधि लेप किऐ ॥
चारु कपोल, लोल लोचन छबि, गोरोचन तिलक दिऐ ।
लट लटकन मानो मत्त मधुपगन, मानक मधुहिं पिऐ ॥
कठुला कण्ठ बज्र केहरि नख, राजत सखि रुचिर हिऐ ।
धन्य सूर एकौ पल यह सुख, कहा भयौ सत कल्प जिऐ ॥[2]

ज्ञानी और दार्शनिक उनके दर्शन कर कृतकृत्य हो गये—उद्धवके ज्ञानकी गठरी करीलकुञ्जोंमें ही यत्र-तत्र बिखर गयी ।[3] कृष्ण-छवि मधुरा भक्तिका आलम्बन और हृदय-रञ्जनकारी है, जिसमें सूरका सख्यभाव मुखरित हुआ है ।[4]

वल्लभाचार्यजीसे दीक्षा लेनेसे पूर्व सूरदासने निजी दैन्य, हीनता, आत्मग्लानि, दुःख, काम-क्रोध-मद-मोह-लोभजनित क्षोभ, सांसारिक निस्सारता और जीवनकी क्षणभंगुरताका वर्णन किया, जिसमें गिड़गिड़ाहट, मोक्ष-कामना और भवसागर पार करनेकी आकाङ्क्षा है—

दीन नाथ अब बारी तुम्हारी ।
पतित उधारन बिरद जानि कै बिगरी लेहु सँवारी ॥
बालपन खेलत ही खोयौ, जुवा विषय रस माँतै ।
वृद्ध भए सुधि प्रगटी मोकौ दुखित पुकारत तातैं ॥
सुतनि तज्यौ, तिय तज्यौ, भ्रात तज्यौ, तन तैं त्वच भई न्यारी ।

१–सूर-निर्णय पृ० १९७ २–सूर-सागर—दशम स्कन्ध पद ११ ३–भ्रमरगीतसार—भूमिका
४–डॉ० हरवंशलालजी शर्मा–सूर और उनका साहित्य–भक्ति और पौराणिकताका विवेचन ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्रवनन सुनत चरन गति थाकी नैन भए जलधारी ॥
पलित केस कफ कंठ बिरुध्यौ कल न परति दिन राती ।'[1]

उस समय उन्होंने राम, कृष्ण, हरि और ईश्वरके अन्य नामोंको परब्रह्मका पर्यायवाची माना। कृष्णलीलाके पात्रों और उसकी कथाओंको ज्ञान-वैराग्य-प्रधान दृष्टि-कोणसे चित्रित किया। यह वर्णन सर्वशक्तिमान ब्रह्मका चित्रण, एकेश्वरवादी दर्शन-तत्त्व और ज्ञानशक्तिसे समन्वित है। यहाँ अजामिल, गणिका और गज-ग्राहके माध्यमसे भगवान्‌के सर्वशक्ति-सम्पन्नरूपके दर्शन कराये गये हैं जो भारतीय मानसकी थाती हैं और जिनके आधारपर हर भारतीयको दार्शनिककी संज्ञा दी जाती रही है।[2]

कालान्तरमें वल्लभाचार्यजीने उनसे कहा—'सूर ह्वै कै काहे, को घिघियात है।' आचार्यजीने सूरका पथ-निर्देशन करते हुए श्रीमद्भागवत पुराणकी कथा सुनायी जिसमें बल था—कृष्णके बालचरितपर, उनके लीला-बिहारी रूपपर।[3]

सूरदासको 'पुष्टिमार्ग' में दीक्षित कर लिया गया। दीक्षा लेनेके पश्चात् सूरने बालकृष्णलालजीके रूप-लीला-दर्शनके गान प्रारम्भ किये; और, जिसरूपमें श्रीकृष्णका श्रृङ्गार होता था उसी रूप-दर्शनको वे अभिव्यक्त कर देते थे। जब सूरकी इस क्षमताकी परीक्षा करने-हेतु कृष्णको केवल मोतियोंका ही श्रृङ्गार करा दिया गया; तब सूरदासने अभिव्यक्त किया—

देखो रि ! हरि नंगमनंगा ।
जलसुत भूषन अंग बिराजति, बसन हीन छबि उठत तरंगा ॥
कहा कहुं अंग अंग की शोभा, निरखत लज्जित कोटि अनंगा ।
कछु दधि हाथ कछू मुख माखन, सूर हँसत ब्रज जुवतिन संगा ॥[4]

इन पदोंमें गोप-गोपी, रास, कालियदमन, ब्रह्माद्वारा बछड़ोंका हरण, कृष्णका गोवर्द्धन धारण, गोचारण और बालकृष्ण लालकी लीलाओंका साधारणीकरण किया गया है। उदाहरण लीजिये—

पाँडे नहिं भोग लगावन पावै ।
करि करि पाक जबै अर्पत हैं तबही तब ह्वै आवै ॥
इच्छा करि मैं ब्राह्मन् न्यौतौ ताकौं स्याम खिझावै ।
वह अपने ठाकुरहिं जिवावैं ऐसैं उठि धावै ॥
जननि दोष देति कत मोकौं बहु विधान करि ध्यावै ।
नैन मूँद कर जोरि नाम लै बारहिं बार बुलावै ॥
कहि अन्तर क्यों होइ भक्त सौं जो मेरैं मन भावै ।
सूरदास बलि-बलि बिलास पर जन्म जन्म जस गावै ॥[5]

सूरके गोचारणपद तो विश्व-साहित्यमें पैस्टोरल पाइट्री-के अन्यतम उदाहरण हैं। सूरदासने अवतारोंका भी स्मरण किया है—

भूमि रेनु को उगनै, नक्षत्रनि गनि समझावै ।
कह्यौ चहै अवतार अंत सोऊ महि पावै ॥[6]

इन सभीके माध्यमसे सूर कृष्णकी ही आराधना करते हैं—राम-कृष्णकी एकता हृदयसे प्रतिपादित करते हैं।[7] राधा और सीताको भी एक ही शक्ति मानते हैं। पृथ्वीका शेषनागपर स्थित होना, प्रलय, अक्षयवट, चन्द्र-राहु-ग्रहण, चन्देके रथोंमें मृगोंका जुते हुए होना, लंका-विजयके पश्चात् राम पक्षके योद्धाओंका पुनर्जीवित हो उठना आदि कथाओंको सूरने सरसता-पूर्वक चित्रित किया है।

सूरने श्रीकृष्णके अनुग्रहको सर्वाधिक महत्त्व दिया है। वे रसरूप और रसमय हैं। ये नित्य हैं और इसी

१–सूरसागर—दशम स्कन्ध पृ० ५४ आदि। २–एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका—इण्डियन का अर्थ।
३–कृष्णस्य बाल्चरितं कौमारश्च व्रजस्थितः। कैशोरं मथुरास्थानं यौवनं द्वारिकास्थितम् ॥
(भागवत—दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध)
४–सूरनिर्णय पृ० २६८, ५–सूरसागर सटीक भाग। पृ० ४४५ पद २९४, ६–सूरसागर, दशम स्कन्ध, पद ९८१।
७–सूरसागर दशम स्कन्ध, पद ९८१।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हेतु इनकी लीलाएँ भी नित्य हैं । नित्य लीलामें 'वृन्दावन आदि अजर जहाँ, कुंजलता विस्तार और यही लीला भूतलपर प्रकट हुई—'वृन्दावन निजधाम कृपा करि तहाँ दिखरायौ ।'

सब दिन तहाँ बसन्त कल्पवृक्षन सौं छायौ ।' एवं—
'सो श्रुति रूप होय ब्रज मण्डल कीनो रास-बिहार ।
नवल-कुंज में अंस बाहु धरि कीन्हीं केलि अपार ।
नित प्रति करत बिहार मधुर रस स्यामा स्याम सुवेश ।'

यह सूरदासका कृष्ण-दर्शन पुष्टिमार्गीय—शुद्धाद्वैतवादी है । श्रीकृष्ण और जीव एक हैं, नानारूपमय जगत् श्रीकृष्णका ही अंश है । श्रीकृष्ण अपनी माया-से सृजन कर नित्य आनन्द उपभोग करते हैं । वे वृन्दावनमें रमण करते हैं । गोपियाँ उनकी आराधिकाएँ हैं । जब कृष्ण बाह्य-रूप लीला करते हैं तब उनकी शक्तियाँ भी बहि:स्थिति करती हैं । सूरने सखाभावसे माधुर्यमूर्ति श्रीकृष्णके दर्शन कर उनको लीलाओंका गान किया है, जो भक्तोंके कण्ठका हार बन गयी है । निर्णय यही है—

करी गोपालजीकी सब होई'
'यमुना महारानी' तथा
ब्रज सदैव सुखकारी हितकारी है' ॥

भागवतीय प्रवचन

(संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)

महाभारतमें श्रीकृष्ण-चरित है । वहाँ धर्म और सदाचारको महत्त्व दिया गया है, किंतु प्रेम गौण है । आप ऐसी कथा करें कि आपको भी शान्ति मिले और सब जीवोंको भी शान्ति मिले । व्यासजीने जबतक भागवत-शास्त्रकी रचना नहीं की, तबतक उनको शान्ति नहीं मिली । कलियुगमें कृष्ण-कथा और कृष्ण-कीर्तनके सिवा दूसरा कोई उद्धारका उपाय नहीं है । कलियुगमें मनुष्योंका उद्धार दूसरे साधनोंसे नहीं हो सकता । केवल कृष्ण-कीर्तन, कृष्ण-स्मरणसे ही कलियुगमें मनुष्योंका उद्धार होगा । परमात्माकी लीला-कथाका वर्णन आप अत्यन्त प्रेमपूर्वक करें । सभी साधनोंका फल प्रभुप्रेम है । आप तो ज्ञानी हैं । महाराज, मैं आपको अपनी कथा सुनाता हूँ । मैं कैसा था और कैसा हो गया ।

व्यासजीको विश्वास दिलानेके लिये नारदजी अपना ही दृष्टान्त देते हैं । अपने पूर्वजन्मकी कथा सुनाते हैं । कथा-श्रवण और सत्संगका फल बताते हैं । कथा सुनने और संतोंकी सेवा करनेसे जीवन सुधरता है । मैं दासीपुत्र था, परंतु मैंने चार मास कन्हैयाकी कथा सुनी । मुझे सत्संग मिला तो मेरा जीवन दिव्य बना । कृष्णकथासे मेरा जीवन सुधरा । दासीपुत्र होनेके कारण मुझे आचार-विचारका कुछ भान न था, परंतु मैंने कथा सुनी, इससे मेरा जीवन पलट गया । यह मेरे सद्गुरुकी कृपा थी ।

व्यासजी नारदजीसे कहते हैं कि आप अपने पूर्वजन्मकी कथा सुनाइये । नारदजी कथा सुनाते हैं—'मैं सात-आठ सालका था कि मेरे बचपनमें ही मेरे पिताकी मृत्यु हो गयी । मेरी माता दासीका काम करती थी । मैं भील बालकोंके साथ खेलता था । मेरे पुण्योंका उदय हुआ । हम जिस गाँवमें रहते थे, वहाँ घूमते-फिरते साधु आये । गाँवके लोगोंने उन्हें उस गाँवमें चातुर्मास ठहरनेको कहा और कहा—'इस बालकको

१-सूरनिर्णय पृ० ९१; २-वही; ३-सूरसारावली १ । २६२; ४-वही उ० पाठ, ९ । १०

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हमलोग आपकी सेवामें सौंपते हैं । यह पूजाके फूल लानेमें सहायता करेगा । दूसरे काम भी करेगा । विधवाका लड़का है, प्रसाद भी आपके पास ही ले लेगा ।' इससे मुझे संतोंका केवल दर्शन ही नहीं, उनकी सेवाका भी लाभ मिला । जबतक किसी महापुरुषकी प्रत्यक्ष सेवा नहीं की जाती तबतक मनमेंसे वासना नहीं जाती । अंदरके विकार नहीं जाते । मेरे गुरुदेव सच्चे संत थे । प्रभु-भक्तिमें रँगे थे । मुझे सच्चे संतकी सेवा करनेका लाभ मिला । पहले तो सच्चे संतोंके दर्शन मिलते नहीं, और दर्शन हो भी जायँ तो उनके प्रति सद्भाव नहीं जागता । गुरुदेव अमानी थे, इसलिये दूसरोंको मान देते थे । उनके संगसे मुझे भक्तिका रंग लगा । गुरुने मेरा नाम हरिदास रखा ।

शुकदेवजीने जन्मते ही व्यासजीसे कहा कि 'आपसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है । आप मेरे पिता नही हैं । मेरे पिता तो प्रभु परमात्मा हैं । मुझे जाने दें ।' परंतु यह मार्ग सरल नहीं है । सामान्य मनुष्य इस मार्गका अनुकरण कर सके, ऐसा नहीं है । सरल मार्ग तो यह है कि सबके साथ प्रेम करो अथवा एक प्रभुके साथ प्रेम करो । आत्मा और परमात्मा एक हैं । गुरुदेव प्रेमकी मूर्ति थे । गुरुजीके उठनेसे पहले मैं उठता था । गुरुजीकी सेवा-पूजाके समय मैं फूल-तुलसी ले आता था । मेरे गुरुजी दिनमें दो बार कीर्तन करते थे । प्रातः ब्रह्मसूत्रकी चर्चा करते थे, परंतु रातको प्रतिदिन कृष्णकथा और कृष्णकीर्तन करते । कन्हैया उनको बहुत प्यारे थे । मेरे गुरुदेवके इष्टदेव बालकृष्ण थे । ये ऋषि बालस्वरूपकी आराधना करते थे । बालक जल्दी प्रसन्न होते हैं । बालकृष्ण जल्दी प्रेम करते हैं और जल्दी प्रसन्न होते हैं । कन्हैयाका कोई भक्त उन्हें बुलाता है तो वे दौड़कर जाते हैं । मैं कीर्तनमें जाता और कथा सुनता था । मैं बहुत कम बोलता था । बहुत बोलना संतोंको अच्छा नहीं लगता । वाणीसे शक्तिका खर्च मत करो; अर्थात् कम बोलो । मौन रखो ।

सेवा करनेवालेपर संत कृपा करते हैं । नारदजी कहते हैं कि ये तीनों गुण मुझमें थे । मैं तो कोल और भील बालकोंसे खेलता था । एक दिन मैं कथामें गया । मेरे गुरु कृष्णकथाका वर्णन कर रहे थे । मैंने कथामें बाललीला सुनी । छोटे-छोटे बालक कन्हैयाको बहुत प्यारे लगते हैं । कथा सुनकर प्रभुके प्रति मेरा सद्भाव जागा । यह कृष्णकथा प्रेमकथा है । कृष्ण-कथामें योगियोंको, स्त्रियोंको, बालकोंको—सबको आनन्द आता है । श्रीकृष्णकी कथा ऐसी दिव्य है कि यह सबको आनन्द देती है । श्रीकृष्ण-कथामें ऐसा आनन्द आने लगा कि मेरा खेलना छूट गया ।

श्रीकृष्णकथामें गुरुदेव पागल बने हैं । मनुष्य संसारके पीछे पागल बनते हैं और इसलिये उस दशासे मुक्त नहीं हो सकते । यदि भगवान्के पीछे जीव पागल बने तो जीव-शिव एक हो जाते । संतकी आँखें शुद्ध होती हैं, पवित्र होती हैं । संत आँखोंसे पाप नहीं करते । संतकी आँखोंमें श्रीकृष्ण विराजते हैं । संत तीन प्रकारसे कृपा करते हैं । संत जिसकी ओर बार-बार दृष्टिपात करते हैं, उसका जीवन सुधरता है । माला फेरते जिस शिष्यकी याद आयेगी, उसका जीवन सुधरेगा । मेरे गुरु मुझे बार-बार निहारते थे । गुरुजी कहते थे, यह बच्चा बड़ा समझदार है । गुरुजीको आनन्द होता था । वे बहुत प्रसन्न थे ।

यह जीव जातिहीन है, परंतु कर्महीन नहीं है । संत जिसपर प्रेमकी दृष्टि डालते हैं, उसका कल्याण होता है । प्रसाद ले लेनेके बाद मैं उनकी जूठी पत्तलें उठाता था । मैं दासीपुत्र तो था ही । कहे बिना मुझे खानेको कौन देता । गुरुजीने मुझे इस प्रकार सेवा करते देखा । संतका हृदय पिघला । एक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दिन गुरुजीने पूछा कि 'हरिदास ! तुमने भोजन किया है ?' मैंने तो ना कह दिया । गुरुदेवको मुझपर दया आयी । गुरुदेवने मुझे आज्ञा दी कि 'पत्तलोंमें मैंने महाप्रसाद रखा है, वह तुम खाओ ।' मैंने वह प्रसाद खाया । शास्त्रकी आज्ञा है कि गुरुकी आज्ञाके बिना उनका उच्छिष्ट नहीं खाना चाहिये । संत जब कल्याणकी भावनासे प्रसाद देते हैं, तब कल्याण होता है । संत हृदय पिघलनेपर बुलाकर देते हैं । तब वे प्रसन्न हुए हैं, ऐसा माना । मैंने प्रसाद ग्रहण किया । मेरे सब पाप नष्ट हुए । मुझे भक्तिका रंग लगा । मुझे कृष्णप्रेमका रंग लगा । उस दिन मैं कीर्तनमें गया । मुझे नया अनुभव हुआ । कीर्तनमें एक निराला आनन्द आया । मैं आनन्दमें 'थै-थै' नाचने लगा । अत्यन्त आनन्दमें देहाध्यास छूटता है । कीर्तनभक्ति श्रीकृष्णजीको अतिशय प्रिय है । भक्तिका रंग मुझे उसी दिन लगा, मुझे राधाकृष्णका अनुभव हुआ । (शुकदेवजी कहते हैं—नारदजी व्यासजीको अपना आत्मचरित सुनाते हैं ।) मैं कम बोलता था, इसलिये मुझपर संतोंकी कृपा हुई । मैं सेवामें सावधान रहता था । संत सेवामें सद्भाव रखते हैं । परंतु गुरुदेवकी मुझपर विशेष कृपा हुई, अतः उन्होंने मुझे वासुदेव-गायत्री मन्त्र दिया । [पहले स्कन्धमें पाँचवे अध्यायका सैंतीसवाँ श्लोक वासुदेव-गायत्रीका मन्त्र है—]

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥

इस वासुदेव-गायत्रीका सदा जप करो ।

चार मास इसी प्रकार मैंने गुरुदेवकी सेवा की । गुरुदेवजीके वह गाँव छोड़कर चले जानेका दिन आया । गुरुजी अब चले जायँगे, यह सोचकर मुझे दुःख हुआ । मैंने गुरुजीसे कहा—'गुरुजी ! आप मुझे साथ ले चलें । मुझे मत छोड़ें । मैं आपकी शरणमें आया हूँ । मैं आपके चौकेपर सोया करूँगा । मैं आपका छोटा-से-छोटा काम भी करूँगा । मुझे सेवामें साथ ले चलें । मेरी उपेक्षा न करें । गुरुदेवने विधाताका लेख पढ़कर मुझसे कहा कि 'तू अपनी माताका ऋणानुबन्धी पुत्र है । इस जन्ममें तुझे उसका ऋण चुकाना चाहिये । इसलिये माताका त्याग न करना । तू यदि माताको छोड़कर आयेगा तो तुझे दूसरा जन्म लेना पड़ेगा । तेरी माताकी आहें हमारे भजनमें विक्षेप करेंगी । तू घरमें रह । घरमें रहकर भी प्रभुका भजन हो सकता है ।' घरमें रहना और इस महामन्त्रका जप करना । माँका अनादर नहीं करना । जप करनेसे प्रारब्ध बदलता है । जपकी धारा नहीं टूटे, इसका ध्यान रखना । मैंने गुरुजीसे कहा—'आप जप करनेको कहते हैं, किंतु मैं तो अनपढ़ दासीपुत्र हूँ । मैं जप कैसे करूँगा ? जपकी गिनती कैसे करूँगा ?' गुरुदेवजीने कहा—'जप करनेका काम तू कर और जप गिननेका काम श्रीकृष्ण करेंगे । जप तू कर, गिनेंगे कन्हैया । जो प्रेमसे भगवान्का स्मरण करते हैं, उनके पीछे-पीछे भगवान् फिरते हैं । मेरे प्रभुको और कोई काम नहीं है । उन्होंने जगत्की उत्पत्ति और संहारका सारा काम मायाको सौंप दिया है । परमात्माके नामका जो जप करता है, परमात्मा उसके पीछे-पीछे फिरते हैं । जपकी गिनती नहीं करनी है । जप गिनेगा तो किसीसे कहनेकी इच्छा होगी । किसीसे जपकी संख्या गिननेके लिये कहेंगे तो थोड़ा पुण्य चला जायगा । पुण्यका क्षय होगा ।' गुरुजीने मुझे वासुदेव-गायत्रीमन्त्रका बत्तीस लाख जप करनेको कहा । 'बत्तीस लाख जप होगा तो विधाताका लेख भी मिटेगा, पापका नाश होगा । बेटा ! इस मन्त्रका सदा जप करना । मन्त्रका जप करनेसे ईश्वरके साथ जीवका सम्बन्ध होता है । रुद्रसे सम्बन्ध पहले होता है, इसके बिना ब्रह्मके साथ सम्बन्ध नहीं होता । फिर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ब्रह्म-साक्षात्कार होता है। प्रतिदिन यही भावना रखना कि श्रीकृष्ण मेरे साथ ही हैं। श्रीकृष्ण प्रेमके स्वरूप हैं। वे तेरा कल्याण करेंगे। बेटा! तू बालकृष्णका ध्यान करना। श्रीकृष्णका बालस्वरूप अति मनोहर है। बालकको थोड़ा दो तो भी वह राजी होता है।' इसलिये गुरुदेवने बाल-उपासनाकी और बालस्वरूपका ध्यान करनेकी आज्ञा दी—भावनासे बालस्वरूपका ध्यान कर। मेरे गुरुजी मुझे छोड़कर चले गये। मुझे अति दुःख हुआ। पूर्वजन्मके गुरुका नाम लेते ही नारदजी रोने लगे।

सच्चे सद्गुरुको कोई स्वार्थ नहीं होता। मैंने निश्चय किया और जप आरम्भ कर दिया। मैं सतत जप करता रहता। जप किये बिना मुझे चैन नहीं आती। घूमते-फिरते और स्वप्नमें भी जप करता था।

शय्यापर सोनेसे पहले सदा जप करो। जपकी धारा न टूटे। एक वर्षतक वाणीसे जप करना। तीन वर्ष कण्ठसे जप करना। तीन वर्षके बाद मनसे जप होता है। इसके बाद अजपाजाप होता है।

माँको यह रुचता न था। फिर भी मैंने बारह वर्षतक सोलह अक्षरी महामन्त्रका जप किया। मनुष्य जप करते हुए भी बहुत छल-कपट करते हैं। इसीसे उनके पुण्योंका नाश होता है। माँकी बुद्धि भगवान् बदल देंगे, यह सोचकर माँको मैंने कभी कुछ न कहा। मैंने अपनी माताका कभी भी अनादर नहीं किया। माता एक दिन गोशालामें गयी। वहाँ उसको सर्पने काट लिया। सूतजी सावधान करते हैं। सर्प अपराधीको काटता है। माताने शरीरका त्याग किया। प्रभुने कृपा की **'अनुग्रहं मन्यमानः'**। मैंने माना कि मेरे भगवान्का मुझपर अनुग्रह हुआ है। माताजीकी देहका अग्नि-संस्कार किया। मुझे आनन्द हुआ। मैं मातृ-ऋणसे मुक्त हुआ। घरमें जो कुछ रखा था, मैंने माताके काममें लगा दिया। मुझे प्रभुमें श्रद्धा थी, अतः मैंने कुछ संग्रह नहीं किया। जन्मसे पहले मेरे लिये माताके स्तनमें दूध पैदा करनेवाला दयालु भगवान् मेरे पोषणकी व्यवस्था करेगा। वह क्यों नहीं करेगा? परमात्मा विश्वका स्वरूप है। मैं अपने भगवान्का हूँ तो क्या भगवान् मेरा पोषण नहीं करेंगे? मैंने कुछ नहीं लिया। पहने हुए कपड़ोंके साथ मैंने गृहत्याग किया। जिसका जीवन केवल ईश्वरके लिये है, वह कभी भी संग्रह नहीं करेगा। भगवान् नास्तिकका भी पोषण करता है। नास्तिक कहता है—'मैं ईश्वरको नहीं मानता'। परंतु मेरे परमात्मा कहते हैं—'बेटा! तू मुझे नहीं मानता, किंतु मैं तुझे मानता हूँ।' जो ईश्वरका नियम नहीं पालता, जो धर्मको नहीं मानता, ऐसे नास्तिकका भी परमात्मा पोषण करते हैं। क्या कन्हैया मेरा पोषण नहीं करेंगे?

(क्रमशः)

'हरहु भेद मति'

कस न दीनपर द्रवहु उमावर। दारुन बिपति हरन करुनाकर॥ १॥
बेद-पुरान कहत उदार हर। हमरि बेर कस भयेहु कृपिनतर॥ २॥
कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज। होइ प्रसन्न दीन्हेहु सिव पद निज॥ ३॥
जो गति अगम महामुनि गावहिं। तव पुर कीट पतंगहु पावहिं॥ ४॥
देहु काम-रिपु! राम-चरन-रति। तुलसिदास प्रभु! हरहु भेद-मति॥ ५॥

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कबीरके साहित्यमें चरित्र-निर्माणके तत्त्व

(लेखक—श्रीकन्हैया सिंहजी विशेन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

सत्य

सत्य ही तप है, सत्य परमात्माका स्वरूप है। सभी शास्त्रोंने सत्यकी महिमाका गायन किया है। सत्यसे ही धर्म, धन, यश और परोपकारकी भावनाको बल मिलता है। सत्यकी व्याख्या सबके बसकी बात नहीं है। पारमार्थिक सत्य एक परमात्मा ही है। सत्य सनातन, अविनाशी और अविकारी भी होता है। व्यावहारिक सत्यके समर्थनमें संत कबीरका विचार है कि सत्य ही सर्वोत्तम तप है, असत्य ही घोर पाप है। जहाँ सत्यका वास होता है वहाँ स्वयं सत्य-स्वरूप परमात्मा ही निवास करते हैं। कबीरदास कहते हैं कि जबतक निमे असत्य भाषण नहीं करना चाहिये; क्योंकि पलके चौथे हिस्सेमें अर्थात् अत्यल्प समयमें न जाने क्या हो जायगा, कहा नहीं जा सकता है। इतना ही नहीं, वर्तमानमें सत्यकी उपेक्षा देखकर उनका दिल दुःखी हो जाता है और वे कहने लगते हैं कि लोग संसारमें झूठेका ही विश्वास कर लेते हैं, सत्यका कोई विरला ही विश्वास करता है; क्या ही विचित्र बात है—गोरस बेचनेके लिये (बेचनेवालेको) तो गली-गली भटकना पड़ता है, और मदिरा अपने निश्चित स्थानसे ही (बैठे-बैठे) बिक जाती है—

साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदय साँच है ताके हिरदय आप॥
झूठ बात नहिं बोलिये जब लग पार बसाय।
न जाने क्या होयगा पलके चौथे भाग॥
साँचैं कोई न पतीजई झूठे जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरैं मदिरा बैठि बिकाय॥

अहिंसा

अहिंसा परम धर्म है। व्यक्ति और समाजकी सुख-शान्तिके लिये अहिंसाका सम्यक् पालन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। प्रायः समस्त शास्त्रोंमें अहिंसाका प्रतिपादन किया गया है। 'जीओ और जीने दो' की भावनामें अहिंसा ही प्रतिष्ठापित है। अहिंसाका सच्चा साधक महान् योगी ही होता है। जो सब जीवोंमें समभाव रखता है, अपने दुःख-सुख—जैसा दूसरेका दुःख-सुख मानता है, वही अहिंसाका साधक कहला सकता है। अहिंसाका मनसा-वाचा-कर्मणा पालन व्यक्तिको जीवन्मुक्त बना देता है। उसे किसी भी प्रकारके जीवधारियोंसे कष्ट नहीं प्राप्त हो सकता है। सच्ची अहिंसामें प्रतिहिंसाका कोई स्थान नहीं होता है। संत कबीरके अहिंसाकी अवधारणा भोजन और जीवन दोनोंपर प्रकाश डालती है। उनका कथन है कि सभी जीव एक हैं, अतः आहारमें पूर्ण विचार कर बिना श्वासवाली वस्तुओंका सेवन करना चाहिये। वास्तवमें सच्चा वीर वही है, जो दूसरोंकी पीर समझता है। जो दूसरोंकी पीर नहीं समझता वही काफिर कहलाता है। इतना ही नहीं, कबीर पूर्ण विश्वास और आत्मनिष्ठाके साथ घोषणा करते हैं कि जिसका गला तुम काटोगे वह निश्चय ही तुम्हारा गला भी काटेगा; यह ध्रुव सत्य है—

जीव जीव सब एक है, जिवका करौ विचार।
बिन सांसा का जीव है, ताका करौ अहार॥
कबीर तेई पीर है, जो जानै पर पीर।
जे पर पीर न जानई, ते काफिर वे पीर॥
कहता हूँ, कहिजात हूँ, कहा जु मान हमार।
जाका गला तुम काटिहौ, सो फिर काटि तुम्हार॥

शील

शील स्वभावका एक विशिष्ट गुण और चरित्रका निर्णायक तत्त्व माना गया है। शीलयुक्त व्यक्ति विवेकी होता है। शीलका आशय उदारता, सदाशयता, सहजता

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

और निष्कपटतासे अभिव्यक्त होता है। शील मनकी दशाको निर्मल कर सुख प्रदान करता है। शीलके विषयमें कबीर कहते हैं कि शीलके आश्रयमें ही तीनों लोकोंकी सम्पदा निहित रहती है; क्योंकि शीलवन्त व्यक्ति ही लोगोंसे बड़ा माना जाता है। सुखका सागर तो वास्तवमें शील ही है। यही नहीं, जिस प्रकार द्रव्यके अभावमें साह्व और शब्दके अभावमें साधुकी स्थिति हो जाती है, वैसी ही स्थिति व्यक्तिकी, शीलके अभावमें हो जाती है। और सुख बिना शीलके नहीं प्राप्त हो सकता है—

शीलवंत सब सो बड़ा, सब रतनों की खान।
तीन लोक की संपदा, रही शीलमें आन॥
सुखका सागर शील है, जो कोई पावै थाह।
शब्द बिना साधू नहीं, द्रव्य बिना नहिं शाह॥

संतोष

संतोषके बृहत्तम अर्थमें धैर्य, धारणा और सहनशीलता भी सम्मिलित हैं। संतोष व्यक्तिको तृप्त करता है, पूर्ण बनाता है। मनको प्रसन्नता और चित्तको सुख-शान्ति प्रदान करता है, चित्तवृत्तिको निर्मल कर मस्तिष्कको तनाव-रहित और चिन्तामुक्त करता है। किसी भी कार्यकी निश्चित सफलताके लिये संतोष-धारणकी महती आवश्यकता होती है। संतोष-वृत्ति भोजनसे लेकर जीवन-यापनतकके समस्त सुख-सुविधाओंके प्रति एक संतुलित दृष्टिकोण उत्पन्न करती है। संतोषी व्यक्ति सदा सुखी रहता है। इतना ही नहीं, संतोषरूपी धन गोधन, गजधन, वाजिधन और रत्न-धनकी अपेक्षा बहुत ही उत्तम माना गया है; क्योंकि तुलनात्मक दृष्टिसे संतोषरूपी धन ही सर्वश्रेष्ठ है, शेष धन तो तुच्छ मिट्टी-(धूलि-) के समान ही हैं, जो नश्वर और अस्थिर माने गये हैं। रूखा-सूखा खाकर शीतल जल-सेवनकी सलाह कबीर-साहित्यमें उपलब्ध है—जहाँ आधी और रूखी रोटीको चुपड़ीकी तुलनामें श्रेष्ठ माना गया है; क्योंकि चुपड़ीकी आकाङ्क्षा लोभको जन्म देती है और लोभसे पाप होता है—

गोधन, गजधन, बाजिधन और रतन धन खानि।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान॥
रूखा सूखा खायकर, ठंडा पानी पीव।
देखि परायी चूपड़ी, मत ललचावै जीव॥
आधी और रूखी भली, सारी सौग संताप।
जो चाहेगा चूपड़ी बहुत करैगा पाप॥

दया

दया और धर्म, लोभ और पाप, क्रोध और काल, क्षमा और परमात्माका घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरेके पूरक हैं। दयाके अभावमें ज्ञान-कथन निरर्थक माना गया है। दयारहित भक्ति आडम्बरी, और ज्ञान सारहीन होता है। दयाके व्यापक अर्थमें पर-दुःख-कातरता भी सम्मिलित है। जो दूसरोंकी पीर (दुःख-दर्द) समझता है, वही सच्चा पीर (महात्मा) माना गया है। संत कबीरके अनुसार मनुष्यमात्रको अपने हृदयमें दयाका भाव धारण करना चाहिये; क्योंकि चींटीसे लेकर हस्तीतक सभी जीवोंमें एक ही परमात्मा वास करता है। सबमें वही है और उसीमें सब कुछ है। वे कहते हैं कि सबमें वही स्वयं लीला-विलास कर रहा है, इसलिये हे प्राणी! तू निर्दयी और कठोर मत बन। इतना ही नहीं, कबीरका तो यहाँतक कथन है कि बदरीनाथ और गया-जैसी उच्च कोटिकी यात्राओंकी अपेक्षा दया-भाव-धारण अधिक श्रेष्ठ होगा; क्योंकि निर्दयी व्यक्तिकी समस्त तीर्थयात्राएँ निष्फल और निरर्थक मानी गयी हैं—

जहाँ दया वहाँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध वहाँ काल है, जहाँ क्षमा तहँ आप॥
दाया दिलमें राखिये, तू क्यों निर्दय होय।
साईंके सब जीव हैं, कीरी कुंजर सोय॥
भावे जावौ बदरी, भावे जावौ गया।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सबसे बड़ी है दया॥

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दीनता

दीनता चरित्रका एक सद्गुण है जो व्यक्तिको महान् बनाता है। झुकनेवाला ही तराजूकी तौलमें भारी माना गया है। बड़े ग्रह (सूर्य और चन्द्रमा) ही ग्रहणसे प्रभावित होते हैं, छोटे-छोटे तारे नहीं। खजूर-जैसी बड़ाई किस कामकी, जिससे छाया भी न मिले और यदि फल भी लगे तो पहुँचके बाहर (अति ऊँचाईपर)। इतना ही नहीं, ऊँचे स्थानोंपर पानी नहीं टिकता है; वे सूखे मरुस्थल ही बने रहते हैं; निचले क्षेत्र ही जलसे सिक्त हो पाते हैं। शायद इसीलिये कबीरका आग्रह है कि प्रभुताको छोड़कर प्रभुका भजन-स्मरण करना ही श्रेयस्कर है——

कबीर नवै से आपको, पर को नवै न कोय।
चालि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय॥
बड़ी विपत्ति बड़ाई है, नन्हा करमसे दूर।
तारे सब न्यारे रहैं, गहै चंद और सूर॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंछी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर॥
ऊँचे पानी न टिकै, नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भरि पियै, ऊँच पियासा जाय॥
लघुतासे प्रभुता मिलै, प्रभुतासे प्रभु दूर।
चींटी चावल लै चली, हाथीके सिर धूर॥
प्रभुताको सब कोई भजे, प्रभुको भजे न कोय।
जो कबीर प्रभुको भजे, तो प्रभुता चेरी होय॥

लोभ

लालच बुरी बला है। लालचीका कोई चरित्र नहीं होता। कदम-कदमपर उसका पतन होता रहता है। लालचके वशीभूत होकर ही मक्खियाँ गुड़पर बैठ अपने पंख चिपकाकर उड़नेके लिये फड़फड़ाती रहती हैं। लालची सिद्धान्तवादी और निष्ठावान् नहीं हो सकता——

माखी गुड़में गड़ि रही, पंख रहा लपटाय।
तारी पीटै सिर धुने, लालच बुरी बलाय॥
चिउँटी चावल लै चली, बीचमें मिल गई दाल।
कह कबीर दोऊ न मिलै, एक लै दूजी डार॥

मोह

मोह मायाका पर्याय है। मोहित व्यक्ति कर्तव्य-विमुख हो जाता है। मोहकी वासनासे व्यक्तिका पतन हो जाता है। मोहग्रस्तकी बुद्धि सत्-असत्के निर्णयमें असमर्थ हो जाती है। यही नहीं, प्रकारान्तरसे अष्ट सिद्धियाँ और नौ निधियाँ भी मोह-वासनाकी ही प्रतीक हैं; जबकि वास्तविकता तो यही है कि यह सारा भ्रम-जाल-मात्र नदी-नाव-संयोग ही है——वास्तवमें न हम किसीके हैं न कोई हमारा है——

अष्ट सिद्धि नव निद्धि लौं, सबहि मोहकी खान।
त्याग मोहकी वासना, कहै कबीर सुजान॥
अपना तो कोई नहीं, हम काहूके नाहिं।
पार पहूँची नाव जब, सब मिलि बिछुड़े जाहिं॥

क्षमा

बदला ले सकनेकी सामर्थ्य रखते हुए, प्रसन्नता-पूर्वक, दूसरोंद्वारा किये गये अपकृत्योंका शान्तभावसे सहन करना ही सच्ची क्षमा है। सच्ची क्षमामें प्रतिहिंसाको कोई स्थान नहीं मिलता है। क्षमा वीर-धीर और बलवान् ही कर सकते हैं, कायर नहीं। क्षमासे उद्दण्डता घटती है और प्रेमका प्रचार-प्रसार होता है। सबलके लिये क्षमा, धनीके लिये गर्वहीनता और विद्वान्के लिये कोमलता ही भूषण है। अधिक वाद-विवाद झगड़ेकी जड़ है। सब कुछ सुनकर मौन धारण करना ही सर्वश्रेष्ठ है——

सबल क्षमी, निगर्व धनी, कोमल विद्यावंत।
भवमें भूषन तीन हैं, औरो सबै अनंत॥
बाद बिबादै विष घना, बोले बहुत उपाध।
मौन गहै सबकी सहै, सुमिरै नाम अगाध॥

क्रोध

क्रोध चरित्रका एक महान् दुर्गुण है। क्रोध साधनाका शत्रु और अनेक पापोंका मूल है। क्रोध

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बुद्धिको मन्द कर देता है। क्रोध सन्तापकी जड़ है। क्रोध दूसरोंका अहित करनेके साथ-साथ अपने लिये भी महान् अहितकारक और कष्टप्रद होता है। क्रोध सभी किये-करायेपर पानी फेर देता है। क्रोधकी अग्नि दसों दिशाओंसे व्यक्तिको जलाती है। क्रोधके तीर कर्णद्वारसे प्रवेशकर सम्पूर्ण शरीरको दग्ध कर डालते हैं—

कोटि करम लागे रहैं, एक क्रोधकी लार।
किया कराया सब गया, जब आया हंकार॥
दसों दिसासे क्रोधकी, उठी अपरबल आग।
सीतल संगत संतकी, तहाँ उबरिये भाग॥

मद-मान

आपाके साथ आपदाका घनिष्ठ सम्बन्ध है। घमंडीका सिर नीचा होता है। गर्व करना उचित नहीं; क्योंकि कराल कालके हाथों सभीकी चोटी पकड़ी हुई है जो न मालूम कब और कहाँ मार डालेगा, कोई पता नहीं। इसीलिये हे प्राणी! तू न तो गर्व कर और न ही किसीकी (चारित्रिक) खिल्ली उड़ा; क्योंकि अभी भी तेरी नाव (शरीर) समुद्र (आयुष्य-मान संसार) में ही है, न जाने कब कहाँ डूब जाय—

जहाँ आपा तहँ आपदा, जहाँ संसै तहाँ सोग।
कहै कबीर कैसे मिटै, चारों दीरघ रोग॥
कबीर गर्व न कीजिये, काल कहै कर केश।
न जानौ कित मारि हौ, कित घर कित परदेश॥
कबीर गर्व न कीजिये, रंक न हँसिये कोय।
अजहूँ नावँ समुद्रमें, ना जानौ क्या होय॥

धैर्य

धैर्य सत्य और प्रणकी रक्षा करता है। बड़े-बड़े संकटोंको आसानीसे पार करवाता है। कठिन परिस्थितियोंमें रक्षा करता हुआ, दृढ़निश्चयी बनाकर लक्ष्यतक पहुँचाता है। धैर्य धारण करनेके कारण ही हाथी-जैसा महाभोजी प्राणी भी अपने भोजनके प्रति निश्चिन्त बना रहता है और धैर्य न धारण करनेके कारण ही कुत्ते-जैसा अल्पभोजी जीव एक-एक टुकड़ेके लिये दर-दरकी ठोकर खाता रहता है। वास्तविकता तो यह है कि प्रारब्धसे ही इस शरीरका निर्माण हुआ है तो फिर आगेकी चिन्ता क्यों? लेकिन आश्चर्य तो तब होता है जब यह सब कुछ जानता हुआ भी मूर्ख मन धैर्य धारण नहीं कर पाता है। रे मन! बहुत समय बीत चुका है, थोड़ी ही अब शेष है, इसलिये तू अधीर होकर अपनी सारी करी-कमाईको न मिटा, धैर्यका आश्रय ग्रहण कर—

कबीर धीरज के धरे, हाथी मन भर खाय।
टूक एकके कारने, स्वान घरै घर जाय॥
परारब्ध पहले बना, पीछे बना सरीर।
कबीर अचम्भा है यही, मन नहिं बाँधै धीर॥
बहुत गयी थोड़ी रही, व्याकुल मन मत होय।
धीरज सबका मित्र है, करी कमाई न खोय॥

श्रम

श्रम पुरुषार्थका प्रतीक है। श्रम चरित्र-निर्माणका एक सर्वोत्कृष्ट सद्गुण है। श्रम व्यक्तिको पुरुषार्थी और कर्तव्यनिष्ठ बनाता है। संसारसे लेकर साधनातक श्रमकी महत्ताका प्रतिपादन हुआ है। श्रम व्यक्तिको आरोग्य, सम्पन्नता और पुष्टि प्रदान करता है। श्रमके कारण ही थलमें कूप निर्माण कर, जल निकालना सम्भव हो पाता है। श्रमसे ही सब कुछ मिलता है, बिना श्रमके कुछ भी नहीं मिलता, यहाँतक कि जमा हुआ घी निकालनेके लिये भी उँगलियोंसे श्रम लेना पड़ता है, टेढ़ा करना पड़ता है; वह बिना श्रम किये नहीं निकल सकता है। सामर्थ्यवान् होते हुए भी व्यक्ति, श्रमके अभावमें ही दुःखी बना रहता है। जिस प्रकार सम्मुख परोसा भोजन भी बिना हाथ चलाये (श्रम किये) मुँहतक नहीं पहुँच सकता—

श्रम ही ते सब होत है, जो मन राखै धीर।
श्रम ते खोदत कूप ज्यूँ, थलमें प्रगटै नीर॥

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

श्रम ही ते सब कुछ बनै, बिनु श्रम मिलै न काहि ।
सीधी अंगुली घी जम्यौ, कबहूँ निकसै नाहिं ॥
कैसी भी सामर्थ हो बिन उद्यम दुख पाय ।
निकट असन बिन कर चलै, कैसे मुख मैं जाय ॥

इस प्रकार हम देख चुके कि लोक-परलोकके जीवनको सौष्ठव प्रदान करनेके लिये जिन सद्गुणोंको अपनाना आवश्यक है, उनकी महत्ता और उपयोगिताका वर्णन कबीरने अपनी सुन्दर शैलीमें किया है ।

मानसमें सत्संगका प्रसंग

(लेखक—डॉ० श्रीरामाप्रसाद मिश्र, एम्० ए० पी-एच्० डी०)

रामचरित मानस, एक सागरकी भाँति है । सागरका एक नाम है रत्नाकर । जिस प्रकार रत्नाकरमें असंख्य रत्नोंकी विद्यमानता होती है, उसी प्रकार रामचरितमानसमें अनेक चिन्तन-रत्न भरे पड़े हैं । उनमेंसे मैं एकका विश्लेषण करना चाहता हूँ, जिसका नाम है— सत्संग । तुलसीदासजी सत्संगके बड़े कायल थे । सत्संगकी आवश्यकता एवं महत्ताका प्रतिपादन उन्होंने मानसमें अनेक स्थलोंपर किया है । सत्संगके संदर्भमें तुलसीके जो विचार रहे हैं वे महत्त्वपूर्ण एवं विवेचनीय हैं ।

सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि सत्संगका क्या अर्थ है ? सत्संगमें दो शब्दोंका मेल है—एक शब्द है सत् और दूसरा शब्द है—संग । संग याने साथ, सान्निध्य, साहचर्य, साक्षात्कार आदि । सत् शब्दके दो अर्थ निकलते हैं—प्रथम सत्य और दूसरा संत । अतः सत्संगका एक अर्थ हुआ परमात्माका साक्षात्कार या संग और द्वितीय अर्थ हुआ—संतका संग या साक्षात्कार । परमात्माका साक्षात्कार सत्संगका विशेष अर्थ है और संतोंकी संगति उसका सामान्य अर्थ है । तुलसी सामान्यतः सत्संगके द्वितीय अर्थको ही स्वीकार करते हैं । किंतु कहीं-कहीं वे प्रथम अर्थके परिप्रेक्ष्यमें भी सत्संगको ग्रहण करते हुए दिखायी देते हैं । अतएव दोनों अर्थोंको विचार-पथमें लाते हुए हम सत्संगपर अपनी जिज्ञासाका समाहार करेंगे ।

सत्संगका अर्थ यदि सत्य-(परमात्मा-) का संग लें तो यह प्रश्न उठता है कि तुलसीके मतानुसार परमात्मा किस प्रकार प्रापणीय हैं ? परमात्माके दो रूप हैं— एक निराकार और दूसरा साकार । एक अलक्षित है और दूसरा दृश्य । परमात्माके रूपद्वयकी तुलना तुलसीने अग्निके रूपद्वयसे की है । जो अग्नि काठमें विद्यमान होते हुए भी अलक्षित रहती है वही प्रज्वलित होकर हमारे नेत्रोंके समक्ष साकार हो जाती है । सर्वव्यापी परात्पर ब्रह्म भी उसी प्रकार नाम-रूपसे अभिहित होकर साकार हो जाता है । तुलसीने इस तथ्यका उल्लेख एक पंक्तिमें इस प्रकार किया है—

एक दारुगत देखिहिं एकू । पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥

अर्थात्—'निराकार ब्रह्म दारुगत पावककी भाँति लुप्त है और साकार ब्रह्म प्रज्वलित पावककी भाँति प्रकट । अब यह विचारणीय है कि ब्रह्मद्वयमेंसे तुलसीदासजी किसकी संगति प्राप्त करनेके लिये इच्छुक थे ? यह उल्लेखनीय है कि तुलसी सगुणोपासक थे । अतः उनका आग्रह सगुणोपासनाके प्रति अधिक था अर्थात् अलक्षित ब्रह्मकी अपेक्षा प्रकटित परमात्माके साक्षात्कारके प्रति उनका सम्मान अधिक था । अब यह तथ्य अवलोकनीय है कि परमात्माका प्रकटीकरण कैसे होता है ? तुलसीदासके मतानुसार सर्वव्यापी परमात्मा प्रेमातिरेकके कारण प्रकट होकर एकस्थलीय हो जाते हैं—

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना । प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना ॥

उनका आविर्भाव प्रेमके कारण होता है । प्रेमके अभावमें उनका साक्षात्कार दुर्लभ है । गोस्वामी तुलसीका दो टूक कथन है—

'मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा ।'

हमारे विचारोंके तारतम्यमें अब यह बात उठती है कि परमात्मा प्रेमसे प्रकट तो होते हैं, लेकिन किस रूपमें उनका प्रकटीकरण होता है ? इसका उत्तर है—

जाकी रही भावना जैसी । प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी ॥

भावनाके अनुरूप परमात्माकी अभिव्यक्ति होती है । यदि हम और अधिक तर्कसंगत उत्तरकी गवेषणा करना चाहें तो यह कहा जा सकता है कि भगवान्‌की अभिव्यक्ति दो रूपोंमें होती है—प्रथम व्यक्तिमय और द्वितीय विश्वमय । व्यक्तिमय विशिष्ट परमात्माके साक्षात्कारके लिये उदात्त प्रेम-भावनाकी आवश्यकता होती है तथा सर्वभूतमय परमात्माके प्राप्त्यर्थ कर्म-साधनाकी आवश्यकता होती है । परमात्माकी अभि-व्यक्तिके जिस प्रकार दो रूप हैं, उसी प्रकार उनकी प्राप्तिके भी दो पथ हैं—प्रेमपथ और कर्म या सेवापथ ।

व्यक्ति-विशिष्ट परमात्माकी प्राप्तिके लिये प्रेमकी नितान्त आवश्यकता है; क्योंकि प्रेम-भक्तिका जल हृदयको निर्मल कर देता है—

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई । अभिअंतर मल कबहुँ न जाई ॥

प्रेमकी भक्तिके जलसे हृदयका प्रक्षालन होता है और आन्तरिक शुचिता आती है । इसके उपरान्त ही वह निश्छल-निर्मल हृदय परमात्माका आवास-स्थल बन सकता है । परमात्माकी प्रतिष्ठा हृदय-मन्दिरमें तभी होगी जब वह निर्विकार एवं अनाविल हो । प्रकारान्तर-से यह कहना समीचीन है कि यदि हम अपने अन्तः-प्रदेशमें परमात्माको स्थापित करनेकी ललक रखते हैं तो हमें उसे काम, क्रोध, लोभादि दुष्प्रवृत्तियोंसे सुरक्षित रखना होगा । पवित्र हृदयमें ही भगवान्‌की विद्यमानता हो सकती है । वाल्मीकि मुनिने इसीलिये यह अनुरोध किया है—

काम कोह मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिनके कपट दंभ नहिं माया । तिनके हृदय बसहु रघुराया ॥

यह स्मर्तव्य है कि जब कालुष्य-रहित हृदयमें परमात्माका अवतरण हो जाता है तब आश्रयका इतना उदात्तीकरण एवं उत्कर्ष होता है कि वह नरसे नारायण बन जाता है अर्थात् वह परमात्ममय हो जाता है । उसकी मनुष्यता सुरत्वमें तिरोहित हो जाती है । इस कथ्यकी पुष्टिमें मानसकी निम्नाङ्कित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

नारि नयन सर जाहि न लागा । घोर क्रोध तम निसि जो जागा ॥
लोभ पास जेहिं गर न बँधाया । सो नर तुम समान रघुराया ॥

काम, क्रोध और लोभके समक्ष जो अपराजेय हैं वे परमात्माके तुल्य हैं । वे अपनी आन्तरिक शुचिताके कारण इतने उत्कृष्ट होते हैं कि उनकी सत्ता परमात्मामें तदाकार हो जाती है । प्रेमानुप्राणित आन्तरिक पवित्रता उसे ऐसी उच्चतम भूमिपर पहुँचा देती है जहाँ वह नारायणत्वको आत्मसात् कर लेता है । इस प्रकार प्रेम, हृदयका शोधन कर उसे परमात्मा-से जोड़ देता है ।

अब यह अन्वेक्षणीय है कि विश्वमय परमात्माके प्राप्त्यर्थ किस साधनकी जरूरत है ? तुलसीके मतानुसार सर्वभूतमय (विश्वमय) परमात्माका साक्षात्कार सेवा-व्रती होकर किया जा सकता है । भक्तिके कई प्रकार होते हैं—यथा सख्यभावकी भक्ति, वात्सल्यभावकी भक्ति, माधुर्यभावकी भक्ति, सेवक-सेव्यभावकी भक्ति । इनमें सेवक-सेव्यभावकी भक्ति सर्वोपरि मानी गयी है; क्योंकि इसके अतिरिक्त शेष अन्य विधियोंमें सांसारिकताके दलदलमें फँसनेका भय है । भक्तके सामने मर्यादाका अंकुश रहता है । तुलसीका यह उद्घोष है कि—**'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ**

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उरगारि ॥' भगवान्‌को सेव्य या स्वामी मानकर सेवकके रूपमें उनकी निरन्तर सेवा करना ही भक्तके लिये अभीष्ट माना गया है।

जब परमात्माको सर्वभूतमय मानते हैं, तब हम इसके साथ ही इस मान्यताके कायल हो जाते हैं कि लोकसेवा ही ईश्वरसेवा है। सेवाके उदात्त रूप एवं चरम सौन्दर्यके दर्शन लोकसेवामें किये जा सकते हैं। जब परमात्माकी अभिव्यक्ति विश्वरूपमें हुई है—सर्व-भूतोंमें उनकी विद्यमानता है—तब हमें परमात्माका तादात्म्य प्राप्त करनेके लिये अखिल विश्वके प्रति निर्वैरताका भाव रखना होगा। हमारे आराध्य प्रभु जब जगत्‌के कण-कणमें बसे हैं तब हमें किससे विरोध करना चाहिये ? कोई हमारे विरोधका पात्र नहीं है;सभी आत्मीय हैं—

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध ॥

बन्धुत्व एवं मैत्रीका भाव लेकर लोकाराधनके प्रति समर्पित होना ईश्वरकी सच्ची सेवा है। ईश्वर हमारे प्रणम्य हैं और इसीलिये उनसे अनुप्राणित जगत् भी प्रणम्य है—

सीयराम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

रामका भी यह स्वरूप-निर्देश है कि अनन्य भक्त वही हो सकता है जो जड़-चेतनमय संसारको परमात्मा-का व्यक्तरूप समझकर उनकी सेवा करता है—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥

अर्थात्—आराध्यकी विश्वरूपताका अनुभव करते हुए लोकाराधनकाल ही परमात्माके साक्षात्कारका अमोघ साधन है।

संतका साक्षात्कार करना या सज्जनका सान्निध्य प्राप्त करना भी सत्संग है। तुलसीने संतों या सत्पात्रोंकी संगतिपर अधिक बल दिया है। उनके अनुसार संतोंमें संवेदनशीलता, परदुःखकातरता, परोपकारिता, गुण-ग्राहकता एवं उदात्त मानसिकता रहती है। संतोंका सान्निध्य अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले जाता है। राम सागर हैं तो संत मेघवत् हैं। सागरका जल मेघके रूपमें बदलकर अपने सीकरोंसे धरतीका तपन बुझाता है। उसी प्रकार संतलोग रामत्वको ग्रहणकर विश्व-पीड़ाका परिहार करते हैं। संत समीरवत् हरि-चन्दनके सौरभको प्रसारित करते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीका यह आशय निम्नाङ्कित पंक्तियोंमें मुखरित हुआ है—

राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा ॥
सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहू पाई ॥

सत्संगका महत्त्व अप्रतिम है। सत्संगतिमें आनन्दकी अनुभूति होती है और सत्संगति मङ्गलका मूलाधार है—'सतसंगति मुद मंगल मूला।' क्षणिक सत्संग इतना आह्लादकारी होता है कि स्वर्गीय आनन्द भी उसकी समकक्षता प्राप्त नहीं कर सकता—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला इक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥

विवेक सत्संगके सौजन्यसे ही होता है—'बिनु सत्संग बिबेक न होई।' सत्संगके फलस्वरूप ही मूर्खका चरित्र परिमार्जित होता है। सत्संगके माध्यमसे भक्ति-भावनाका उद्रेक होता है, इसीलिये सत्संगको भक्तिका प्रथम लक्षण माना गया है—'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।' संशय जीवनको विडम्बनापूर्ण स्थितिमें उलझा देता है। उसके निराकरणके लिये दीर्घकालीन सत्संगकी आवश्यकता होती है—

तबहिं होहि बहु संसय भंगा। जब बहुकाल करिअ सतसंगा ॥

सत्संगका अर्थ चाहे परमात्माका साक्षात्कार मानें, चाहे सज्जनोंकी संगति मानें, दोनोंसे सात्त्विकता आती है। गहराईसे विचार करें तो श्रेष्ठ ग्रन्थोंके अवलोकन, तीर्थाटन आदिको भी सत्संग मान सकते हैं; क्योंकि

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इनसे उदात्त भावनाओंका स्फुरण होता है। श्रेष्ठ ग्रन्थोंके प्रणेता, तीर्थोंके निर्माता सज्जन ही होते हैं। इनके माध्यमसे हम सज्जनोंसे सम्पर्कित होते हैं। वस्तुतः कृतियाँ हमें कृतिकारोंसे मिला देती हैं और हम सत्संगका लाभ अर्जित करते हैं।

सत्संगसे हृदयका परिष्कार होता है और चेतनाकी उत्क्रान्ति होती है। सत्संग सत्त्वगुणवर्धक उपाय है, जिससे चित्तवृत्तिमें पवित्रताका संचार होता है। आजके युगमें मानवकी चेतना और हृदयपर स्वार्थका कर्दम आच्छादित है और इसीलिये उदात्त एवं सात्त्विक भावनाएँ लुप्त होती जा रही हैं। आज आध्यात्मिक एवं भव्यात्मक भाव विदूरित होते जा रहे हैं। सत्संगके बिना इन तत्त्वोंको हृदयङ्गम नहीं किया जा सकता। तुलसीने सत्संगके संदर्भमें जो विचार किये हैं वे उपयोगी एवं प्रासंगिक हैं। वर्तमान तथा भविष्यमें भी उसकी उपयोगिता अक्षुण्ण रहेगी।

भक्त-गाथा

भक्त रामहरि भट्टाचार्य

रामहरि भट्टाचार्य बंगालमें कालनाके निकट हाँसपुकुर ग्राममें रहते थे। यजमानीकी जीविका थी। घरमें साध्वी स्त्री और एक पुत्रके सिवा और कोई नहीं था। रामहरिका हृदय भगवत्-विश्वाससे भरा था। उनका सबके साथ प्रेमका सम्बन्ध था। संसारमें उनका कोई शत्रु नहीं था। थोड़ी-सी जमीन और यजमानोंकी स्वेच्छापूर्वक दी हुई भेंटकी आमदनीसे उनका परिवार अच्छी तरह पल जाता था। वे प्रतिवर्ष भादोंमें घरसे निकलते और यजमानोंके यहाँ कई गाँवोंमें घूम-फिरकर जो कुछ मिलता, लेकर आश्विन लगते-लगते ही घर लौट आते। बड़े सन्तोषी और शान्तवृत्तिके ब्राह्मण थे रामहरि महाराज।

वे सदाकी भाँति इस वर्ष भी भादों लगते ही घरसे निकल पड़े। इस साल बरसात देरसे शुरू हुई थी, इसलिये इन दिनों आकाश लगातार काली घटाओंसे घिरा रहता और रोज ही वृष्टि होती। रामहरि महाराजने इन दुर्दिनोंकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया और वे भगवान्‌का नाम लेकर सदाकी भाँति एक गाँवसे दूसरे गाँवमें जाने-आने लगे।

बर्दवानसे कालनातक पक्की सड़क गयी है। एक दिन संध्यासे कुछ ही पूर्व रामहरि महाराज उसी सड़कपर द्रुत गतिसे बढ़े चले जा रहे थे। गाँव अभी चार कोस था। आँधी-पानीसे भरी भयावनी रातके डरसे बचनेके लिये वे दौड़-से रहे थे। शाम होते-होते ही आकाशकी अवस्था बड़ी भयानक हो गयी। बिजली बड़े जोररसे कड़कने लगी, बादल गरजने लगे। आँधीके प्रबल वेगसे बड़ा डरावना शब्द होने लगा और साथ ही मूसलाधार वर्षा होने लगी। रामहरिजी शरीरका पूरा बल लगाकर तेजीसे चलने लगे। चिन्ता और डरसे उनका शरीर काँप रहा था।

रात हो गयी, परंतु तूफानके शान्त होनेका नाम नहीं। झड़की गति और भी बढ़ गयी। इधर-उधर सियार डरावना शब्द कर रहे थे। आँधीके झटकेसे बड़े-बड़े वृक्षोंकी डालियाँ टूट-टूटकर गिर रही थीं, और उनपर बैठे हुए पक्षी आर्त्तस्वरसे चिल्ला रहे थे। इससे रात्रि और भी भयंकर हो गयी थी। रामहरि किसी ओर न देखकर विपत्तिहारी भगवान्‌का नाम-स्मरण करते हुए जोरसे बढ़े चले जा रहे थे। रातभर आश्रय मिल जाय, उनको इस बातकी चिन्ता थी। इसी बीच पास ही बड़े जोरसे कड़ककर बिजली गिरी। रामहरिजी काँप गये। आकाशको चीरती हुई विद्युत्-शिखा उनकी दोनों आँखोंको मानो बेधकर आकाशमें विलीन हो गयी। रामहरिजी एक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पेड़के नीचे खड़े हो गये। उनके मुखसे विपद्विदारी भगवान्‌का नाम अनवरत निकल रहा था। पर दूसरे ही क्षण उन्हें ध्यान आया कि ऐसे आँधी-तूफानमें वृक्षके नीचे खड़े रहना भी निरापद नहीं है; पता नहीं, कब डाल टूट पड़े। वे आश्रय पानेकी आशासे व्याकुलताके साथ इधर-उधर नजर दौड़ाने लगे।

इतनेमें ही अकस्मात् जंगलमें उन्हें मनुष्यका बोलना सुनायी दिया। रास्तेकी बगलमें ही बीहड़ जंगल था। अब तो लालटेनकी रोशनी भी दिखायी दी। रामहरिजीने देखा, दो मनुष्य धीरे-धीरे उन्हींकी ओर आ रहे हैं। मनुष्योंको देखकर उन्हें बड़ी सान्त्वना मिली। उन्होंने बड़े जोरसे चिल्लाकर उनको पुकारा और अपने पास आनेके लिये प्रार्थना की। उनकी पुकार सुनते हुए वे दोनों जल्दी-जल्दी चलकर उनके पास आ पहुँचे। वे साधारण ग्रामीण-से लगते थे, शरीर मजबूत और बलवान् थे। उनके एक हाथमें लालटेन और छाता तथा दूसरेमें लंबी लाठी थी। रामहरिजी उन्हें देखकर मन-ही-मन कुछ डरे। रुपये पास होनेपर डर लगता ही है। चील मांसको देखकर ही पीछे लगती है। इसी प्रकार चोर-डकैत भी रुपयोंके ही पीछे लगा करते हैं। कुछ भी हो, दूसरा कोई उपाय न था। रामहरिजीने कहा—'भाइयो! मैं गोविन्दपुर जाऊँगा, पर दिन बहुत खराब हो गया, इसलिये रात-ही-रात वहाँ पहुँचना कठिन है। आपलोग दया करके मुझे पासके किसी गाँवमें पहुँचा दें तो बड़ी कृपा हो।' रामहरिजीकी बात सुनकर उनमेंसे एकने विनयके साथ कहा—'पण्डितजी! हमारा घर यहाँसे बहुत नजदीक है। आप यदि रातभर हमारे घर विश्राम करें तो आपको कोई तकलीफ नहीं होगी। हम भी अपना अहोभाग्य समझेंगे। प्रातःकाल आपको जहाँ जाना हो, चले जाइयेगा। उनके विनीत वचनोंसे रामहरिजीका भय दूर हो गया और वे उनके पीछे-पीछे चलकर एक टूटी इमारतके सामने जाकर खड़े हो गये। उनमेंसे एकने जोरसे पुकारा—'अरे धन्ना!' जब द्वार नहीं खुला, तब वे दोनों जोर-जोरसे 'धन्ना! ओ धन्ना!' पुकारने लगे। कुछ देरके बाद दरवाजा खुला और एक भीषण आकृतिका नवयुवक बाहर निकल आया।

युवकको देखकर एकने कहा—'धन्ना! आजकी यात्रा सफल हुई—अतिथि-सत्कारका अवसर मिल गया।' धन्नाने तीक्ष्ण दृष्टिसे रामहरिजीकी ओर देखकर कहा—'तब भोजनकी व्यवस्था करूँ?' रामहरिजी उनका रंग-ढंग देखकर समझ गये कि जरूर दालमें काला है। उनका हृदय धड़कने लगा और वे मन-ही-मन आर्तभावसे संकटहारी श्यामसुन्दरका स्मरण करने लगे। परंतु बाहरसे इस भावको छिपाकर उन्होंने इतना ही कहा—'मैं आज कुछ भी नहीं खाऊँगा और वर्षा थम गयी तो रातको ही चला भी जाऊँगा।' धन्नाने उनकी बात सुनकर कुछ नहीं कहा और उन्हें खींचकर अंदर ले गया। वे दोनों मनुष्य भी पीछे-पीछे अंदर चले गये।

रामहरिजीने देखा, चारों ओर जंगल-सा है, बगलमें ही एक घर है। धन्ना रामहरिजीको घरके बीचकी एक कोठरीमें ले गया और उन्हें तख्तेपर विश्राम करनेके लिये कहकर वहाँसे चल दिया। रामहरिजी तख्तेपर बैठे थर-थर काँप रहे थे। हाय! किस अशुभ मुहूर्तमें घरसे निकला। जंगलमें इनसे सहायता ही क्यों चाही? आज इन डकैतोंके हाथसे प्राण नहीं बचेंगे!

बगलकी कोठरीसे बातचीतकी आवाज सुनायी दी। बीचमें एक पतली-सी दीवाल थी, इससे प्रायः सभी बातें उन्हें सुनायी पड़ रही थीं। उन्होंने शब्दस्वरसे पहचान लिया कि बातचीत करनेवालोंमें दो व्यक्ति वे हैं, जो जंगलमें मिले थे और तीसरा धन्ना है। बातचीतके सिलसिलेमें पता लगा कि उन दोनोंके नाम हाराण और तीनकौड़ी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हैं तथा धन्ना हाराणका लड़का है। हाराणने कहा—'देखो तीनकौड़ी! मालूम होता है, ब्राह्मण हैं; गलेमें जनेऊ है। फिर ब्रह्महत्याका पाप लगेगा।' तीनकौड़ी बोला—'चलो, तुम भी बड़े डरपोक हो। अरे गाड़ेमें सूपका क्या भार। अबतक ऐसे कितने ब्राह्मणोंका पाप लगा होगा। एक और सही! इसके पास पैसे तो काफी मालूम होते हैं।' धन्ना बीचमें ही बोल उठा—'तुमलोगोंको कुछ भी चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। एक ही चोटमें काम तमाम! बस, जरा उसे नींद तो आ जाय।' हाराणने कहा—'चुप रह। इतना चिल्लाता क्यों है, सुन लेगा तो कहीं सरक निकलेगा।' धन्नाने कहा—'भागेगा कहाँ। इन हाथोंमें पड़कर भाग निकलना बड़ा आसान है न!' बातचीत सुनकर रामहरिजीके तो प्राण सूख गये। मनमें आया भाग निकलूँ, पर धन्नाके शब्द याद आ गये। सोचा, वह सब ओर देखता होगा। फिर, इस अनजान जंगलमें भागकर भी कहाँ जाऊँगा। ये दुष्ट तुरंत ही ढूँढ़कर मार डालेंगे।

बाहर अब भी मूसलाधार वृष्टि हो रही थी। झड़की तेजी तो कुछ घटी थी, परंतु अभी और सब बातें वैसी ही थीं। घरके बीचसे अन्धकारमय आकाशका कुछ भाग दीख पड़ता था। क्षण-क्षणमें बिजली कौंधती थी और साथ ही दूरसे वज्रपातकी भीषण ध्वनि सुनायी पड़ती थी—मानो रामहरिजीके लिये मृत्युका समाचार लेकर आ रही हो। पास ही एक कदम्बका वृक्ष था। उसकी पुष्पित शाखाओंसे स्निग्ध सुगन्ध लेकर बीच-बीचमें ठंडे पवनका झोंका आ जाता था। रामहरिजीको अपने श्यामसुन्दरके मन्दिरकी बगलका कदम्बवृक्ष याद आ गया। अहा! उसमें भी हजारों फूल खिले होंगे और वर्षा-सिक्त वायु उनकी स्निग्ध गन्धको भी इसी प्रकार सब ओर बिखेर रही होगी। मेरी धर्मपत्नी बच्चेको हृदयसे लगाकर निद्रामें मेरे लौटनेका स्वप्न देख रही होगी। और, मेरे प्राणधन श्यामसुन्दर! मेरी बड़ी साधनाके, महती आकाङ्क्षाके स्वामी श्यामसुन्दर! हाय! आज यदि मैं इस सुनसान जंगलमें डाकुओंके हाथों मारा गया तो मेरे श्यामसुन्दर! फिर तुम्हारी पूजा कौन करेगा? मैं जिन ब्राह्मणको पूजाका भार दे आया था, मेरी अनुपस्थितिमें पता नहीं, वे सुचारु रूपसे तुम्हारी पूजा कर रहे हैं या नहीं। हा! श्यामसुन्दर! तुम तो पाषाणकी मूर्तिमात्र नहीं हो, तुम्हारे उस नीलकमलसे साँवरे शरीरमें अनन्त करुणामयी दिव्य चिच्छक्ति नित्य विराजमान है और निरन्तर आर्त प्राणियोंका कल्याण कर रही है। बोलो, बोलो, मेरे श्यासुन्दर! तुम्हारे इस शरणागत दीन ब्राह्मणका यह नश्वर शरीर इस अज्ञात अरण्यमें क्या सियार-कुत्तोंके खानेके काममें आयेगा? रामहरिजीके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। वे उन्मत्तकी भाँति 'श्यामसुन्दर! श्यामसुन्दर' कहकर करुण-क्रन्दन करने लगे।

ब्राह्मण रामहरि जिस समय 'श्यामसुन्दर! श्यामसुन्दर' कहकर आर्तभावसे रो रहे थे, ठीक उसी समय धन्ना दूसरी कोठरीमें कुछ दूरपर बैठा फाँडेपर धार चढ़ा रहा था। तीनकौड़ी और हाराण बातचीतमें लगे थे। उन्होंने सोचा बगलकी कोठरीमें ब्राह्मण तख्तेपर विश्राम करता या सोता होगा। उनकी नजर ब्राह्मणपर लगी थी, पर थकावटके कारण इन्हें बीच-बीचमें जँभाइयाँ आ रही थीं। आखिर उन लोगोंने यही निश्चय किया कि धन्नाके हाथसे यह काम नहीं कराना है। हाराणने कहा, 'तब मैं ही काम निपटाऊँगा। देखूँ, ब्राह्मण सो गया या नहीं। कोई आवाज तो नहीं सुनायी देती।'

यह कहकर हाराणने जाकर देखा। रामहरिजी उस समय प्राणभयसे व्याकुल हुए चादर ओढ़े दुबके पड़े थे। मन-ही-मन श्यामसुन्दरकी करुण-प्रार्थना चल रही थी। हाराणने देखकर धीरेसे कहा—

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

'तीनकौड़ी ! नींद तो आ गयी है, फिर देर क्यों करें ।' तीनकौड़ी बोला—'शायद जागता हो, कुछ और ठहर जाओ ।'

रामहरिजी तो सुन-सुनकर सूखे जा रहे थे। सोच रहे थे, अब मृत्युसे बचनेका कोई उपाय नहीं है । प्रभु ! यह क्या हो गया !

अकस्मात् ब्राह्मणमें मानो असीम बल आ गया । कदम्बका वृक्ष घरमें चूल्हेके पास ही था । बरसातके कारण उसमें पत्ते खूब आ गये थे । पेड़ बहुत घना और विशाल था । पत्तोंकी आड़में छिपनेको बहुत जगह थी । रामहरिजी चादर छोड़कर धीरे-धीरे उठे और तुरंत पेड़पर चढ़कर छिप गये ।

इधर ताड़ी (ताड़ पेड़का रस जो नशा करता है ।) पीते-पीते नशेमें ही हाराणने कहा, 'धन्ना ! आज तुझे खाँडा नहीं चलाना पड़ेगा । यह ब्रह्मयज्ञ मैं ही करूँगा । मालूम होता है, अब वह गहरी नींदमें है ।' मन-ही-मन झल्लानेपर भी धन्ना कुछ बोला नहीं । हाराणने धन्नाके हाथसे खाँडा लेकर धार देखी । फिर तीनों मिलकर ताड़ी-पर-ताड़ी पीने लगे । नशा बढ़ने लगा । धन्ना कुछ ज्यादा पी गया । उसे नींद आने लगी । झूमता हुआ वह बाहर निकला और जिस तख्तेपर रामहरिजी सोये थे, जाकर उन्हींकी चादर ओढ़कर वहीं पड़ गया । नशेमें उसे अपनी करनीका कुछ भी पता नहीं था । वह बेहोश था । तीनकौड़ी और हाराणने हरी मिर्च और सत्तूकी चाट मुँहमें लेकर ताड़ी चढ़ानी शुरू की । अब पूरा नशा हो गया ।

झूमता हुआ हाराण धार दिये हुए खाँडेको लेकर बगलकी कोठरीमें पहुँचा । रामहरिजी कदम्बपर चढ़े कोठरीमें रखी हुई लालटेनकी मामूली रोशनीके उजियारेमें भयचकित नेत्रोंसे देख रहे थे और मन-ही-मन श्यामसुन्दरको पुकार रहे थे ।

हाराण और तीनकौड़ीने समझा तख्तेपर ब्राह्मण सोया है । नशेमें चूर जो थे । हाराणने पूरा जोर लगाकर खाँडा चलाया और उसी क्षण धन्नाका सिर धड़से अलग होकर धड़ामसे नीचे गिर पड़ा ।

अब जो दृश्य उपस्थित हुआ, उसे कौन कहे ? हाराण और तीनकौड़ीने भयपूर्ण आँखोंसे देखा—'अरे, यह तो धन्नाका सिर है !' बस, उसी क्षण उनका सारा नशा उतर गया और खाँडेको दूर फेंककर हाराण अपने प्यारे पुत्र धन्नाके सिरको छातीसे लगाकर पागलकी भाँति रोने लगा । तीनकौड़ीने इधर-उधर ब्राह्मणको बहुत खोजा, पर कहीं पता नहीं लगा । रामहरिजी तो प्राणभयसे अत्यन्त व्याकुल होकर श्यामसुन्दरका स्मरण कर रहे थे । उस समय उनका स्मरण किन-किन भावोंसे होता होगा, इसका अनुमान वैसी स्थितिमें स्वयं पड़े बिना नहीं लगाया जा सकता । धन्नाके शवको लेकर जब वे लोग टूटे घरसे निकलकर जंगलमें चले गये, तब ब्राह्मणके प्राणोंमें प्राण आये । तबतक वृष्टि बहुत कम हो गयी थी और रात भी थोड़ी ही शेष थी । ब्राह्मण देवता धीरेसे पेड़से उतरे और इधर-उधर सतर्क दृष्टिसे देखते हुए घरसे निकलकर चल दिये । भगवान्‌की कृपासे उन्हें रास्ता मिल गया । हाराण और तीनकौड़ी दूसरी ओर गये थे, इसलिये इनपर कोई विपत्ति नहीं आयी ।

कुछ दूर धीरे-धीरे चलकर फिर रामहरिजी दौड़े और पक्की सड़कपर पहुँच गये । उस समय कई लोगोंका और भी साथ हो गया । रामहरिजी भगवान् श्यामसुन्दर-का मन-ही-मन गुण गाते हुए घर पहुँचे । तबसे उनका जीवन भगवान्‌के भजनमें ही बीता ।

बोलो भक्त और उनके रक्षक भगवान्‌की जय !

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

गीता-माधुर्य—७

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[सातवाँ अध्याय]

जिसे आप सर्वश्रेष्ठ योगी मानते हैं, वैसा मैं भी बन सकता हूँ क्या ?

अवश्य बन सकते हो ।

कैसे ?

भगवान् बोले—हे पार्थ ! तुम मुझमें ही आसक्त मनवाला होकर और मेरा ही आश्रय लेकर मेरा भजन करते हुए निःसंदेह मेरे समग्र रूपको जान जाओगे । तुम जिस प्रकार मेरे समग्र रूपको जानोगे, वह मुझसे सुनो । उस समग्र रूपको जाननेके लिये मैं तुम्हें विज्ञानसहित ज्ञान सम्पूर्णतासे बताऊँगा, जिसे जानकर फिर तुम्हारे लिये इस मनुष्यलोकमें कुछ भी जानना शेष नहीं रहेगा ॥ १-२ ॥

जब ऐसी बात है, तब फिर सब मनुष्य आपके समग्र रूपको क्यों नहीं जान लेते ?

इधर स्वतः प्रवृत्ति बहुत कम मनुष्योंकी है । हजारोंमेंसे कोई एक मनुष्य अपने कल्याणके लिये यत्न करता है । उन यत्न करनेवाले सिद्धों (साधकों)में भी कोई एक ही मेरे समग्र रूपको तत्त्वसे जानता है ॥ ३ ॥

आपका वह समग्र रूप क्या है ?

हे महाबाहो ! पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—इन आठ प्रकारके भेदोंवाली मेरी 'अपरा' (जड) प्रकृति है । इससे सर्वथा भिन्न मेरी जीवरूपा 'परा' (चेतन) प्रकृति है, जिसने (अहंता-ममता करके) इस संसारको धारण कर रखा है । इन अपरा और परा—दोनों प्रकृतियोंके संयोगसे ही सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं ।

इनका भी कारण कौन है भगवन् ?

मैं ही सम्पूर्ण संसारका मूल कारण हूँ; क्योंकि संसार मुझसे ही उत्पन्न होता है और मुझमें ही लीन होता है । हे धनंजय ! मेरे सिवाय इस संसारका दूसरा कोई किञ्चिन्मात्र भी कारण नहीं है । जैसे सूतसे बनायी हुई मणियाँ सूतके धागेमें ही पिरोयी जायँ तो उस मालामें सूत-ही-सूत होता है, ऐसे ही सम्पूर्ण संसारमें मैं-ही-मैं हूँ ॥ ४—७ ॥

पर मैं इस बातको कैसे समझूँ भगवन् ?

हे कुन्तीनन्दन ! जलमें रस मैं हूँ, सूर्य और चन्द्रमामें प्रभा (प्रकाश) मैं हूँ, सम्पूर्ण वेदोंमें प्रणव (ओंकार) मैं हूँ, आकाशमें शब्द मैं हूँ, मनुष्योंमें पुरुषार्थ मैं हूँ, पृथ्वीमें पवित्र गन्ध मैं हूँ, अग्निमें तेज मैं हूँ, सम्पूर्ण प्राणियोंमें जीवनी-शक्ति मैं हूँ और तपस्वियोंका तप मैं हूँ । हे पार्थ ! सम्पूर्ण प्राणियोंका अनादि बीज मुझे ही जानो । बुद्धिमानोंकी बुद्धि और तेजस्वी पुरुषोंका तेज (प्रभाव) मैं हूँ । हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! बलवानोंमें कामना और आसक्तिसे रहित (सात्त्विक) बल मैं हूँ । मनुष्योंमें धर्मसे युक्त काम मैं हूँ । और तो क्या कहूँ, जितने भी सात्त्विक, राजस और तामस भाव हैं, वे सब मुझसे ही होते हैं—ऐसा समझो; परंतु मैं उनमें और वे मुझमें नहीं हैं अर्थात् मैं उनसे सर्वथा अतीत, निर्लिप्त हूँ ॥ ८—१२ ॥

यदि ऐसी बात है तो सब लोग आपको ऐसा क्यों नहीं जानते ?

वे सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे मोहित रहते हैं अर्थात् संसारमें ही रचे-पचे रहते हैं । इसलिये वे तीनों गुणोंसे अतीत और अविनाशी मुझे नहीं जानते ॥ १३ ॥

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तो फिर आपको कौन जानते हैं ?

मेरी इस तीनों गुणोंवाली मायाको पार करना बड़ा ही कठिन है। जो इस मायासे विमुख होकर केवल मेरी ही शरण हो जाते हैं, वे मेरी कृपासे इस मायाको तर जाते हैं अर्थात् मुझे जान जाते हैं ॥ १४ ॥

जब ऐसी ही बात है, तब फिर सब आपकी शरण क्यों नहीं होते ?

जो आसुर भावका आश्रय लेनेवाले हैं और मायासे जिनका ज्ञान (विवेक) ढका हुआ है, ऐसे मनुष्योंमें महान् नीच तथा पाप-कर्म करनेवाले मूढ़ मनुष्य मेरी शरण नहीं होते ॥ १५ ॥

तो फिर आपकी शरण कौन होते हैं भगवन् ?

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी (प्रेमी)—ये चार प्रकारके सुकृती भक्त मेरा भजन करते हैं अर्थात् मेरी शरण होते हैं ॥ १६ ॥

इन चारोंमें श्रेष्ठ कौन हैं ?

इन चारों भक्तोंमें अनन्यभक्तिवाला ज्ञानी (प्रेमी) भक्त श्रेष्ठ है; क्योंकि वह निरन्तर मुझमें लगा रहता है। इसलिये मैं उसे और वह मुझे अत्यन्त प्यारा है ॥१७॥

क्या दूसरे भक्त श्रेष्ठ नहीं हैं ?

वे सभी उदार हैं, श्रेष्ठ हैं।

फिर प्रेमी भक्तमें क्या विशेषता हुई ?

प्रेमी भक्त तो मेरी आत्मा (स्वरूप) ही है—ऐसा मेरा मत है; क्योंकि जिससे श्रेष्ठ दूसरी कोई गति नहीं है, ऐसे मुझमें ही वह लगा हुआ है और मुझमें ही दृढ़ आस्थावाला है। तात्पर्य यह है कि अर्थार्थीमें धनकी इच्छा है, आर्तमें दुःख दूर करनेकी इच्छा है और जिज्ञासुमें तत्त्व जाननेकी इच्छा है; परंतु ज्ञानी (प्रेमी)में तो किसी भी तरहकी कोई इच्छा नहीं है ॥ १८ ॥

ज्ञानी अर्थात् प्रेमी भक्तकी इतनी महिमा क्यों है ?

बहुत जन्मोंके अन्तिम इस मनुष्य-जन्ममें मेरी शरण होकर जो ज्ञानवान् 'सब कुछ वासुदेव (परमात्मा) ही है'—ऐसा अनुभव करता है, वह महात्मा संसारमें अत्यन्त दुर्लभ है ॥ १९ ॥

ऐसा प्रेमी भक्त न होनेमें क्या कारण है ?

तरह-तरहकी कामनाओंके कारण जिनका 'सब कुछ वासुदेव ही है'—यह ज्ञान ढक गया है, ऐसे वे अपने स्वभावके परवश हुए मनुष्य मेरी शरण न होकर कामनापूर्तिके लिये अनेक उपायों और नियमोंको धारण करते हुए दूसरे देवताओंकी शरण हो जाते हैं अर्थात् उन देवताओंकी उपासनामें लग जाते हैं ॥ २० ॥

उन्हें आप अपनी ओर क्यों नहीं खींच लेते ?

मैं मनुष्योंको दी हुई स्वतन्त्रताको छीनता नहीं हूँ, प्रत्युत जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक जिस-जिस देवताका पूजन करना चाहता है, उस-उस देवताके प्रति मैं उसकी श्रद्धाको दृढ़ कर देता हूँ और वह उसी श्रद्धासे युक्त होकर सकामभावसे उस देवताकी उपासना करता है। परंतु भैया ! एक विचित्र बात है कि उन्हें उस उपासनासे जो फल मिलता है, वह मेरे द्वारा विधान किया हुआ ही मिलता है, पर सकामभावपूर्वक देवताओंकी उपासना करनेके कारण उन अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंको अन्तवाला अर्थात् उत्पन्न और नष्ट होनेवाला फल ही मिलता है, मैं नहीं मिलता। देवताओंका पूजन करनेवाले अधिक-से-अधिक देवताओंके पुनरावर्ती लोकोंमें जा सकते हैं, पर मेरे भक्त मुझे ही प्राप्त होते हैं ॥ २१-२३ ॥

जब आपके भक्त आपको ही प्राप्त होते हैं, तब फिर सब आपके भक्त क्यों नहीं हो जाते ?

भैया ! बुद्धिहीन मनुष्य मेरे सर्वश्रेष्ठ अविनाशी परमभावको न जानते हुए मुझ अव्यक्त परमात्माको जन्मने-मरनेवाला मनुष्य ही मानते हैं फिर वे मेरे भक्त कैसे बन सकते हैं ? ॥ २४ ॥

वे आपके परमभावको नहीं जानते तो न सही, पर आप उनके सामने अपने असली रूपसे प्रकट क्यों नहीं हो जाते ?

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नहीं भैया ! जब वे मूढ़लोग मुझे अजन्मा और अविनाशी नहीं मानते, तब योगमायासे अच्छी तरहसे आवृत हुआ मैं उनके सामने अपने असली रूपसे प्रकट नहीं होता ॥ २५ ॥

क्या उस योगमायाका परदा आपके सामने नहीं रहता ?

नहीं अर्जुन ! मैं तो भूत, भविष्य और वर्तमानमें होनेवाले सम्पूर्ण प्राणियोंको जानता हूँ, पर वे मायासे मोहित जीव मुझे नहीं जानते ॥ २६ ॥

आपको न जाननेमें मुख्य कारण क्या है ?

हे भरतवंशी अर्जुन ! मुझे न जाननेमें मुख्य कारण है—राग और द्वेषसे उत्पन्न होनेवाला द्वन्द्वमोह । हे परंतप ! इसी द्वन्द्वमोहसे मोहित सम्पूर्ण प्राणी संसारमें जन्म-मरणको प्राप्त होते रहते हैं ॥ २७ ॥

तो क्या सभी द्वन्द्वमोहसे मोहित रहते हैं ?

नहीं, जिन पुण्यकर्मा मनुष्योंके पाप नष्ट हो गये हैं, वे द्वन्द्वमोहसे रहित हो जाते हैं और दृढ़व्रती होकर मेरे भजनमें लग जाते हैं ॥ २८ ॥

दृढ़व्रती होकर आपके भजनमें लग जानेसे क्या होता है ?

जो जरा-मरण आदि दुःखोंसे मुक्ति पानेके लिये केवल मेरा ही आश्रय लेकर यत्न करते हैं, वे उस ब्रह्मको, सम्पूर्ण अध्यात्मको और सम्पूर्ण कर्मको जान जाते हैं तथा वे अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञके सहित मुझे अर्थात् मेरे समग्र रूपको ('सब कुछ वासुदेव ही है'—इस रूपको) जान जाते हैं । इतना ही नहीं, वे अनन्य भक्त अन्तकालमें मुझे ही प्राप्त होते हैं ॥ २९-३० ॥

परिवर्तन

[कहानी]

मैं पत्नी तथा दो बालकोंके साथ बम्बईमें दो कमरोंके एक मकानमें रहता था । गाँवमें निवास करती वृद्धा माँको मैं तथा मेरी पत्नी एक नियमित रकम भेजकर अपना कर्तव्य पूरा होनेका सन्तोष मान लेते थे ।

मेरे छोटे भाईकी बदली देहातसे राजकोटमें हुई । वृद्धा माँको राजकोटकी जलवायु अनुकूल न पड़ी, इससे माँको बम्बई लिवा जानेके लिये छोटे भाईके पत्र हमें मिलने लगे । अहमदाबादमें रहनेवाले बीचके भाईने माँको अपने पास रखनेमें स्पष्ट शब्दोंमें मनाही कर दी । उसका कहना था कि इस मँहगाईमें हमारा तथा बच्चोंका ही पेट नहीं भरता तो यह भार कैसे उठावेंगे । मेरी पत्नीका तर्क था कि तुम्हारी माँका चिड़चिड़ा तथा क्रूर स्वभाव मुझे नहीं सुहाता है । रोटी खाकर शान्तिसे पड़ी रहें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है । उन्हें मन्दिर जाना है, वृद्धाओंकी पंचायत चाहिये, बीमार हों तो गरम-भजिया या हलुआ खानेको चाहिये । यह सब विचित्र आदतें बम्बई-जैसी महानगरीमें कैसे सहन होंगी ?' और छोटे भाईका अन्तिम पत्र पढ़कर तो वह जल उठी । व्यंग बोलती हुई कहने लगी—'पढ़ो, यह अपने भाईका अन्तिम पत्र । लालाजी लिखते हैं कि पैतृक सम्पत्ति बाँटते समय यह निर्णय किया गया था कि तीनों भाई माँको चार-चार महीने रखेंगे । मध्यम भाई बातसे फिर गया । इसलिये आप माँको ले जाइये नहीं तो चार महीनेसे जितने भी दिन अधिक माँ हमारे यहाँ रहेगी—उसका ब्याज-सहित खर्च आपके ऊपर चढ़ता रहेगा । मेरे पक्षकी अवधि पूरी हो गयी है ।'

मुझे पत्नीको समझानेके लिये बहुत कुछ बोलना था, परंतु माँके यह शब्द मेरे मनमें गूँजने लगे—'रमेश बेटा ! विभा बहूकी इच्छा न हो तो मुझे तुम्हारे यहाँ भार बनकर नहीं रहना है । मेरे लिये तुझे अपने सुनहले संसारमें क्यों उलझनें खड़ी करनी चाहिये ? मुझे अब जीना ही कितना है ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इसके कुछ समय बाद मैं और मेरी पत्नी दिल्ली घूमने गये। बच्चोंको बम्बई उनके मामा-मामीके समीप छोड़ गये। दिल्लीमें अपने पंजाबी मित्र डा० चिलानाके घर रहनेकी व्यवस्था की। वे ग्रीनपार्क-कालोनीमें तीन कमरेवाले फ्लाटमें रहते थे। वे भारत सरकारके शिक्षाविभागके सर्वोच्च अधिकारी थे। हमारे पहुँचनेपर मित्रने अपने अन्य मित्रोंके साथ हमारा सोत्साह स्वागत किया। हम ड्राइंग रूममें बैठकर बात करने लगे। इतनेमें ८० वर्षकी एक वृद्धाने वहाँ प्रवेश किया। डाक्टर चिलानाने उठकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और पूछा—'रात्रिमें निद्रा तो ठीकसे आयी थी न? बादमें पता चला कि वे उनकी माताजी थीं। प्रातः-सायं माताजीको प्रणाम करना इस परिवारका एक नियम था। स्वयं खड़े होकर जब माताजीको बैठाते हुए हमारे साथ चाय-नास्ता लेनेका उन्होंने आग्रह किया तो माता अपने स्वभावानुसार डाँटते हुए बोलीं—'बाबू! तेरा तो दिमाग खराब हो गया है। नहाये-धोये बिना यह सब तुम्हें कैसे रुचता है?' वे बोले—'हाँ, माँ! मेरी भूल हुई।'

मैंने पत्नीकी ओर देखा। उसके लिये यह एक अद्भुत पाठ था। अधिकारी मित्रोंकी उपस्थितिमें माता अपने बहू-बेटेको कितना भी डाँटे लेकिन उन दम्पतिका मुँह सदा प्रसन्न ही रहता।

माताजी बहुत वाचाल-स्वभावकी थीं। अपने पौत्र-पौत्रियोंको बैठाकर कहतीं—'हम तो सत्त्वहीन पदार्थ—डबलरोटी तथा सेब आदिको खाते ही नहीं, मक्काकी रोटीके ऊपर पंजाबकी देहातका घी और पंजाबी लस्सी नास्तामें लेती हैं।' आश्चर्यकी बात तो यह थी कि माँकी प्रसन्नता रखनेके लिये मेरे मित्र प्याज तथा लहसुन भी घरमें नहीं आने देते। माताजी-की धार्मिक भावनाको ठेस न लगे, इस कारण ये दम्पति अपने बच्चोंसहित (अतिव्यस्त होते हुए भी) माताजीकी पूजामें अवश्य सम्मिलित होते थे। चाय-नास्ता करनेके बाद माताजी अपने पौत्र-पौत्रियोंको अध्ययन कक्षमें ले जाकर पंजाबी सन्तोंकी वाणी सुनाने तथा रटाने लगीं। दिल्लीके मिरन्डा-जैसे स्टैण्डर्ड स्कूलमें पढ़नेवाले बच्चोंको ऐसी देशी पद्धतिमें शिक्षण देते देखकर मेरी पत्नीको बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरे मित्र डाक्टरने समाधान करते हुए कहा—'मातृभाषाकी शिक्षा तो अपने बालकोंको देनी ही चाहिये न! बालकोंमें धार्मिक संस्कार पड़ें, देशके प्रति (जन्मभूमिके प्रति) प्रेम रहे और माताजी प्रसन्न रहें।'

डाक्टर मित्रकी बड़ी पुत्री शशीका सम्बन्ध तय हुआ। लड़का इन्जीनियर था। दिल्लीमें ही रहता था। आज रात्रिमें उन्हें तथा उनकी बहनको पार्टीका निमन्त्रण दिया था। डा० मित्रने माताजीको बुलाकर कहा—'माँ! आज शशीका वर तथा उसकी बहन अपने यहाँ भोजन करने आनेवाले हैं। तेरा विचार हो तो जमाईके लिये शूटका कपड़ा और उनकी बहनके लिये १-२ साड़ी देनेका प्रबन्ध रक्खें?'

'बाबू! इसमें मुझसे क्या पूछना है!'

'यह बात नहीं है माँ! तू अपने पसंदके कपड़े अपनी बहूके साथ लेने जा।' माताजीको उत्साहित किया। माताजीका मुख प्रसन्न हो गया। उनके जानेके पश्चात् मैंने पूछा—'डाक्टर! मान लो, यदि माताजीने अस्वीकार कर दिया होता तो?'

'तो क्या हो जाता? दूसरे अवसरपर रखते। परंतु माँको आपत्ति ही क्या थी? अपनी दृष्टिसे अयोग्य बात दीखती हो तो भी घरके वृद्ध व्यक्तिको प्रसन्न करनेके लिये उसकी इच्छाका सम्मान करना चाहिये। ऐसे तो हम जब छोटे थे, बहुत ऊधम मचाते, बहुत अनुचित माँग करते, बाहरके झगड़े ले आते,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परंतु स्वयं दुःख सहन करके माताजी हमें प्रसन्न रखती थीं। अब केवल पैसा मात्र देकर माताजीके प्रति अपना कर्तव्य पूरा नहीं हो सकता। वे वृद्धा हैं, इसलिये यन्त्र (जड़) तो नहीं हो गयी हैं। उनका भी मन है, उनकी भी इच्छा होती है, उनका भी लगाव होता है। उनको भी दस-पाँचमें बैठनेकी इच्छा होती है।'

मेरी पत्नीने मित्रकी पत्नीसे पूछा—'बहन ! आपको यह विचार नहीं होता कि अब वृद्धोंको भी आगेके समयको देखकर अपनी रहन-सहन और व्यवहारमें परिवर्तन करना चाहिये ?'

वे बोलीं—'विभा बहिन ! जहाँतक एक दूसरेके अनुकूल होनेका प्रश्न है, वहाँ तो हमें दूसरेके अनुकूल बन जाना चाहिये। बालक अपने अनुकूल नहीं होते हैं तो हमें ही उनके अनुकूल बनना पड़ता है। आजके झगड़ोंका मूल कारण ही यही है। आजका अधिकांश शिक्षित समाज मानता है कि वृद्ध लोग हमें कहाँ समझते हैं कि हम क्या हैं ?' किंतु यह मान्यता गलत है। क्या वृद्धोंके हृदयमें अपने बहू-बेटोंके प्रति ममता नहीं होती ?

उस दिन माताजीको पूरी रात दस्त होते रहे। डाक्टर दम्पतिने पूरी रात जगकर माँकी सेवा की। दूसरे दिन जब मेरी पत्नीने माँकी सेवाके लिये सेविका बुलानेकी सलाह दी तो डाक्टरकी पत्नीने कहा—'यह तुम क्या कहती हो ? माँको कितना बुरा लगेगा। क्या हम अपने बच्चोंके टट्टी-पेशाब साफ नहीं करते।'

डाक्टर चिलाना मेरे आत्मीय मित्र थे इससे मैंने पूछ लिया—'भाई ! तुम्हारी पैतृक सम्पत्तिका बँटवारा हो गया ?'

उन्होंने कहा—'डॉ० रमेश ! उसमें क्या बँटवारा होना था ?' मेरे अन्य दो भाइयोंकी आर्थिक स्थिति सामान्य है। बड़े परिवारवाले हैं। सबसे छोटा मैं हूँ। अपनी जमीन स्वेच्छासे मैंने बड़े भाईके नाम कर दी। बीचके भाईकी स्थिति कुछ अधिक खराब है। मेरा व्यवहार देखकर बड़े भाईने मकान बीचके भाईके नाम कर दिया। नियमानुसार तीन भाग पड़ते। परंतु मानवता नामकी भी तो कोई वस्तु है ! माँ इससे बहुत प्रसन्न हो गयी। थोड़ी भौतिक सम्पत्तिका त्याग करनेसे इस जमानेके दौड़ते भयानक महानगरके बीच माँकी प्रेम-भरी छत्रछाया मिल गयी। बालकोंको दादी, माँ तथा चाचा-चाची और उनकी सन्तानका प्रेम मिला करता है। छुट्टी होते ही हमारे बच्चे दादी-माँके साथ अपने चाचा-चाचीके पास अपने गाँव चले जाते हैं। इससे अधिक दूसरा लाभ क्या मिल सकता है ?'

मेरी पत्नी इतना ही बोल सकी कि 'भाई साहब ! आपकी बात सत्य है।' रात्रिमें सोते समय वह यही विचार करती रही कि बम्बई-जैसी महानगरीमें बाहरसे सजा हुआ—जगमगाता हुआ अपना फ्लाट क्यों खाने दौड़ता है ? छुट्टी होनेपर बच्चे आग्रह भी करते थे कि हमें गाँव चाचा-चाचीके पास क्यों नहीं भेजते ? दादीको क्यों नहीं बुलाते ? थोड़े-से स्वार्थके कारण बालकोंकी मीठी उमंग छीन लेनेका हमें क्या अधिकार है ? एकके भूल करनेपर जब सब भूल करेंगे तो घर जायगा, प्रेम जायगा और········।

दूसरे दिन मेरी पत्नीने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा—'हमें आज ही चलना है। सीधे बम्बई न जाकर राजकोट चलना है, माताजीको सदाके लिये अपने समीप रखनेके लिये लेने।'

गाड़ी तीव्र गतिसे दौड़ रही थी, वहीं हम दोनोंके हृदयकी धड़कनें भी अनजान ही प्राप्त हुए जीवनके सच्चे विश्राम-स्थलकी ओर पहुँचनेके लिये शीघ्रता कर रही थीं।—ले० डा० गुणवन्ती जानी 'अखण्ड आनन्द'

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

[देव-दुर्लभ मानव-शरीरको स्वस्थ रखे बिना प्राणी अपने लक्ष्यतक पहुँच नहीं पाता । कर्म, ज्ञान, भक्ति, उपासना और चतुर्विध पुरुषार्थके समुचित साधन स्वस्थ जीवनमें ही सम्भव हो सकते हैं। आजकल लोग स्वस्थ तो रहना चाहते हैं, पर इसके लिये डाक्टरी दवाओंका प्रयोग अधिक करनेके परिणामस्वरूप उपस्थित रोगके दब जानेपर भी अन्य कई रोगोंके बीजका सूत्रपात शरीरमें हो जानेसे निरन्तर कष्टमें पड़े रहते हैं । प्राचीनकालसे भारतीय परम्परामें संयमित आहार-विहारसे युक्त नियमपूर्वक जीवन-यापन ही इसका सर्वोत्तम समाधान रहा है । इस दृष्टिसे साधकोंके लिये उपयोगी यहाँ स्वस्थ जीवनके कुछ मूलभूत सिद्धान्त प्रस्तुत लेखमें दिये गये हैं ।]

—सम्पादक

स्वस्थ जीवनके मूलभूत सिद्धान्त

मानव-शरीर ईश्वरकी अमूल्य देन है । स्वचालित यन्त्रकी तरह वह अपने-आप काममें सतत लगा रहता है । एक ओर वह आहार ग्रहण करता है, रक्त बनाता है और स्वयंको पोषण देता है तथा दूसरी ओर पोषण ग्रहणके बाद जो कूड़ा या मल बच जाता है, उसको श्वसन-मार्गसे वायुके रूपमें त्वचा एवं मूत्र-मार्गसे तरल पदार्थके रूपमें तथा मल-मार्गसे ठोस मलके रूपमें बाहर निकालता है । आहारसे पोषण प्राप्त कर लेनेके बाद जो मल बनता है, वह पूरे तौरपर अगर शरीरसे निकल जाय तो शरीर स्वस्थ रहेगा । लेकिन शरीरकी मल-विसर्जन-प्रक्रियामें बाधा उत्पन्न होनेका मतलब है, रोगका बीजारोपण होना । और, यही छोटे-बड़े सभी रोगोंकी उत्पत्तिका कारण है । यही आयुर्वेदका सिद्धान्त है— **'सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ।'** अस्तु ।

यहाँ हम उन मौलिक पञ्चसूत्रोंकी विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे, जो स्वास्थ्य-रक्षाके मूल आधार हैं । १—आहार २—श्रम, ३—विश्राम, ४—मानसिक संतुलन और ५—पञ्चमहाभूतोंका सेवन ।

१—आहार

आहारके विषयमें निम्नलिखित प्रश्न उपस्थित होते हैं—क्या खायें, कब खायें, कैसे खायें और कितना खायें ?

हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि तो प्रधान रूपसे कन्द-मूल, फल और दूधका ही सेवन करते थे । और इसीलिये वे शारीरिक दृष्टिसे स्वस्थ तथा दीर्घायु होते थे । कन्द-मूल-फल पुष्टि-आयुष्य दाता हैं ।

किंतु आधुनिक सभ्यताके विकासके साथ-साथ अन्नके उत्पादन और सेवनमें प्रवृत्तिकी संवृद्धि हुई । समयके परिवर्तनके परिणामतः मनुष्यके शरीरका कद छोटा होता गया, आयु तथा शरीर-शक्तिकी मर्यादा भी घटती गयी । परवर्ती कालमें आरामकी प्रवृत्ति भी बढ़ी । फलतः आरामशील जीवन तथा तदनुकूल सुविधाओंकी अधिकताके कारण मनुष्यके शरीर और मन दोनोंकी स्वाभाविक सहन-शक्तिमें कमी आ गयी ।

तात्पर्य यह कि फल, शाक, कन्द-मूल तथा दूधका सेवन करनेवाला मनुष्य अपेक्षाकृत दीर्घायु तथा शक्तिशाली था । ज्यों-ज्यों उसके आहारमें अन्नका परिमाण बढ़ा, त्यों-त्यों उसकी आयु और शक्तिका ह्रास होता गया; क्योंकि फल, दूध तथा अन्नमें यह अन्तर है कि फल और दूधको पचानेमें जीवनी-शक्तिका व्यय अल्प होता है और शरीरको अधिक पोषण मिलता है, जबकि अन्नको पचानेमें जीवनी-शक्तिका व्यय अधिक होता है और पोषण भी कम मिलता है । संतुलित बचाव (Vital Economy) की दृष्टिसे कन्द-मूल-फल, दूध,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

साग-भाजी अन्नकी अपेक्षा मनुष्यके लिये अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल तथा उपयोगी है।

इसलिये स्वास्थ्य-सुरक्षाकी दृष्टिसे आवश्यक है कि हमारे आहारमें फल, साग-भाजी, कंद-मूल आदि अधिक रहें और अन्नकी मात्रा कम रहे। लेकिन आजकल हमारी स्थिति इसके विपरीत हो गयी है; क्योंकि हमारे आहारमें अन्न अधिक है एवं कंद-मूल, फल, साग-सब्जीका प्रायः अभाव-सा रहता है।

हमारे आहारमें अन्नकी प्रधानताके कारण हमें अन्नका प्रयोग इस विधिसे करना चाहिये कि वह पाचनमें भारी न हो जाय। अन्नका आटा पीसकर या कूट-छाँटकर उपयोगमें लाना उचित है। किंतु घी या तेलमें तलकर खानेसे खाद्य वस्तु भारी हो जाती है। यदि आवश्यक हो तो तेल, घीका उपयोग चावल, रोटी दाल आदि तैयार वस्तुके साथ कच्चे रूपमें किया जाय, तलकर नहीं।

सारांश यह कि प्रकृतिने जो वस्तु जिस रूपमें प्रदानकी है, उसको उसी रूपमें या किंचित् संस्कृत करके उपयोगमें लेना चाहिये। जैसे गेहूँके आटेकी रोटी बनाना, सब्जीमें घी-तेल थोड़ा-सा डालकर बनाना ठीक है। इस नियमको हमेशा ध्यानमें रखें कि जिस वस्तुको पकानेमें जितना अधिक समय लगता और परेशानी होती है, उसके पाचनमें उतना ही अधिक समय लगता और परेशानी होती है। इसलिये आहारके चुनावमें मुख्यरूपसे यह ध्यानमें रखना चाहिये कि शरीरको पचानेमें कम-से-कम असुविधा हो और मल-विसर्जन भी सुगमतासे हो जाय।

आधुनिक पाकविधिके विकासमें स्वाद-सर्जनकी प्रधानता है और स्वास्थ्य एवं पोषक तत्त्वोंकी रक्षाकी ओर कम-से-कम ध्यान दिया जाता है। फलतः स्वादके वशीभूत होकर हम अपने घरोंमें पोषक तत्त्वोंको नष्ट करनेमें संकोच नहीं करते। देखा जाय तो स्वाद और पोषक तत्त्वोंकी रक्षामें कोई विरोध नहीं है, बल्कि वे एक-दूसरेके पूरक हैं। स्वास्थ्यप्रद स्वादिष्ट आहार बनाये जा सकते हैं। इस दृष्टिसे हमें पाकशास्त्रका विकास करना चाहिये। स्वाद एवं पोषक तत्त्वोंकी रक्षा, दोनोंका संतुलन पाकशास्त्रका आधार होना चाहिये।

प्रत्येक व्यक्ति घी, तेल, दूध, गुड़का सेवन अपनी पाचन-शक्तिको ध्यानमें रखकर कर सकता है, लेकिन उनके पोषक तत्त्व सुरक्षित रहें—यह शर्त कभी न भूलनी चाहिये।

अग्नि पर पकाया हुआ आहार

हम लोग प्रतिदिन अपने आहारको अग्निपर पकाते हैं। पकानेकी क्रिया कम-से-कम एक घंटे और अधिक-से-अधिक दो घंटेमें पूरी हो जाती है। अग्निपर पकानेसे खाद्य पदार्थ पाचनमें लघु अवश्य हो जाता है, पर उसके पोषक तत्त्व कम हो जाते हैं। गाजर, टमाटर, ककड़ी आदि पदार्थ कच्चे रूपमें अधिक स्वादिष्ट लगते हैं और लाभ भी करते हैं, पर पकानेपर इन वस्तुओंका स्वाद उतर जाता है और लाभ भी कम होता है।

सूर्यके द्वारा पकाया आहार (फल)

केला, आम, बेर, अमरूद, मोसंबी, अंगूर, संतरा, चीकू, पपीता आदि फल पकानेमें प्रकृतिको दो-तीन महीने लग जाते हैं। उदाहरणके लिये आम दो-तीन मासमें गर्मीमें पकता है, लेकिन कच्चे आमकी अपेक्षा पके आमके स्वाद तथा पोषक तत्त्वोंमें वृद्धि होती है। दूसरी ओर आगसे पकानेपर इसके स्वाद एवं पोषक तत्त्व घट जाता है।

अग्निपर पकाये हुए अन्नकी अपेक्षा प्रकृतिद्वारा पकाये हुए फल पाचनकी दृष्टिसे हलके होते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तीव्र तामस स्वाद—जैसे अति मीठा, तीखा या अति खट्टा आहार लेनेकी रुचि होनेपर यह निश्चितरूपसे मानना चाहिये कि भूख कम या बिलकुल न होनेपर हम केवल मानसिक आनन्द या भोगके लिये खाना चाहते हैं। शरीर-स्वास्थ्यकी ऐसी माँग नहीं है। यह भूख भी नहीं है, इसका आभास है।

हाँ, यह स्वाभाविक है कि गरीब मजदूर लोग अधिक तीखा खाना खाते हैं; क्योंकि उनके आहारमें दूध, दही, फल, घी आदिकी कमी या अभाव होता है। फलतः अन्य षट्-रसोंके अभावमें वे एक ही रसका उपयोग अधिक करते हैं।

किंतु आहारमें षट्-रसोंके होते हुए भी जो तामस आहार करते हैं, उन्हें शरीर तथा मनसे रोगी और भोगी ही मानना चाहिये।

१—हम क्या खायें?—प्रकृतिने जो वस्तु जिस रूपमें दी है, उसका कूटना, पीसना, आगमें पकाना तक तो ठीक है, पर घी, तेल आदिमें तलना ठीक नहीं है। हमें चाहिये कि तेल, घी आदि न जलायें, छौंक-बघारसे यथाशक्ति बचें।

२—भोजनमें कड़वी वस्तु अवश्य रहनी चाहिये। बंगालमें भोजनके साथ नीमके पत्ते खानेकी प्रथा है, विशेषकर ग्रीष्म ऋतुमें। यह प्रथा अच्छी है।

नीमका पञ्चाङ्ग—कुछ समय पूर्व शान्तिनिकेतनमें सभी विद्यार्थियोंको प्रातःकाल नियमित रूपसे खाली पेट नीमका पञ्चाङ्गपेय पिलाया जाता था। इससे बंगाल जैसे मलेरियावाले वातावरणमें स्वास्थ्य ठीक रहता था। कभी मलेरिया नहीं होता था। स्वास्थ्यरक्षाकी दृष्टिसे यह अच्छा साधन है। नीमके पञ्चाङ्गमें नीमका फल, फूल, पत्ता, अन्तर्छाल तथा मूलका समावेश होता है। पञ्चाङ्ग न मिलनेपर केवल पत्ता, अन्तर्छाल एवं मूलको कूटकर रातभर पानीमें भिगोकर बनाया जा सकता है। केवल नीमके सुन्दर कोमल पत्ते भी खाये जा सकते हैं। पत्ते पाँचसे पंद्रहतक हों।

३—थालीमें एक साथ अनेक प्रकारकी वस्तुएँ न हों। साधारणतः एक प्रकारका अन्न एक बारमें खानेसे पाचनमें सुविधा होती है। विविध वस्तुओंके होनेपर पाचन-क्रियामें विलम्ब लगता है।

४—भूख कम होनेपर अल्पाहार, लघु आहार या तरल पेय पर्याप्त है। मिष्टान्न आदि नहीं होने चाहिये; क्योंकि वे पचनेमें भारी होते हैं।

५—सात्त्विक आहार उत्तम होता है। तामसिक आहारसे बचना चाहिये। गृहस्थको राजसी आहारसे नीचे नहीं उतरना चाहिये। गीता (१७। ८—१० तक) में इनका सुन्दर विवेचन है।

स्वाद—स्वादके बारेमें थोड़े विस्तारसे चर्चा करना आवश्यक है; क्योंकि स्वादके विषयमें साधारणतया भ्रामक विचार फैले हुए हैं।

१—स्वादका निर्माण बचपनकी खान-पानकी आदतोंसे होता है। वस्तुतः स्वाद कोई जन्मजात गुण नहीं है। वह हमारे बचपनके आहार-विहारके अभ्याससे हो जाता है। अगर किसी बच्चेको बचपनसे मिर्च-मसाला या नमक न खिलाया जाय तो बड़े होनेपर उसे मिर्च-मसाला, नमक आदि खानेमें कष्ट होगा। इसीलिये यूरोपियन या अमेरिकन मनुष्य जब भारतीय परिवारोंमें भोजन करने जाता है, तब अत्यन्त स्नेह एवं आदर होते हुए भी वह मिर्च-मसालेसे बनी वस्तुएँ नहीं खा पाता। शिशु जब प्रथम बार मिर्च खाता है, तब वह रोता है। जब व्यक्ति प्रथम बार बीड़ी या सिगरेट पीता है तो उसे चक्कर आता है या घबराहट होती है। लेकिन ऐसी वस्तुओंकी एक बार

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आदत होनेके बाद वह उस वस्तुके बिना रह नहीं सकता ।

इससे यह सिद्ध होता है कि खान-पान तथा कपड़ा आदि पहननेकी रुचि क्रमशः बचपनकी आदतोंसे बनती है । बचपनकी आदतोंपर माता-पिताको ध्यान रखना चाहिये ।

२—सच तो यह है कि स्वाद वस्तुमें नहीं, 'भूख' में होती है । हमलोग स्वादकी तलाश हमेशा खान-पानकी वस्तुओं- (जैसे तरह-तरहकी मिठाइयाँ— रसगुल्ले, गुलाब जामुन, पेड़ा, पेठा आदि या नमकीन-सेव दालमोट आदि-) में करते हैं, लेकिन बुखार या सिर-दर्दके समय या जब पेट भरा हुआ हो, भूख बिलकुल न हो, तब स्वादिष्ट कही जानेवाली वस्तुओंमें भी स्वाद नहीं आता । बच्चेको खुलकर भूख लगनेपर रूखी रोटी भी स्वादिष्ट लगती है, यह अनुभव प्रायः सबको होता है । अतः स्पष्ट है कि स्वाद वस्तुगत नहीं, बुभुक्षागत होती है ।

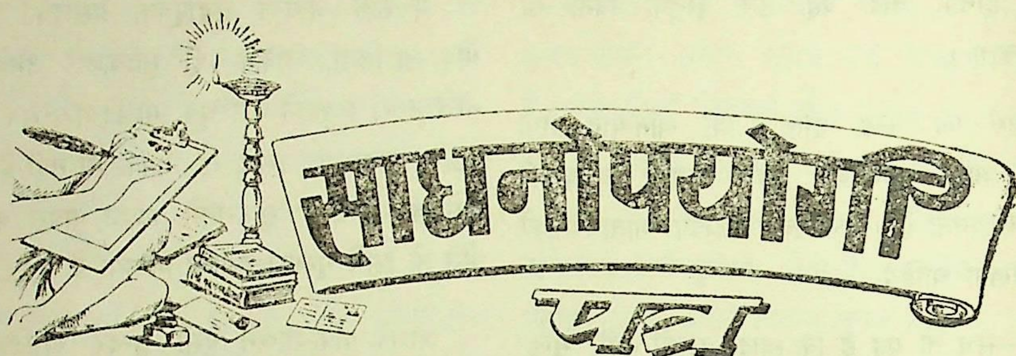
सुकरात- (साक्रेटिस-) का खान-पान तथा आचार-विचार आदर्शरूप था । उनसे युवकोंने कहा कि हम लोग आपका भोजन देखना चाहते हैं । उन्होंने युवकोंको स्नेहपूर्वक निमन्त्रण दिया । सुकरातने साग खाना शुरू किया । युवकोंने गौरसे देखा तो उनको लगा कि सागमें मसाला आदि कुछ नहीं है, केवल उबला हुआ है । युवकोंने पूछा—'आप यह बिना नमकका साग कैसे खा रहे हैं ?' उन्होंने उत्तर दिया—'इसमें तो मैंने एक अत्यन्त स्वादिष्ट मसाला मिलाया है, तुम भी खाकर देखो ।'

युवकोंने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रसादकी भावनासे थोड़ा-सा लिया, लेकिन बड़ी मुश्किलसे उनके गलेके नीचे उतरा । कुछने उसे थूक भी दिया । सब लोगोंने पूछा—'महाशय, इसमें तो नमक भी नहीं है, आप कैसे खा रहे हैं ?' सुकरातने सहज भावसे कहा— 'मैंने तो इसमें भूखका मसाला मिलाया है ।'

आजके पाक-शास्त्रने ऐसी सुन्दर स्वादिष्ट तथा आकर्षक खाद्य वस्तुओंका निर्माण किया है कि भूख न होनेपर भी पेट भरकर खाया जा सकता है । परिणाम यह होता है कि पेट तो भर जाता है, लेकिन मन नहीं भरता । जिस प्रकार अच्छी तरह प्यास लगनेपर ही पानी मीठा और रुचिकर लगता है, उसी प्रकार तेज भूख लगनेपर भोजन करनेसे एक प्रकारकी तृप्तिका अनुभव होता है । लेकिन सच्ची भूख एवं तृप्तिके अभावमें बार-बार कुछ-न-कुछ खाते रहनेकी आदत बनी रहती है । उस समय पेटके पूरा भरनेपर भी तृप्तिका अनुभव नहीं होता । भोजनमें स्वाद तथा आनन्द प्राप्त करना हो तो अच्छी तरह भूख पैदा करना पहला काम है । बिना इसके भोजनमें स्वाद नहीं आयेगा और बिना भूख भोजनसे शरीर विभिन्न रोगोंसे आक्रान्त हो जायगा ।

यह अच्छी तरह समझ लेनेकी बात है कि भूख न लगना ही सब प्रकारके शारीरिक रोगोंका मूल कारण है । यहींसे रोगकी शुरूआत होती है । महात्मा गांधीजी कहा करते थे कि भूखका न लगना पापका लक्षण है । पाप या भूलके कारण व्यक्ति भूखसे वंचित रहता है ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



[परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका तथा आदिसम्पादक भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा साधन-सम्बन्धी पत्रोंके उत्तर 'कल्याण'के माध्यमसे भी दिये जाते रहे हैं। ऐसे ही कुछ अन्य संत-महात्माओंके पत्र भी उपलब्ध होते रहते हैं, जिन्हें पढ़कर जीवनके सामान्य प्रश्नोंका समाधान स्वतः प्राप्त होता है। साथ ही वर्तमानमें भी साधन-सम्बन्धी जिज्ञासाके रूपमें कोई पत्र आनेपर समाधानात्मक उत्तर प्रकाशित करनेका प्रयास किया जा सकता है। इस स्तम्भमें ऐसे ही पत्रों (-पत्रोत्तरों-)का प्रकाशन करनेका विचार है। इस अङ्कमें कुछ पत्रोत्तर दिये जा रहे हैं। —सम्पादक]

परमार्थपत्रावली

(१)

(१) आपका पत्र यथा समय मिल गया था।

आपका दिल दुनियासे उकताकर भगवान्‌की ओर लगा, सो यह भगवान्‌की बड़ी दया है। पुस्तकोंमें श्रीगीता और श्रीरामायण सबसे उत्तम हैं। इनके पढ़नेमें और समझनेमें समय लगाकर उनके उपदेशानुसार अपना जीवन बनाया जाय तो बहुत शीघ्र परम शान्ति मिल सकती है।

(२) आपने पूछा है कि कर्मयोग और भक्तियोगमें कौन-सा श्रेष्ठ है; सो ये दोनों ही उत्तम हैं। इनमें कोई बड़ा-छोटा नहीं है। जिसका प्रेम और श्रद्धा जिस साधनमें हो, उसके लिये वही उत्तम है। कर्मयोगमें भक्ति साथ रह सकती है, इन दोनोंका अनुष्ठान एक साथ हो सकता है।

आपकी यह समझ कि 'गृहस्थीमें आदमी फँस जाता है, उसका दुनियासे निकलना मुश्किल हो जाता है'—मेरी समझमें गलत है; क्योंकि फँसानेवाला और निकालनेवाला कोई भी आश्रम नहीं है; साधक सदा ही अपने स्वभावसे फँसता है और निकल जाता है। फँसनेमें कारण उसकी आसक्ति है और निकलनेमें कारण विवेक और अनासक्ति है।

फिलहाल आप ब्रह्मचारी रहना चाहते हैं तो अच्छी बात है। अपने घरमें रहते हुए भी तो आप ब्रह्मचर्यका पालन कर ही सकते हैं।

जबतक आत्मसाक्षात्कार न हो तबतक आप कुछ नहीं करना चाहते, यह ठीक है; परंतु आत्मसाक्षात्कारके लिये जो आवश्यक कर्तव्य है उसको बिना किये आत्म-साक्षात्कार होगा भी कैसे? पर इसमें निराशाकी कोई बात नहीं है। आप अपने योग्यतानुसार जो कुछ भी उचित काम करें, निष्कामभावसे अनासक्त होकर करें, यही आत्मज्ञानका सही उपाय है। कर्म छोड़नेसे ज्ञान थोड़े ही मिलता है। भक्तिमें भी भगवान्‌का भजन-स्मरण तो करना ही चाहिये; सो वह कर्तव्य कर्म करते हुए भी आसानीसे किया जा सकता है। आपका दिल पढ़ाईमें न लगनेका कारण क्या है, यह समझना चाहिये।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

(३) आपने अपने दूसरे मित्रका परिचय लिखा सो ज्ञात हुआ। उनके दिलमें भी मुक्तिकी लालसा हुई, सो बड़े सौभाग्यकी बात है। पर मुक्ति पानेका उपाय घरबार छोड़ना नहीं है। घर-बार छोड़नेवालोंमेंसे तो बहुत-से गृहस्थोंकी अपेक्षा भी अधिक संसारके कीचड़में फँसे हैं और अपना जीवन पापमय बिता रहे हैं। अतः आपको और आपके मित्रको भी घरमें रहकर यथायोग्य कर्म निःस्वार्थभावसे करते हुए ही भजन-ध्यानमें मन लगाकर मुक्ति-प्राप्तिका मार्ग ढूँढ़ना चाहिये और इसीकी चेष्टा करनी चाहिये।

भगवान्‌के यहाँ तो प्रेमकी कीमत है, सांसारिक गुणोंकी या रूपकी नहीं। वे आपको या आपके साथीको सांसारिक योग्यताकी अधिकता या न्यूनताके कारण अच्छा नहीं मानेंगे, वे तो आपके भावका आदर करेंगे। दोनोंमेंसे जिसके भाव और आचरण उत्तम होंगे उसीको उत्तम मानेंगे।

यह बात ठीक है कि कुछ लड़कोंमें कुछ खूबियाँ बिना परिश्रमके या थोड़ेसे—निमित्तमात्र—परिश्रमसे ही आ जाती हैं, वह पूर्वजन्मके अभ्यासका फल है; पर इसका यह अर्थ नहीं कि वैसी खूबियाँ नया परिश्रम करनेपर भी नहीं मिल सकतीं। मनुष्य परिश्रम करके खुद भगवान्‌को पा सकता है, उनकी-जैसी शक्ति प्राप्तकर सकता है, फिर साधारण शक्तियोंकी तो बात ही क्या है।

(४) स्वामी श्रीदयानन्दजीने ईश्वरको पा लिया था या नहीं, यह तो वे ही जानें, मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि दूसरे संतोंपर आक्षेप करना उचित नहीं; अतः यह काम उन्होंने अच्छा नहीं किया।

(५) आपका यह लिखना कि अबतक जितने भी बड़े लोगोंके जीवन-चरित्र पढ़े हैं उन सब लोगोंकी माताएँ उनकी छोटी उम्रमें ही मर गयी थीं—सो यह कैसे हो सकता है। क्या आपने श्रीशंकराचार्यजीका जीवन-चरित्र नहीं पढ़ा ? उनकी माता तो संन्यास लेनेके बाद गुजरी थी। गोपीचंदकी माताने भी अपने लड़केको उपदेश देकर योगी बनवाया था। श्रीराम और लक्ष्मणकी माताओंने बहुत अधिक उम्र पायी थी। और भी बहुतोंकी माताओंने बड़ी उम्र पायी है।

(२)

आपका पत्र यथासमय मिल गया था, आपने अपनी इच्छा और परिस्थितिका वर्णन किया, सो ज्ञात हुआ। आपको द्विरागमनकी रिवाज अपने कुटुम्बकी प्रसन्नताके लिये सहर्ष पूरी कर लेनी चाहिये और मनमें किसी प्रकारका दुःख भी नहीं करना चाहिये। रही पूर्ण ब्रह्मचर्य-पालन करनेकी बात सो उसका उत्तर इस प्रकार है।—

नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी इच्छा और पालन करना—ये दोनों ही सौभाग्यकी बात है। अगर आपका विवाह न हुआ होता तो कोई अड़चन ही नहीं थी; परंतु आपका विवाह बाल्यावस्थामें ही हो चुका है। अतः अब आपके लिये नीचे लिखे अनुसार कार्य करना मेरी समझमें हितकर हो सकता है।

(१) आप अपनी स्त्रीमें प्रेमपूर्वक ब्रह्मचर्य-पालन-की भावना उत्पन्न करें और उनको अपनेसे सहमत करके दोनों ही ब्रह्मचर्यका पालन करें और घरवालोंकी निष्काम सेवा करते रहें। यह बड़ा उत्तम जीवन है; परंतु यह होना चाहिये दोनोंकी सम्मतिसे ही।

(२) अगर आपकी स्त्री इसमें सहमत न हों या उनकी इतनी योग्यता न हो तो उस हालतमें आपका यह कर्तव्य हो जाता है कि महीनेभरमें एक बार या दो बार ऋतुकालके समय उनके साथ सहवास करें। वह भी अपनी भोगेच्छाकी पूर्तिके लिये नहीं, स्त्रीकी इच्छापूर्तिका अपना कर्तव्य-पालन करनेके लिये। जब

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्त्रीको गर्भाधान हो जाय तो फिर पुनः ऋतुमती न होनेतक सहवासकी कोई भी आवश्यकता नहीं है ।

यहाँतक तो मैंने आपको अपनी सम्मति लिखी, अब आपके प्रश्नोंका क्रमसे अपनी बुद्धिसे शास्त्रपद्धतिके अनुसार उत्तर लिख रहा हूँ ।

(१) विवाहका उद्देश्य केवल स्त्री-सम्भोग नहीं है, बल्कि गृहस्थीमें रहकर घरवालोंकी, कुटुम्बियोंकी, गाँवकी, देशकी और समस्त जगत्के जीवोंकी निष्काम-भावसे सेवा करके अपने परम लक्ष्य परम प्रेमी परमेश्वरतक पहुँच जाना है ।

(२) विवाह कर लेनेपर भी यदि स्त्री विवेक या श्रद्धाके फलस्वरूप ब्रह्मचर्य-पालन कर सके और वह इसमें राजी हो तो सहवासकी कोई आवश्यकता नहीं है ।

(३) विषय-वासना अवश्य ही बुरी चीज है । केवल स्त्री-विषयक ही नहीं, सभी इन्द्रियोंके विषयमें यही बात समझनी चाहिये । आसक्तिके बिना भी कर्तव्य-पालनके लिये स्त्री-सहवास आदि कार्य किये जा सकते हैं ।

इसका विशेष विवरण आप गीताके दूसरे अध्यायके ६४-६५ वें श्लोकोंकी गीता-तत्त्वाङ्ककी टीकामें देख सकते हैं । विवाहके बाद सन्तानोत्पत्ति हमारा अवश्य-कर्तव्य नहीं है; क्योंकि सन्तानका होना, न होना किसीके हाथकी बात ही नहीं है ।

(४) पुत्र उत्पन्न कर देनेसे मनुष्यको मुक्ति नहीं मिल सकती । बिना पुत्रके भी मनुष्यको मुक्ति मिल सकती है । भीष्मजीके तो कोई पुत्र नहीं था, वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे, क्या उनकी मुक्ति नहीं हुई ! पुत्रवान् तो दुर्योधन भी था, पर क्या उसकी मुक्ति हो गयी ? अतः यह समझना चाहिये कि पुत्रका होना या न होना मुक्तिसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता ।

(५) परिस्थिति-विशेषमें स्त्री-सहवास मनुष्यका धर्म बन जाता है और धर्मकी दृष्टिसे आवश्यक कर्तव्य भी हो जाता है; परंतु ईश्वर-भजनकी भाँति वह परम कर्तव्य या परम धर्म नहीं है । ब्रह्मचर्यका पालन पाप कैसे हो सकता है, वह तो बड़ा उत्तम धर्म है । आप पहले बताये हुए दो प्रकारोंमेंसे किसी एक प्रकारसे ब्रह्मचर्यव्रतका पालन कर सकते हैं । गृहस्थ-आश्रममें रहकर अनासक्तभावसे केवल अपनी ही स्त्रीके साथ नियमित सहवास करनेवाला गृहस्थ नैष्ठिक ब्रह्मचारीकी अपेक्षा किसी प्रकार भी कम—निम्नश्रेणीका नहीं है ।

(६) न तो विवाहका उद्देश्य केवल सन्तानोत्पत्ति ही है और न मनुष्य बिना स्त्री-संगसे सन्तान उत्पन्न ही कर सकता है ।

(७) आपने सन्तानोत्पत्तिको दोष प्रमाणित करनेके लिये जो दलीलें दी हैं, वे युक्तिसंगत नहीं हैं; क्योंकि नया मानव पैदा करना कोई नया जीव संसारमें उत्पन्न कर देना नहीं है । जो अनन्त जीव अनादिकालसे संसारचक्रमें घूम रहे हैं, उन्हींमेंसे किसी-किसीको बड़े ही सौभाग्यसे या यों कहिये कि भगवान्की दयासे मनुष्य-शरीर मिलता है; क्योंकि इसी शरीरमें जीव अपने परम ध्येयको सिद्ध करता है । दूसरे सब शरीर तो केवल पूर्वकृत कर्मोंका भोग भोगनेके ही लिये हैं । किसीको मनुष्य-शरीरमें उत्पन्न कर देना आवागमनमें ढकेलना नहीं है; बल्कि आवागमनके चक्करमें पड़े हुए जीवको मनुष्य बनाकर अच्छी शिक्षा देकर आवागमनसे छुड़ा देनेका प्रयत्न करना है । अतः सन्तानोत्पत्ति करना किसी भी जीवको कष्ट देना नहीं है ।

अब आपकी विशेष-विशेष विचारधाराका उत्तर क्रमसे लिखा जाता है—

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

(१) यह बिल्कुल ठीक है कि विवेकहीन विषयी पुरुषोंके सभी कार्य उदरपूर्ति और भोगेच्छाकी पूर्तिके लिये ही हैं; परंतु विचारशील मनुष्योंके कार्यका लक्ष्य न तो उदर-पूर्ति है और न भोगवासनाकी ही पूर्ति है। उनका तो हरेक कार्य, चाहे वह लोगोंके देखनेमें उदरपूर्ति ही क्यों न हो, भगवान्‌की प्राप्तिके लिये ही है। इस शरीरकी रक्षा भी अपने परम ध्येयको प्राप्त करनेके ही लिये है। इस शरीरसे मनुष्य उस अलभ्य वस्तुको प्राप्त कर सकता है, जिसे पाकर मनुष्य सदाके लिये दुःखोंसे छूटकर परमानन्दमें मग्न हो जाता है।

(२) अवश्य ही मनुष्य-जीवनका लक्ष्य मोक्षप्राप्ति है। इसीको भगवान्‌की प्राप्ति, परमानन्दकी प्राप्ति, परम शान्तिकी प्राप्ति और परमधामकी प्राप्ति भी कहते हैं। सभी मनुष्योंमें इस लक्ष्यतक पहुँचनेकी शक्ति मौजूद है; परंतु वे अज्ञानवश उसे भूले हुए हैं। मुक्ति किसे कहते हैं, यह न समझनेपर भी सुख सभी चाहते हैं और आत्यन्तिक सुख मुक्तिका ही पर्याय है।

(३) बालक रोटी या दूध किसे कहते हैं, यह नहीं जानता तो भी उसे चाहता है और उसके लिये रोता या प्रयत्न भी करता है। पेट भरनेकी भूख भी सुखकी भूखके ही अन्तर्गत है; परंतु इस बातको न समझनेके कारण मनुष्य इसे छोटी-सी भूख समझ लेता है। इसीलिये बार-बार पेट भरते रहनेपर भी भूखकी समाप्ति नहीं होती, सुख और शान्ति नहीं मिलती। उसकी भूख तो फिर भी बनी ही रहती है। इसलिये समझना चाहिये कि पेटकी भूखकी अपेक्षा इस जीवको मुक्तिकी भूख बहुत अधिक है। अतः भगवान्‌ने तो उसके परम लक्ष्यको समझनेकी जिज्ञासा उसमें भर ही रखी है; परंतु वह गलत रास्ते चलता है, तब दूसरा कोई क्या करे। मनुष्य-जीवन पाकर यह जीव अपने परम लक्ष्यतक पहुँच सके—इसके लिये भगवान्‌ने बहुत सहूलियत दी है। उस ओर प्रवृत्त होनेपर यह सहजमें ही उसे पा सकता है।

(४) मुक्ति पाना ईश्वरके सृष्टि-क्रमको अवरुद्ध करना नहीं है। जीव तो असंख्य हैं, उनमेंसे मनुष्य तो बहुत ही थोड़े बनते हैं। वे अगर सब-के-सब मुक्त हो जायँ तो क्या हानि है? दूसरे जीवोंको मनुष्य बननेका मौका मिलेगा। उनके लिये स्थान खाली होगा और वे अपनी उन्नति कर सकेंगे, यह तो सबके हित-की बात है। इसीलिये मुक्ति-लाभ करना मनुष्य-शरीरका परम लक्ष्य है और वह बहुत ही उचित है। भगवान्‌ने सृष्टिकी रचना जीवोंके कर्मोंका फल भुगतानेके लिये और उनको मुक्त करनेके लिये ही की है।

(५) ईश्वरकी इच्छासे ही सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होती रहती है, पर वह होती है जीवोंके कर्मानुसार। अतः आपकी शङ्काको कोई स्थान नहीं है।

आपके प्रश्नोंका पूरा-पूरा उत्तर संक्षेपमें लिख दिया गया है। यदि इससे आपको अपने मार्गमें कुछ भी सहायता मिल जाय तो बड़ी खुशीकी बात है।



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

दानकी अदृश्य सरस्वती

प्रयागराजका महत्त्व वहाँ प्रवाहित तीन सरिताओंके संगमके कारण है। गङ्गा और यमुनाको तो देखा जा सकता है, परंतु सरस्वती अदृश्य है। दानकी भी ऐसी ही अदृश्य सरस्वती भारतमें बहती रहती है। इन सरिताओंके कारण ही जगत्‌की फुलवाड़ी अपनी सुन्दरताको सुरक्षित रखे हुए है। नहीं तो, भ्रष्टाचार, बेईमानी और धनके लालचके इस युगमें मनुष्य भयंकर रीतिसे त्रस्त हो जाय।

मेरे एक मित्रने जो बम्बईसे कानपुर आये थे, एक घटना सुनायी थी। बी० कॉम० के अन्तिम वर्षमें पढ़नेवाले एक अति तेजस्वी विद्यार्थीको भयानक बीमारी हो गयी। उसे अस्पतालमें भर्ती किया गया, किंतु अनेक उपचार करनेपर भी कोई लाभ नहीं हुआ। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि रक्त बदलना पड़ेगा। अपनी माताका यह एकलौता पुत्र था, इसी पुत्रपर उसके भविष्यकी सभी आशाएँ टिकी थीं। घरकी स्थिति साधारण थी। रक्तके लिये गुजराती तथा मराठी वर्तमान पत्रोंमें विज्ञापन छापा गया। तीन-चार दिन बाद रक्त देनेवाले मिल गये और एक-दोका तो रक्त भी मिल गया। माताके आनन्दका पार नहीं, परंतु यह जगमगाती आशा क्षणिक निकली। रक्त देनेवाले-की माँग लम्बी थी—रुपया एक लाख तथा उससे भी अधिक। माता अपने लाड़ले लालको बचानेके लिये घरका सब कुछ भी बेच डाले, तब भी पचास हजारसे अधिक नहीं हो सकता था। इतना देनेको वह तैयार थी, परंतु लेनेवाला टस-से-मस नहीं हुआ। मनमें घोर निराशा तथा अमङ्गलकी भावनाएँ छाने लगीं। यहीं दो दिन पश्चात् मराठी पत्रमें एक समाचार प्रकाशित हुआ, जिसमें आशाबाई नामक एक महिला रक्त देनेको तैयार हुई थी।

माँ दूसरे दिन आशाबाईसे मिली। आशाबाईके कोई संतान नहीं थी। साधारण रीतिसे सुखी जीवन था। रक्तकी पहचान हुई, सब मिल गया। 'इसके लिये क्या देना होगा?' यह बात आशाबाईसे जब पूछी गयी, तब एक ही उत्तर मिला—'पहले सब काम ठीकसे हो जाने दो, तब सब बात होगी।' सफलता-पूर्वक आपरेशन हो गया। पुत्रकी माता पचास हजार रुपये देनेके लिये आशाबाईके गाँव गयी, तब आशाबाईने एक ही उत्तर दिया—'तेरे पुत्रकी अब दो माताएँ हो गयीं—एक आशाबाई और दूसरी तारा बहन। क्या माताको पुत्रके पाससे कुछ लेना होता है?' तारा बहनकी आँखोंमें हर्षसे आँसू आ गये। उनका मन यह माननेको तैयार ही नहीं था कि जगत्‌में अभी भी ऐसे देवलोकके प्राणी निवास करते हैं। कहाँ गुजराती बहनका पुत्र और महाराष्ट्रकी आशाबाईका रक्त! कैसा सुन्दर संगम हुआ। दानकी ऐसी अदृश्य प्रवाहित सरस्वतीको हमारा कोटिशः वन्दन है।

—जेठालाल कानजी शाह

(२)

सिटी फादर

जब कराँचीमें सन् १९३२-३३ में मैं एक स्टुडियोमें काम करता था, तब हमारे पास मगनलाल नामक एक व्यक्ति डार्करूममें काम करता था। उसका मासिक वेतन मात्र ४५.०० रु० था। एक दिन वह दुकानसे घर जा रहा था कि अकस्मात् दुर्घटना हो गयी और उसके एक पैरकी हड्डी टूट गयी। दूसरे दिन जब वह कामपर नहीं आया, तब मुझे उस घटनाका पता लगा और मैं उसे देखने गया। अस्पताल-में उसकी देखभाल हो रही थी। चोट अधिक लगी थी, आपरेशन करना बहुत आवश्यक था। आपरेशनका व्यय मगनलाल सहन कर सके, ऐसी उसकी स्थिति नहीं थी। मुझे चिन्तित देखकर डॉक्टरने कहा कि

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

'आप जमशेद मेहतासे मिलें तो वे अवश्य कुछ सहायता करेंगे ।'

दूसरे दिन प्रातः मैं उनके घर पहुँचा । मैंने वहाँ रहनेवाली एक बहनसे बात-चीत की तो पता लगा कि वे पूजामें हैं । सम्भवतः मेरी बातें वे पूजा-कक्षमें सुन रहे थे, इससे तुरंत ही बाहर आ गये और सब बातें विस्तारसे बतानेको कहा । मेरी बातको सुनकर उन्होंने ड्राइवरको गाड़ी लानेके लिये कहा और स्वयं तैयारी करने चले गये । मात्र पाँच मिनटमें बाहर आ गये । हम दोनों लगभग १०॥ बजे अस्पताल पहुँचे । डाक्टरने उनका स्वागत किया और आनेका कारण पूछा, तब उन्होंने कहा—'मगनभाईका आपरेशन आज और अभी होना चाहिये ।' आपरेशनकी तैयारी हो गयी और आपरेशन चार-पाँच घंटेतक चलता रहा । तबतक जमशेद मेहता और मैं—दोनों कार्यालयमें बैठे रहे । मैंने स्वाभाविक ही कहा—'साहेब ! आज आप पूजा अधूरी छोड़कर आये हैं और अभीतक आपने जल भी नहीं लिया है, अब तो आप जा ही सकते हैं ।'

उस समय उनके कहे शब्द मैं आजतक नहीं भूल पाया हूँ । उन्होंने कहा—'मैं ईश्वरकी पूजा नहीं करता, मैं मात्र उनसे प्रार्थना करता हूँ कि मुझे मानव-सेवाका अवसर दीजिये । आप उस समय मेरे पास आये, मुझे अवसर मिला और मुझसे जो बना मैंने किया । जबतक यह काम पूर्ण नहीं हो जायगा, तबतक मुझसे कहीं नहीं जाया जायगा ।'

आपरेशन अच्छा हुआ, परंतु दो महीने पश्चात् प्लास्टर काटा गया तो पता लगा कि एक पैर छोटा हो गया है । मगन बिना लकड़ीके सहारे लँगड़ाता चल सकता था, किंतु यह कमी तो रह ही जायगी, इसका कोई उपचार नहीं है, यह सोचकर जमशेद मेहताका चेहरा उतर गया और वे उदास हो गये । उन्होंने कहा—'मगन भाई ! मैंने और डाक्टर साहबने पूरा प्रयत्न किया, किंतु तुम्हारा पैर एकदम ठीक नहीं हुआ, इसका मुझे दुःख है । तुम्हें एक महीना विश्राम करना है, पश्चात् तुम कामपर जा सकते हो ।'

तीन महीने पश्चात् मगन भाई कामपर आया । सेठजीने उसे मेरे पास ही रखा । एक दिन मैंने मगनलालसे पूछा—'इन तीन महीनोंमें तुम्हारा खर्च किस प्रकार चला ?' यह सुनकर उसकी आँखोंमें आँसू आ गये और वह बोला—'मेरे घर प्रति माह दूसरी या तीसरी तारीखको ५०.०० रु० का मनी-आर्डर आता था और अब भी आता है ।' एक दिन जमशेद मेहताके ड्राइवरसे मेरी भेंट हो गयी, तब उसने बताया कि 'साहेब ! मैं प्रतिमाह ऐसे तीस-चालीस मनीआर्डर करता हूँ । मुझे साहेबका आदेश है और यह धनराशि उन-उन व्यक्तियोंको जीवनभर प्राप्त होती रहेगी, ऐसा निश्चय समझो । मनीआर्डरोंकी संख्या बढ़ती तो है, परंतु घटती नहीं है । कृपा करके यह बात किसीसे कहना नहीं ।'

आज मगनभाई कहाँ है, यह मुझे पता नहीं; परंतु मुझे हैदराबादसे १९३८में पत्र दिया था, उसमें लिखा था कि 'मुझे अब भी मनीआर्डर बराबर मिलता रहता है ।'

आज भी प्रत्येक शहरमें मेयर होते हैं, जिन्हें सिटी-फादर कहा जाता है, परंतु जमशेद मेहता-जैसे सिटी फादर कितने होंगे जिन्होंने आजीवन अविवाहित रहकर जो मानव-सेवा की ! ऐसी सेवा करनेवाला मुझे कोई दीखता नहीं । १९३१ में कराँचीमें काँग्रेसका महासम्मेलन हुआ था, उसमें पूज्य बापूने जमशेद मेहताके विषयमें कहा था—'प्रत्येक नगरमें ऐसा ही सिटी फादर होना चाहिये । इसके बिना मानव-सेवा हो नहीं सकती ।' उस प्रसंगका स्मरण आते ही आज भी मेरा सिर जमशेद मेहताके चरणोंमें झुक जाता है ।

—गुणवंत जानी 'अखण्ड आनन्द'

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मनन करने योग्य

पक्षीपर दया

फ्रांसीसी रोलफोनस् नामका बालक जंगली जानवरोंसे, खास करके पक्षियोंसे बहुत प्रेम करता है । उसका सबसे अधिक प्रेम था आकाशमें गाती हुई उड़नेवाली लार्क नामक चिड़ियासे । एक दिन वह रास्तेसे जा रहा था, उसको लार्कका संगीत सुनायी पड़ा । उसने आस-पास देखा तो उसे दिखायी दिया कि एक चिड़िया बेचनेवालेके पिंजरेसे वह ध्वनि आ रही है । उसे लगा—इस गानमें दुःख भरा है । वह चिड़िया बेचनेवालेके पास गया तो उसे पता लगा कि वहाँके लोग इस चिड़ियाका मांस खाना बहुत पसंद करते हैं और वह इसीलिये बेचने लाया है । लड़केने उसका दाम पूछा, पर मूल्यके उतने पैसे उसके पास नहीं थे । लड़केने उससे कहा—'भाई ! तुम ठहरो, मैं अभी घरसे पैसे लेकर आता हूँ ।' उससे यों कहकर लड़का दौड़ा हुआ घर गया । दोपहरकी तेज धूप थी । घर जानेपर पता लगा कि माँ बाहर गयी है और वह भोजनके समयसे पहले नहीं लौटेगी । रोलफोनस्को बड़ा दुःख हुआ । उसने सोचा तबतक तो वह लार्क बिक जायगी और काट भी दी जायगी । उसे दयालु धर्मगुरु जैक्सकी याद आयी और वह तुरंत दौड़ा हुआ श्रीजैक्सके पास पहुँचा । बड़ी तेज धूप थी और उसके सिरमें दर्द हो रहा था, पर उसने कुछ भी परवा नहीं की । रोलफोनस्ने सारा हाल सुनाकर पादरी महोदयसे बड़े करुणस्वरमें कहा कि 'शीघ्र पैसे नहीं मिलेंगे तो लार्कके प्राण बचने सम्भव नहीं हैं ।' दयालु पादरी जैक्स महोदयने रुपये देते हुए लड़केसे कहा—'तुम इस कड़ी धूपमें दौड़ करके बीमार हो गये हो, मैं तुम्हें इसी शर्तपर रुपये देता हूँ कि तुम तुरंत चिड़िया खरीदकर ले जाओ । सीधे घर जाकर आरामसे पलँगपर लेट जाओ ।'

लड़केने शर्त स्वीकार कर ली और रुपये लेकर तुरंत वहाँ पहुँचा । जाकर देखा तो एक मेमसाहब लार्कको खरीदनेके लिये मोल-तोल कर रही हैं और उनके मुँहपर पानी आ रहा था । रोलफोनसने तुरंत रुपये हाथमें देकर पिंजरा ले लिया । लार्कको मानो प्राणरक्षक प्रेमी बन्धु मिल गया । वह पिंजरा लिये घर पहुँचा और घरमें घुसते-घुसते गरमीके कारण बेहोश होकर बाहर बगीचेके दरवाजेपर गिर पड़ा ।

पादरी महोदयको लड़केकी बड़ी चिन्ता थी । वे देखने आये तो देखा कि बेहोश लड़केके बिछौनेके पास बैठी उसकी माँ भयभीत हुई रो रही है । पादरीने उसको धीरज दिया और कहा—'तुम घबराओ नहीं, जो दूसरेको बचाता है, उसे भगवान् बचाते हैं ।' लड़केने एक बार आँखें खोलीं, पर वह फिर बेहोश हो गया । होश आनेपर उसने देखा 'लार्क पक्षीका पिंजरा टेबलपर रखा है और वह ऐसा मीठा स्नेहभरा करुण गीत गा रहा है, मानो बेहोश लड़केको बचानेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना कर रहा हो ।'

कुछ देरमें लड़का स्वस्थ हो गया और उसने उठकर पिंजरेको बड़ी खिड़कीके पास ले जाकर खोल दिया । पक्षी गाता हुआ मुक्त आकाशमें उड़ चला । वह अपनी प्रेमभरी चितवनसे अपने प्राणरक्षक उस लड़केकी ओर कृतज्ञताभरे हृदयसे देखता गया ।*

—श्रीनिवासदास पोद्दार

* यह घटना—Animals Defender and Anti-vivisection News, 27 palace Street; London में श्रीकरलोट्टाकार महोदयने लिखी है । इस घटनाको पढ़कर हमें अपनी ही दशापर बड़ा दुःख होता है । भारतमें आज प्रतिदिन सहस्रों गायोंका निर्दय वध होता है । करोड़ोंकी लागतके कसाईखाने चल रहे हैं । अहिंसाके पुजारी गौतमबुद्ध और महात्मा गांधीके देशकी यह दुर्दशा है !

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सर्वस्वरूपिणी देवीकी स्तुति

ब्रह्मोवाच

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका । सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ॥
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः । त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ॥
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् । त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने । तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः । महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ॥
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी । कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा । लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा । शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी । परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥
यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके । तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ॥

(दुर्गासप्तशती तन्त्रोक्त रात्रिसूक्तसे)

ब्रह्माजीने कहा—देवि ! तुम्हीं स्वाहा, तुम्हीं स्वधा और तुम्हीं वषट्कार हो । स्वर भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं । तुम्हीं जीवनदायिनी सुधा हो । नित्य अक्षर प्रणवमें अकार, उकार, मकार—इन तीन मात्राओंके रूपमें तुम्हीं स्थित हो तथा इन तीन मात्राओंके अतिरिक्त जो विन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है, जिसका विशेषरूपसे उच्चारण नहीं किया जा सकता, वह भी तुम्हीं हो । देवि ! तुम्हीं सन्ध्या, सावित्री तथा परम जननी हो । देवि ! तुम्हीं इस विश्व-ब्रह्माण्डको धारण करती हो । तुमसे ही इस जगत्की सृष्टि होती है । तुम्हींसे इसका पालन होता है और सदा तुम्हीं कल्पके अन्तमें सबको अपना ग्रास बना लेती हो । जगन्मयी देवि ! इस जगत्की उत्पत्तिके समय तुम सृष्टिरूपा हो, पालनकालमें स्थितिरूपा हो तथा कल्पान्तके समय संहाररूप धारण करनेवाली हो । तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोहरूपा, महादेवी और महासुरी हो । तुम्हीं तीनों गुणोंको उत्पन्न करनेवाली सबकी प्रकृति हो । भयंकर कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी तुम्हीं हो । तुम्हीं श्री, तुम्हीं ईश्वरी, तुम्हीं ह्री और तुम्हीं बोधस्वरूपा बुद्धि हो । लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षमा भी तुम्हीं हो । तुम खड्गधारिणी, शूलधारिणी, घोररूपा तथा गदा, चक्र, शङ्ख और धनुष धारण करनेवाली हो । बाण, भुशुण्डी और परिघ—ये भी तुम्हारे ही अस्त्र हैं । तुम सौम्य और सौम्यतर हो । इतना ही नहीं, जितने भी सौम्य एवं सुन्दर पदार्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा तुम अत्यधिक सुन्दरी हो । पर और अपर—सबसे परे रहनेवाली परमेश्वरी तुम्हीं हो । सर्वस्वरूपे देवि ! कहीं भी सत्-असत्रूप जो कुछ वस्तुएँ हैं और उन सबकी जो शक्ति है, वे सब तुम्हीं हो । ऐसी अवस्थामें स्तुति क्या हो सकती है ! (तुम्हारी महिमामयी स्तुति कर पाना अशक्य प्राय है ।)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०-१३

श्रीहरिः

नम्र निवेदन

कल्याणके प्रायः सभी पाठक परम श्रद्धेय श्रीस्वामी रामसुखदासजी महाराजसे परिचित हैं। इन्होंने श्रीगीताजीपर गहरा अध्ययन एवं मनन किया है। अब भी इनका श्रीगीताजीपर मनन चलता ही रहता है। इनका जीवन ही गीतामय बन गया है। हमलोग गीताजीके विषयमें प्रवेश करके उससे विशेष आध्यात्मिक लाभ उठा लें—इस हेतु इन्होंने कृपा करके अत्यधिक परिश्रमपूर्वक गीताजीके प्रत्येक अध्यायपर विस्तृत टीका लिखी है, जो गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित है। निम्नलिखित अध्यायोंकी टीका अभी विक्रयार्थ उपलब्ध है।

		मूल्य	डाकखर्च
गीताका आरम्भ	पहले और दूसरे अध्यायोंकी विस्तृत टीका	३.५०	३.५०
गीताका कर्मयोग खण्ड—२	चौथे एवं पाँचवें अध्यायोंकी टीका	४.००	३.६०
गीताका ध्यानयोग	छठे अध्यायकी टीका	२.००	३.१५
गीताकी राजविद्या	७, ८, एवं ९ अध्यायोंकी टीका	४.५०	३.६०
गीताकी विभूति और विश्वरूप दर्शन	१० एवं ११ अध्यायोंकी टीका	३.००	३.३०
गीताका भक्तियोग	१२ एवं १५ अध्यायोंकी टीका	५.००	३.५०
गीताका ज्ञानयोग	१३ एवं १४ अध्यायोंकी टीका	४.००	३.५०
गीताकी सम्पत्ति और श्रद्धा	१६ एवं १७ अध्यायोंकी टीका	३.००	३.४०

नित्य लीलालीन परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने मानव-मात्रके कल्याण-हेतु बहुत-से ग्रन्थ रचे हैं। उन ग्रन्थोंमें भगवच्चर्चाके छः भाग अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आज भगवत्कृपासे बहुत वर्षोंके बाद इन सभी भागोंको हम उपलब्ध करा सके हैं। हमारा अनुरोध है कि आप सभी भागोंका सेट लेकर इनके अध्ययन-मनन करें और आध्यात्मिक लाभ उठाएँ।

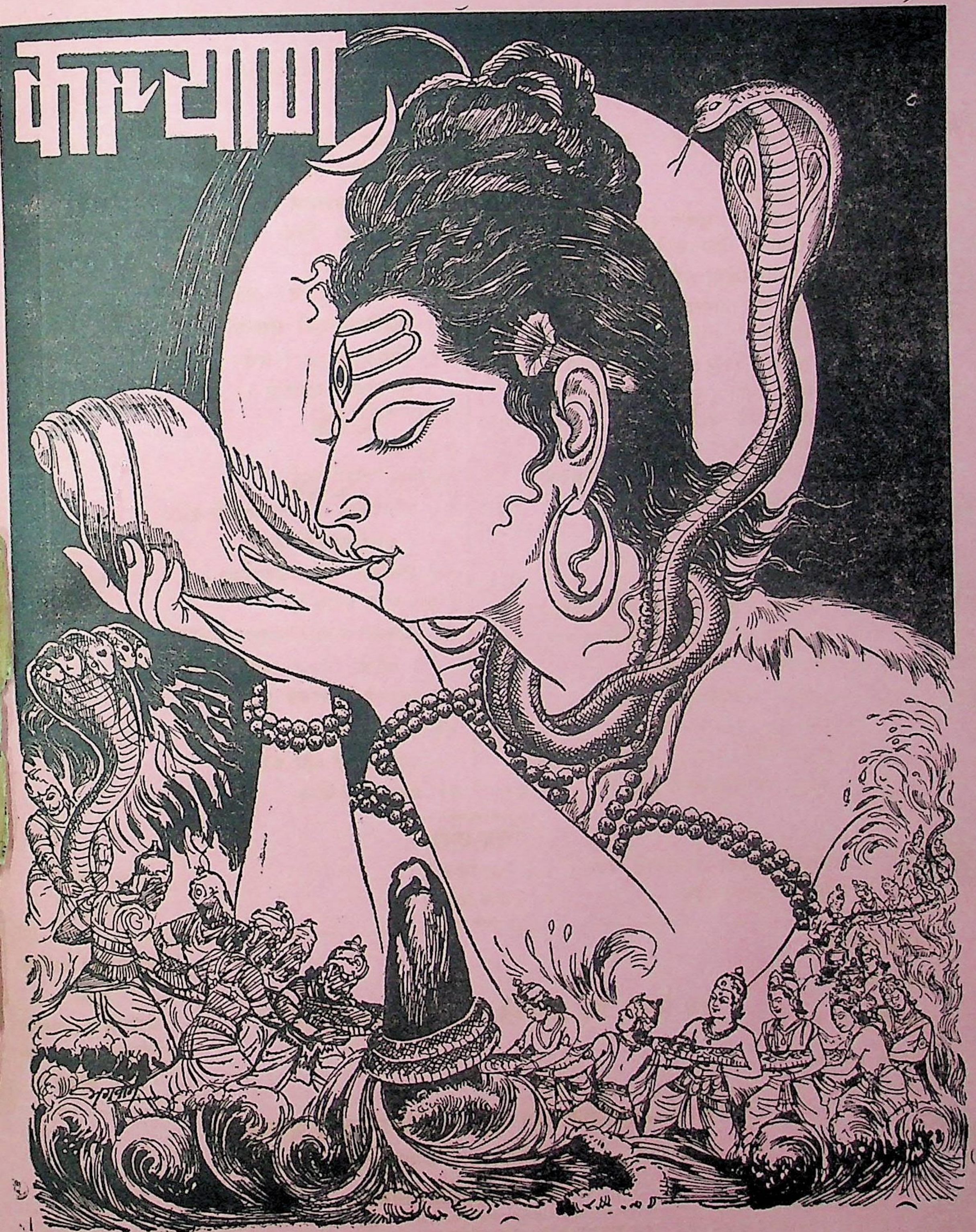
	मूल्य	डाकखर्च
भगवच्चर्चा भाग १	३.५०	३.२०
,, ,, २	२.५०	३.२०
,, ,, ३	४.००	३.४५
,, ,, ४	४.००	३.५५
,, ,, ५	५.००	३.५०
,, ,, ६	५.००	३.४०

उन्हीं परम श्रद्धेय श्रीपोद्दारजी-द्वारा लिखित दूसरी ग्रन्थमाला 'लोक-परलोकका सुधार' के कुल ५ भाग हैं जिनमें निम्नलिखित भाग उपलब्ध हैं। दूसरा भाग छप रहा है, बहुत शीघ्र तैयार होनेवाला है। अतः आप सभी भागोंके सेटका आर्डर दे सकते हैं।

	मूल्य	डाकखर्च
लोक-परलोकका सुधार भाग १	२.००	३.१५
,, ,, ,, २	२.५०	३.२५
,, ,, ,, ३	३.००	३.२५
,, ,, ,, ४	३.००	३.२५
,, ,, ,, ५	३.००	३.२५

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



'तस्मादिदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे'

वर्ष ६०] [संख्या ४

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,६५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर वैशाख, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१२, अप्रैल १९८६

चित्र-सूची

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य भारतमें १.२५ रु० विदेशमें १५ पेंस

जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य भारतमें ३०.०० विदेशमें ८०.०० (५ पौण्ड)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका

गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

[भारत-सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित]

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



भगवान श्रीगोविन्ददेव

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥





कल्याण

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ॥

वर्ष ६० } गोरखपुर, सौर वैशाख, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१२, अप्रैल १९८६ ई० { संख्या ४ पूर्ण संख्या ७१३

मैं श्रीगोविन्ददेवजीका भजन करता हूँ

वेणुं क्वणन्तमरविन्ददलायताक्षं बर्हावतंसमसिताम्बुदसुन्दराङ्गम् ।
कन्दर्पकोटिकमनीयविशेषशोभं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

(बृहद् ब्रह्मसंहिता ५ । ३९)

'जिनके नेत्र कमलके समान हैं, जो श्याम मेघके समान सुन्दर हैं एवं मयूरपिच्छ धारण किये हुए वंशी बजा रहे हैं, जिनकी वेषभूषा करोड़ों कामदेवकी शोभाको भी मात करती है, मैं उन आदिपुरुष गोविन्ददेवजीका भजन करता हूँ, आश्रय लेता हूँ ।'

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कल्याण

भगवान्के नाममें श्रद्धा न हो, प्रेम न हो तो भी दूसरेके कहनेसे भी नाम लेना आरम्भ कर दे। अच्छा, क्या हानि है, नाम लिया करेंगे—इसी भावसे ले, आदत डाल ले, फिर काम होगा ही; क्योंकि भगवन्नाममें वस्तुशक्ति ही ऐसी है, पाप नाश करनेकी स्वाभाविक शक्ति ऐसी है कि जीभपर नाम आते ही वह पाप-राशिका नाश कर देती है। भगवन्नाम पापोंका नाश करके ही शान्त नहीं हो जाता। वह पापका नाश करनेके बाद हृदयमें ज्ञानकी ज्योति भी जगा देता है। फिर ज्ञानके बाद भगवान्के प्रति प्रेम उत्पन्न करता है। होता यह है कि फिर स्वयं नामी खिंच जाते हैं। भगवान्के नाम, रूप, लीला, धाममें भी अन्तर नहीं है। ये सब भगवत्स्वरूप ही हैं। नाम भगवान्को हमारी ओर खींचता है और हमें भगवान्की ओर ले जाता है। वह दोनों ही काम करता है। किंतु सबसे बड़ी मूर्खता और सबसे बड़ा मोह यह है कि हम विषयोंसे सुखकी आशा करते हैं। इस मूर्खता तथा मोहको मिटानेके लिये भी भगवान्का नाम लेना ही वास्तविक उपाय है। यह स्मरण कर लेनेकी बात है कि मनसे, वाणीसे और शरीरसे दिन-रात चौबीसों घंटे ही निरन्तर भजन होता रहे। निरन्तर दिन-रात भजन हो—इसके लिये कुछ समय प्रतिदिन एकान्तमें बैठकर उसका अभ्यास करे। मान लें, यदि दो घंटे एकान्तमें बैठकर लगातार भजन करेंगे, तो फिर इससे शेष बाइस घंटेतक—स्वतः भजन करनेकी शक्ति मिलती रहेगी।

भगवद्भजनका सबसे सरल प्रकार है—भगवान्के नाम-स्मरण, नाम-जप और नामकीर्तन। यदि स्मरण न हो सके तो जीभसे ही निरन्तर नाम लेनेका अभ्यास करना चाहिये। नामोच्चारणसे असम्भव सम्भव होता है।

प्रत्येक मनुष्यको प्रतिदिन एकान्तमें बैठकर लगातार कम-से-कम दो घंटे नाम-जपका अभ्यास अवश्य करना चाहिये। इस क्रममें यदि मनुष्य चेष्टा रखे तो एक लाख नाम-जप न सही, पचास हजार नाम-जप तो बहुत आसानीसे कर ही सकता है।

नाम लेते-लेते अन्तरके मलका नाश होता है, फिर नामका स्वाद प्रकट होता है। नाममें स्वाद आ जानेपर तो फिर नाम छूटना कठिन हो जाता है।

नामकी पूँजी खरी पूँजी है। यह जिसके पास है, उसे यमराजका भय नहीं है। जहाँ भगवान्का नाम होता है, वहाँ यमदूत नहीं आ सकते।

यदि सचमुच भगवान्का नाम-जप होने लग जाय तो विपत्ति सम्पत्तिके रूपमें परिणत हो जाय। शास्त्र-वचन है—'**सम्पन्नारायणस्मृतिः**'।

गोस्वामी तुलसीदासजीने तो यहाँतक कह दिया है कि—

तुलसी जाके बदन ते धोखेहु निकसत राम।
ताके पगकी पगतरी मोरे तनुको चाम॥

धन्य है इस नाम-प्रेमको।

सारे साधनोंका प्राण है—भगवान्का नाम। 'नाम रामको अंक है, सब साधन है सून।' स्वयं खूब भजन करो और दूसरोंसे भी करवाओ।

मनुष्य-जन्ममें ही मनुष्य अपने मनकी गंदगी सर्वथा मिटा सकता है। अतः हम मनुष्य-जन्मवालोंको चाहिये कि भगवन्नाम-रूपी अग्निसे मनकी सारी गंदगीको जला डालें।

नामचिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नात्मा नामनामिनोः॥

'नामचिन्तामणि ही श्रीकृष्ण है, वह चैतन्य रसका शरीर है, पूर्ण पवित्र और नित्यमुक्त है। नाम और नामी दोनों अभिन्न हैं।'

—'**शिव**'

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दुःखके कारण

पाँच चीजें ऐसी हैं जो हमारे दुःखको सदा बढ़ाती रहती हैं। यदि यह कह दें कि ये ही पाँच हमारे यहाँके प्रायः समस्त दुःखोंके कारण हैं, तो अत्युक्ति न होगी।

(१) भगवान्के मङ्गलमय दानको अस्वीकार करनेकी वृत्ति—यहाँ जो कुछ भी हमें फलरूपमें प्राप्त हो रहे हैं, उन सबके आगे-पीछे मङ्गलमय प्रभुका मङ्गलविधान काम करता है। प्रभु हमें जो कुछ भी देते हैं, उसमें हमारा उत्थान होना निश्चित है। हमारे जीवनको नीचे स्तरसे उठाकर सबकी अपेक्षा कहीं अधिक सुख-शान्ति प्रदान करनेके लिये ही प्रभुका प्रत्येक विधान बनता है; किंतु **हम** उसे स्वीकार नहीं करना चाहते। जिन्हें प्रभुकी सत्तामें विश्वास नहीं, जो प्रभुको नहीं मानना चाहते, उनकी बात दूर, जो अपनेको आस्तिक कहते हैं, वे भी अपने मनके प्रतिकूल किसी भी विधानको स्वीकार नहीं करना चाहते। मनचाहा होनेपर तो बड़ी आसानीसे कह देंगे कि प्रभुकी कृपा है। पर कहीं मनके विरुद्ध हुआ तो उदासी आये बिना नहीं रहती। वास्तवमें यह प्रभुकी कृपाका अधूरा ही दर्शन है। पूरा दर्शन तो वह है जब कि हमारे लिये कुछ भी प्रतिकूल रहे ही नहीं। प्रभुके विधानसे जो भी हमें मिले, उसे हम अनुकूल बना लें, उसीमें पूर्ण अनुकूलताका दर्शन करें; किंतु यह होता नहीं। और उधर, यह बात है कि चाहे हम रोकर स्वीकार करें या हँसकर, प्रभुका विधान तो हमपर लागू होकर ही रहेगा। प्रभुके यहाँ भ्रम नहीं, प्रमाद नहीं, पक्षपात नहीं। वहाँ तो अखण्ड स्नेह है, न्याय है, पूर्ण व्यवस्था है। जैसे अबोध शिशुके रोनेकी परवा न कर माता उसे स्नान कराती है, शरीरपर जमे हुए मैलको मल-मलकर धोती है, उलझे हुए बालोंको ठीक करती है तथा कभी जब यह देख लेती है कि बच्चेके कपड़े जीर्ण हो गये हैं, अथवा अत्यन्त मलिन हो गये हैं, तो उन्हें बदल देती है, वैसे ही दयामय प्रभु हमारे रोने-चिल्लानेकी परवा न कर हमें दुःख, विपत्ति, अपमान, निन्दा आदि विधानोंसे परिशुद्ध करते हैं और आवश्यकता होनेपर वस्त्र-परिवर्तनकी भाँति ही हमारे इस शरीरका मलिन आवरण हटाकर नवजीवन प्रदान करते हैं। जैसे माताकी प्रत्येक चेष्टामें बच्चेके प्रति अखण्ड स्नेह-भावना, सर्वथा हित-बुद्धि भरी होती है—भले ही इसे शिशु न समझे, वैसे ही प्रभु चाहे जो भी विधान करें, उसमें भरा है हमारे प्रति उनका अनन्त अपरिसीम स्नेह, हमारा ऐकान्तिक हित। माँ यदि रोनेके भयसे बच्चेको स्वच्छ करना छोड़ दे, तब तो बच्चा जीवित रह चुका! अज्ञतावश रोना तो उसका स्वभाव है, अतः माँ उस ओर दृष्टिपात भी नहीं करती। वैसे ही प्रभु हमारे 'धुकुर-पुकुर, हाय रे, मरे रे' की ओर न देखकर हमें शुद्ध करेंगे ही, उनका विधान हमपर चरितार्थ होगा ही। और, हम उसे टालनेका जितना प्रयास करेंगे, उतना ही संघर्ष बढ़ेगा और हमारा दुःख बढ़ता जायगा। उनके विधानमें स्नेहमय कोमल हाथोंका स्पर्श भी हमें अवश्य प्राप्त होगा, हम उनकी गोदमें सुखकी नींद सो भी जायँगे, तथा जागनेपर हमें उस गत दुःखकी स्मृति भी नहीं रहेगी। आयु बढ़नेपर, समझ आ जानेपर, प्रभुकी सत्तामें निष्ठा हो जानेपर, उनकी मङ्गलमयताका ज्ञान हो जानेपर, हम वैसे विधानोंका स्वागत उत्फुल्ल होकर करेंगे, उनकी प्रतीक्षा करेंगे, विलम्ब होनेपर संत कबीरकी भाँति* प्रभुसे प्रार्थना करेंगे कि 'नाथ!

* कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी संत कबीरके जीवनपर एक रचना है, जिसका भाव यह है—कबीरको सिद्ध महात्मा मानकर लोगोंकी भीड़ एकत्र होने लगी। कोई सिद्धि दिखानेको कहता, कोई संतानकी माँग करता तो कोई

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ऐसी कोई रचना रचो, कोई-सी लीला करो जिससे हमारे झंझट दूर हों' और वैसी परिस्थिति आनेपर हमारा रोम-रोम खिल उठेगा; किंतु जबतक ऐसा नहीं हो रहा है, तबतक हमारे लिये एक बार तो दुखी होना अनिवार्य है। यह है हमारी मूर्खता ही, पर उपाय क्या हो ? प्रभुरूप अनन्त दयामयी जननीके हाथमें हम अपनेको सौंप नहीं देना चाहते; उनकी अनन्त शक्ति, असीम सौहार्दपर हमारा विश्वास जो दृढ़ नहीं होता।

यहाँ इस उदाहरणमें शिशुके पास तो साधन नहीं कि वह माताकी भावनाको हृदयङ्गम कर सके, छः महीनेके बच्चेमें यह बुद्धि कहाँ है ? पर हमारे पास तो साधन भी है। हमारी जो बुद्धि राजनीति, अर्थशास्त्र, गणित, भूगोल, इतिहास एवं विज्ञानके विभिन्न क्षेत्रोंमें ऊहापोह कर सकती है, वह यदि चाहे तो, इन सबके ऊपर जाकर प्रभुकी सत्ता, मङ्गलमयतापर भी विचार कर सकती है और यदि पक्षपातशून्य होकर वह उस दिशामें बढ़ेगी, अपने मनमाने सिद्धान्तको ही स्थापित करनेका आग्रह छोड़कर सत्यको सहर्ष आदर देनेके लिये प्रस्तुत होकर अग्रसर होगी तो उसे कुछ-न-कुछ सत्य प्रकाश अवश्य मिलेगा। कुछ-न-कुछकी बात इसलिये कि वास्तवमें इस दिशामें श्रद्धाका संबल नितान्त आवश्यक है। बुद्धि इस मार्गमें कुछ आगे चलकर कुण्ठित हो जाती है। फिर भी जो पुरुष सत्यको ग्रहण करनेका दृढ़ निश्चय—पक्षपातशून्य निश्चय लेकर चलता है, उसे प्रभुके ही किसी अचिन्त्य बिधानके अनुसार किसी छिद्रसे आलोककी कोई क्षीणतम रेखा दीख जाती है। और, कदाचित् उस क्षीण रेखाके सहारे ही वह थोड़ा-सा आगे और बढ़ गया, तो फिर उसका काम हो जाता है। उसके लिये श्रद्धाके द्वार अपने-आप खुल जाते हैं। बस जहाँ श्रद्धाके द्वार खुले कि ज्ञानका पूर्ण आलोक आया। इसके अनन्तर कुछ करना नहीं पड़ता, जो वस्तु यहाँ जिस रूपमें है, वैसी ठीक-ठीक दीखने लग जाती है। प्रभुके अतिरिक्त यहाँ दूसरी वस्तु है ही नहीं, सर्वत्र प्रभु हैं, सर्वत्र उनके स्वरूपमें ही आनन्द भरा है, मङ्गल-ही-मङ्गल है। हमारी आँखोंपर अज्ञानरूपी अँधेरे-का पर्दा पड़ा है। हम प्रभुको उनकी नित्य आनन्द-मयताको, उनकी मङ्गलमयताको देख नहीं पाते। कहीं ज्ञानका सूर्य उदय हो जाय तो काम हो जाय। यहाँ हम प्रत्यक्ष प्रतिदिन देखते हैं—सूर्योदय हमारी आँखोंपर पड़े हुए अँधेरेके आवरणको हटामात्र देता है, वह किसी वस्तुकी रचना नहीं करता। वैसे ही प्रभुका

मन्त्रसे रोग दूर करनेकी याचना करता। इस प्रकार कबीरके एकान्त भजन-साधनमें विघ्न होने लगा। उन्होंने प्रभुसे प्रार्थना की। कुछ ही दिनों बाद गाँवके कुछ ईर्ष्यालु लोगोंने कबीरके विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा। एक कुलटा स्त्रीको सिखा-पढ़ाकर ठीक किया। जब कबीर कपड़ा बेचने बाजारमें आये तब उसने उनका पल्ला पकड़ लिया और वह उन्हें खरी-खोटी सुनाने लगी। उसका कहना था कि 'मैं तुम्हारी रखेल स्त्री हूँ और तूने मुझे छोड़ दिया, मैं कष्ट पा रही हूँ।' दुष्टोंका दल पहलेसे तैयार था ही। सब ताली पीटने लगे। कबीरकी खूब निन्दा हुई, पर कबीर प्रसन्न हुए। वे उस स्त्रीको अपने साथ घर ले आये। उसे अपनी माताके समान मानकर आश्रय दिया और उसका आदर-सत्कार करने लगे। स्त्रीके मनमें पश्चात्तापकी आग धधक उठी। सर्वथा झूठा लाञ्छन उसने कबीरपर लगाया था। पर कबीर सदा यही कहते—'मैया! तू डर मत। तू तो भगवान्के यहाँसे मेरे लिये निन्दारूपी उपहार लेकर आयी है।' इसके पश्चात् एक बार काशीनरेशने कबीरकी ख्याति सुनकर उनका दर्शन करना चाहा। कबीरने सोचा—रहा-सहा बखेड़ा भी दूर हो जाय। उसे लेकर वे राजसभामें गये। स्त्रीको साथ देखकर राजाके मनमें कबीरके प्रति घृणा हुई। कबीर सभासे निकाल दिये गये। कबीर कुटीमें आये। ईर्ष्यालु उन्हें चिढ़ा-चिढ़ाकर हँस रहे थे। पर वह स्त्री कबीरके चरणोंमें लोट गयी, बोली—'मुझ अधमको अपने साथ रखकर इतना अपमान क्यों सहते हो?' कबीर बोले—'जननी! तू तो मेरे प्रभुकी भेजी हुई है, मेरे मालिकका दान है।'

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सम्यक् सुदृढ़ ज्ञान, उनका दिव्यातिदिव्य आलोक जहाँ आया कि वह हमारी बुद्धिके अनादि अज्ञान-अन्धकारको सदाके लिये नष्ट कर देगा। फिर प्रभु तो हमारे लिये नित्य-निरन्तर यहाँ हैं ही, उनकी रचना थोड़े होनी है।

यथा हि भानोरुदयो नृचक्षुषां
तमो निहन्यान्न तु सद् विधत्ते।
एवं समीक्षा निपुणा सती मे
हन्यात्तमिस्रं पुरुषस्य बुद्धेः॥
(श्रीमद्भा० ११। २८। ३४)

किंतु हमारा न तो प्रभुपर विश्वास है, न इस दिशामें कोई प्रयत्न ही है। इसीका अनिवार्य परिणाम यह है कि जहाँ तनिक-सा भी कोई प्रतिकूल विधान हमारे सामने आया, आनेकी गन्ध मिली कि हम उसे टालनेकी चेष्टा करते हैं। वह टलता तो है नहीं, केवल संघर्ष बढ़ता है और हम दुखी होते हैं।

(२) हमारा मलिन स्वार्थ—दूसरेका कुछ भी हो, उसका चाहे अहित हो, वह चाहे दुखी हो, हमारा भला होना चाहिये, हमें सदा सुख मिलना चाहिये। यह भावना हमारे दुःखका दूसरा कारण है। यह एक नित्य सनातन नियम मान लेना चाहिये कि जिसकी ऐसी भावना है, उसका भला होनेका ही नहीं है, उसके लिये सुख बहुत दूरकी वस्तु है। सुखका स्वप्न वह भले देख ले, मनके लड्डू खा ले तथा यह भी सम्भव है—पूर्व अर्जित किसी शुभ कर्मके फलोन्मुख प्रारब्धवश वह यहाँ अभी जगत्की दृष्टिमें ऊपरसे सुखमयी परिस्थितियोंसे घिरा दीख पड़े, पर कहीं कोई उसके मनमें प्रवेश करके देखे, उससे मनकी स्थिति पूछकर कोई उसके मनमें प्रवेश करके देखे, तो पता चलेगा कि उसके मनमें सुखकी छाया भी नहीं है। वह एक अत्यन्त साधारण स्थितिके मनुष्यकी अपेक्षा भी बहुत अधिक अशान्त है। आज हममेंसे अधिकतरकी यही दशा है। हम अपना बनाना चाहते हैं, दूसरेकी उपेक्षा करते हैं। परिणाम यह होता है कि हमारा बनता ही नहीं, चाहे हम कितनी ही चेष्टा क्यों न करें। न बननेपर हम दुखी तो होंगे ही।

जैसे हमारे आँख, नाक, कान, मुँह, सिर, कण्ठ, हृदय, पेट, कमर, हाथ, पैर आदि विभिन्न अवयव हैं; अब यदि आँख कहे कि हाथ टूटे तो टूटे, पैर कटे तो कटे, हम ठीक रहें; कान कहे कि आँख फूटे तो फूट जायँ, नाक सड़े तो सड़ जाय, इससे हमारा क्या? हम ठीक बने रहें तो यह कैसी हास्यास्पद बात होगी! एककी हानिका प्रभाव दूसरेपर पड़ेगा कि नहीं? वैसे ही यह सारा विश्व एक ही प्रभुका शरीर है, हम सभी उस विराट् शरीरके अंश हैं, परस्पर हम सभी जुड़े हुए हैं, सबके हितमें हमारा हित, सबके सुखमें हमारा सुख समाया हुआ है। हमें ऐसी अनुभूति इसलिये नहीं होती कि विषय-व्यामोहमें पड़कर हम पागल हो रहे हैं, हमारी बुद्धि ठिकाने नहीं है। पागल जैसे अपने ही अङ्गोंको काटकर, तरह-तरहकी चेष्टाओंसे उसको विकृतकर सुखी होनेका अनुभव करता है, वैसी ही दशा हमारी है। जब हमारा यह पागलपन दूर होगा, प्रभुमें स्थित होकर हम इस जगत्को देखेंगे, तब यथार्थ दीखेगा। और उस समय, जैसे हम अपने सिर, हाथ आदि अङ्गोंमें, 'ये दूसरे हैं' ऐसी भेद-बुद्धि नहीं करते, वैसे ही समस्त भूत-प्राणियोंमें ही हम पर-बुद्धि करना छोड़ देंगे। सबके प्रति समान अपनापन होगा—

यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु
शिरःपाण्यादिषु क्वचित्।
पारक्यबुद्धिं कुरुते
एवं भूतेषु मत्परः॥
(श्रीमद्भा० ४। ७। ५३)

जबतक हमारी यह स्थिति नहीं हो जाती तबतक यह हमारा, यह दूसरेका, हम सुखी रहें, दूसरेसे हमें क्या मतलब?' यह वृत्ति बनी रहेगी और हमें दुःख देती ही रहेगी।

—क्रमशः

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भगवन्नाम

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके लेखोंसे उद्धृत)

जिसका भगवान्‌के जिस नामसे प्रेम हो, उसके लिये वही नाम विशेष लाभप्रद है। जिस पुरुषको जिस नामसे विशेष लाभ पहुँचा है, उसने उसी नामकी विशेष महिमा गायी है।

परमात्माके सभी नाम समान प्रभावशाली हैं। जिसे जो इष्ट हो, जो प्रिय हो, जिसमें जिसकी विशेष श्रद्धा और रुचि हो, उसके लिये वही श्रेष्ठ है।

मन्त्रका जोरसे उच्चारण करके जप करनेपर जो फल मिलता है, उससे दसगुना अधिक फल उपांशु अर्थात् जिह्वासे किये जानेवाले जपसे प्राप्त होता है। मानसिक जपका फल उपांशुसे दसगुना तथा साधारण जपसे सौगुना अधिक होता है। इससे मानसिक जप ही सबसे उत्तम है।

मनुष्य सौ वर्षोंमें साधारण जपसे जो फल प्राप्त कर सकता है, वही फल मानसिक जपद्वारा उसे एक ही वर्षमें प्राप्त हो सकता है; फिर वही भजन यदि निष्कामभाव और गुप्तरीतिसे किया जाय तो यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि सौ वर्षोंमें जो फल नहीं हो सकता, वह छः मासमें ही प्राप्त हो सकता है।

निष्काम और गुप्त भजन ही शीघ्रातिशीघ्र फलदायक होता है।

मन्त्रका जप अर्थसहित, आदर और प्रेमपूर्वक किया जाना चाहिये।

यदि अर्थ समझमें न आता हो तो भगवान्‌के ध्यानसहित जप करना चाहिये।

चारों वेदोंमें गायत्रीके समान किसी भी मन्त्रका महत्त्व नहीं बतलाया गया है।

जो व्यक्ति गायत्रीकी दस मालाएँ नित्य जपता है, वह केवल तीन ही वर्षमें भारी-से-भारी पापसे छूट जाता है।

साधकको तो भगवान्‌को रिझाना है, फिर भजनमें प्रेम और आदरकी कमी क्यों करनी चाहिये ?

संसारसे तरनेके लिये भगवान्‌का भजन ही मुख्य है। भजनके पीछे सारे गुण आप ही आ जाते हैं। भगवान्‌के नामका जप तो सभीको करना चाहिये।

मनुष्यको प्रायः प्रतिदिन २१६०० श्वास आते हैं, इसलिये इतने नामोंका जप तो प्रतिदिन अवश्य ही कर लेना चाहिये।

परम दयालु, परम सुहृद्, परम प्रेमी, परम उदार, विज्ञानानन्दमय, नित्य, चेतन, अनन्त, शान्त, सर्वशक्तिमान्, सृष्टिकर्ता परमात्मदेव एक ही हैं, उन्हींको लोग ब्रह्म, विष्णु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, शक्ति, गणेश, अरिहन्त, बुद्ध, अल्लाह, जिहोवा, गॉड आदि अनेक नामोंसे पुकारते हैं। इस भावनासे परमात्माके किसी भी नाम-रूपका स्मरण-पूजन करनेसे जीवका निस्तार हो सकता है।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस षोडश नामवाले मन्त्रका जप सभी जातियोंके स्त्री-पुरुष सब समय कर सकते हैं। यह बहुत ही उपयोगी मन्त्र है। कलि-संतरणोपनिषद्‌में इस मन्त्रका बहुत माहात्म्य बतलाया गया है।

विशेष महत्त्वका भजन वह है, जिसमें ये छः बातें होती हैं—

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

१—जिस मन्त्र या नामका जप हो, उसके अर्थको भी समझते जाना ।

२—भजनसे मनमें किसी प्रकारकी भी लौकिक-पारलौकिक कामना न रखना ।

३—मन्त्रजप या भजनके समय बार-बार शरीरका पुलकित होना, मनमें आनन्द होना, आनन्द न हो तो आनन्दका संकल्प या भावना करनी चाहिये ।

४—यथासाध्य भजन निरन्तर करना ।

५—भजनमें श्रद्धा रखना और उसे सत्कार-बुद्धिसे करना ।

६—जहाँतक हो भजनको गुप्त रखना ।

भगवान्‌का भजन गुप्तरूपसे करना चाहिये, नहीं तो वह कपूरकी भाँति मान-बड़ाईमें उड़ जाता है ।

भगवान्‌का भजन अमृतसे भी बढ़कर है, यह बात कहनेसे समझमें नहीं आ सकती । जिनका भजनमें प्रेम है, वे इस बातका अनुभव करते हैं ।

श्रीभगवान्‌के नाम-जपसे मनकी स्फुरणाएँ रुकती हैं, पापोंका नाश होता है, मनुष्य गिरनेसे बचता है और उसे शान्ति मिलती है ।

नाम-जप ईश्वर-प्राप्तिका सर्वश्रेष्ठ साधन है ।

यज्ञ, दान, तप, सेवा आदि कुछ भी न बन सके तो केवल नाम-जपसे ही भगवान्‌की स्मृति रह सकती है ।

नाम-महिमा सर्वशास्त्रसम्मत है और युक्ति तथा अनुभवसे सिद्ध है । इसीलिये निरन्तर निष्कामभावसे नाम-जपकी चेष्टा करनी चाहिये ।

× × ×

हाथसे माला फेरते हैं, मुँहसे राम-नाम कहते हैं और मनसे संसारके विषयोंका चिन्तन करते हैं, यह तो संसारका भजन है, रामका नहीं ।

भजन-ध्यानके प्रभाव और रहस्यको समझ लेनेपर निद्रा, आलस्य और संसारकी स्फुरणाकी तो बात ही क्या है, खान-पानकी भी चिन्ता नहीं रह सकती । रात-दिन भजन-ध्यानकी ही धुन सवार हो जाती है ।

भजन-ध्यानके प्रभावको जाननेवाले साधकको भगवद्भजनके सिवा और कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती । उसे तो मधुरसे भी मधुर और पवित्रसे भी पवित्र ध्यानसहित हरिका नाम ही मङ्गलमय प्रतीत होता है ।

इस घोर कलिकालमें सुख-साध्य और सर्वोत्तम साधन ध्यानसहित भगवान्‌का भजन ही है ।

संसारमें भजनसे बढ़कर हमारे लिये और कोई भी आवश्यक कार्य नहीं है ।

अहो ! भयंकर कष्ट है, भारी आपत्ति है, जो विषय-रूपी काँचके लिये भजन-ध्यानरूपी अमूल्य रत्नको लोग बिसार रहे हैं ।

उठो, जागो, सावधान होओ और अमृतमय हरिके नाम और गुणोंको कानोंके द्वारा सुनो तथा वाणीके द्वारा उनका कीर्तन करो और मनसे उनके स्वरूपका ध्यान करो । संसारके सम्पूर्ण भोगोंको तृणके समान त्यागकर शरीरसे भगवान्‌की सेवा करो और अपने इस अमूल्य समयका अमूल्य कार्यमें ही उपयोग करो ।

निर्जन-पवित्र एकान्त स्थानमें बैठकर ध्यानसहित भगवान्‌के नामका जप तथा भगवत्-तत्त्वका विचार करो ।

मानसिक जप श्रद्धापूर्वक नित्य-निरन्तर किया जाय तो वह और भी विशेष लाभप्रद हो जाता है । वही जप निष्काम प्रेमभावसे किया जाय तो फिर उसकी महिमाका कोई वर्णन ही नहीं कर सकता ।

श्रद्धापूर्वक प्रेमसे किये हुए केवल जपसे भी इष्टदेवताका साक्षात् दर्शन हो सकता है ।

जपके साथ-साथ ईश्वरके स्वरूपका चिन्तन अवश्य करना चाहिये ।

जपसे सब विघ्नोंका नाश एवं परमात्माके स्वरूपकी प्राप्ति भी हो जाती है ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जपके सात्त्विक, राजस और तामस भेद होनेमें भाव ही प्रधान कारण है ।

श्रद्धा, प्रेम तथा निष्काम-भावसे भगवत्प्रीत्यर्थ किया हुआ जप सात्त्विक समझा जाता है ।

इस लोक और परलोकके भोगोंकी प्राप्तिके लिये एवं मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाके लिये किया हुआ जप राजसिक समझा जाता है ।

दूसरोंके अनिष्टके लिये अज्ञानपूर्वक किया हुआ जप तामसी समझा जाता है ।

कलिसंतरणोपनिषद्में लिखा है कि—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

—इस षोडश नामवाले मन्त्रका साढ़े तीन करोड़ जप करनेसे सब पापोंका नाश होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है ।

'नारायण' शब्दके उच्चारणमात्रसे मनुष्य पापरहित होकर परम अविनाशी गतिको प्राप्त हो जाता है ।

जानकर अथवा बिना जाने भी वासुदेवका कीर्तन करनेसे समस्त पाप जलमें पड़े हुए लवणके समान विनष्ट हो जाते हैं ।

हरिके नामकी महिमाको अर्थवाद नहीं समझना चाहिये । जो कुछ महिमा शास्त्रोंमें लिखी है, वह ध्रुव सत्य है; परंतु श्रद्धा और प्रेमकी कमीके कारण नामका प्रभाव समझमें नहीं आता तथा फल भी पूरा नहीं मिलता ।

ईश्वरकी प्राप्तिके विषयमें जपकी संख्याका नियम सब जगह ठीक-ठीक लागू नहीं पड़ता । प्रेम और श्रद्धा जिसमें जितनी अधिक होती है, उसे उतना ही शीघ्र भगवत्प्राप्ति होती है ।

भगवत्की प्राप्तिके लिये संख्याका ठेका नहीं करना चाहिये । ठेका करनेवाला सच्चा भक्त नहीं है । जो भगवान्की प्राप्तिसे भी बढ़कर भगवान्के प्रेमको एवं भजनको समझता है, वही भगवान्के नामके प्रभावको जाननेवाला सच्चा भक्त है ।

प्रेम और श्रद्धापूर्वक निष्कामभावसे किया हुआ भगवान्का भजन भगवान्से भी बढ़कर है । तब फिर भगवान्से मिलनेके लिये भगवान्के जपकी संख्याका ठेका करना भारी भूल नहीं तो और क्या है ?

राग-द्वेष, ममता और अभिमानको छोड़कर निन्दा-स्तुति और मान-अपमानको समान समझता हुआ जो पुरुष परवा छोड़कर भगवान्के भजन-ध्यानमें मस्त हुआ विचरता है, वही पुरुष मुक्त है ।

श्रद्धा और प्रेमकी कमी होनेके कारण भजनके लिये यथोचित चेष्टा नहीं की जाती । इसीलिये भजन-ध्यान निरन्तर नहीं बनता ।

संसारमें निष्कामभावसे किये हुए भजन-ध्यानके समान भगवत्प्राप्तिका और कोई भी सहज और सुगम उपाय नहीं है । वह होता है सत्पुरुषोंके सङ्ग और सत्-शास्त्रोंके विचार करनेसे । अतएव निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर भजन-ध्यान होनेके लिये सत्पुरुषोंका सङ्ग एवं सत्-शास्त्रोंका विचार तत्पर होकर करना चाहिये ।

यह हमारा शरीर ही क्षेत्र है । इस खेतमें कर्मरूप जैसा बीज बोया जायगा वैसा ही फल उपजेगा । बीज तो परमात्माका प्रेमपूर्वक ध्यानसहित जप है; परंतु जलके बिना यह बीज उग नहीं सकता । वह जल है हरि-कथा और हरि-कृपा, जो संतोंके सङ्गसे ही प्राप्त होती है ।

हम प्रेमपूर्वक भगवान्के ध्यान और जपका बीज बोवेंगे तो फलरूपमें हमें प्रेममय भगवान् ही मिलेंगे ।

साधारण बीज तो धूलिमें पड़कर नष्ट भी हो जाता है, परंतु निष्काम रामनामका वह अमर बीज कभी नष्ट नहीं होता ।

दीवालपर या हृदयपर या प्रभुकी मूर्तिपर मनसे प्रभुके नामको लिखकर चिन्तन करना या मनसे जप करना प्रभुके नामका चिन्तन है ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

क्या नाम-महिमा अर्थवाद है ?

(अनन्तश्री स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज)

[गताङ्क ३ पृष्ठ ५४०से आगे]

आवृत्ति और पापक्षय

अब हम इस निश्चयपर पहुँच गये कि नामकीर्तन ही पापक्षयका हेतु है। तब आवृत्तिका क्या प्रयोजन है ? भूत-पापोंकी निवृत्ति कीर्तनसे और भविष्यमें सम्भव पापोंकी निवृत्ति आवृत्तिसे। आइये, इसपर थोड़ा विचार करें।

श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि यदि प्रायश्चित्त करनेपर भी मन पुनः असन्मार्गमें जाता है तो वह ऐकान्तिक प्रायश्चित्त नहीं हुआ। बार-बार भगवद्-गुणानुवादका कीर्तन अन्तःकरणको आत्यन्तिक रूपसे शुद्ध कर देता है अर्थात् आवृत्ति अत्यन्त शुद्धिका साधन है। यह अत्यन्त शुद्धि क्या है ? वासनासहित पापोंका क्षय। मुमुक्षु अधिकारियोंके लिये 'कर्मबन्ध-निकृन्तन', 'तीर्थपदानुकीर्तन' ही है। जो 'केशवालम्बन' है; उसका यम, यमदूत कोई यातना या कभी अनिष्ट नहीं कर सकते। जहाँ अष्टाक्षर ब्रह्मविद्याकी आवृत्तिका प्रसंग है वहाँ मोक्ष-प्रकरण है और परम शुद्धि ही विवक्षित है; अथवा पूर्वोक्त प्रसंगका यों भी समाधान कर सकते हैं कि एक बार नामोच्चारणसे पाप नष्ट हो गये; परंतु अश्रद्धाके कारण अपनी अपवित्रताका भ्रम दूर नहीं हुआ। ऐसी स्थितिमें दुःखकी निवृत्ति भी नहीं होगी। उसको दूर करनेके लिये पुनः-पुनः आवृत्ति अपेक्षित है। एक यह भी समाधान है कि एक बारके नाम-कीर्तनसे अप्रारब्ध पापका नाश हो जाता है। प्रारब्ध पापके नाशके लिये आवृत्ति-निरूपण है। यही 'सद्यः सद्यः'की संगति है।

मृत्यु और कीर्तन

कुछ लोगोंका ऐसा विचार है कि श्रद्धा-विश्वासके बिना भी नामोच्चारण समस्त पापोंका क्षय कर देता है, परंतु वह केवल मरते समयके नामोच्चारणके सम्बन्धमें ही है। ऐसा कहना भी अविचारित रमणीय है। अजामिलके लिये जहाँ 'म्रियमाण' शब्दका प्रयोग है, वहाँ उत्तरार्द्धपर भी ध्यान दीजिये।

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धया गृणन्॥

वास्तविकता यह है कि यहाँ मरणकालमें नाम लिया जाय—यह अर्थ विवक्षित नहीं है। इस श्लोकमें कैमुत्य-न्यायका प्रयोग है। इसका स्वरूप यह है, जैसे—ये लकड़ी-पत्थर भी पचा सकते हैं तो पूरी-कचौड़ीमें फिर रखा ही क्या है ? ऐसे स्थलोंमें 'भी' शब्दके साथ जो बात कही जाती है वह गौण होती है और जो 'क्या' के साथ बोली जाती है वह मुख्य होती है। यदि इस प्रसंगमें म्रियमाणता विवक्षित होती तो यों कहा जाता कि स्वस्थ पुरुष भी कीर्तनसे ऐसा हो जाता है, तो जो मर रहा है उसके लिये क्या कहना ! परंतु बात ऐसी नहीं कही गयी। अजामिल म्रियमाण था, बेहोश था। श्रद्धाकी सामर्थ्य नहीं थी। पुत्रके प्रति 'हरि' नामका उच्चारण किया, फिर भी कल्याण-भाजन हो गया। फिर जीवन-कालमें श्रद्धाके साथ जान-बूझकर भगवन्नामका उच्चारण हो तो क्या कहना ! यहाँ मृत्युके समय नाम-संकीर्तन करे—यह विवक्षित अर्थ नहीं है। सच पूछें तो अजामिल वास्तवमें म्रियमाण नहीं था, वह तो बादमें भी जीवित रहा। पापक्षय हो जानेसे कल्याणके मार्गमें पड़ गया। मरते समय ही भगवान्का नाम लेना चाहिये।

ऐसा कौन करता है ? ठीक-ठीक मृत्युके समय नामोच्चारण सर्वथा अशक्य है, इसलिये वैसा अर्थ माननेमें अशक्यानुष्ठान-लक्षण अप्रामाण्य भी है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कीर्तन अनुष्ठानसे भिन्न

नामोच्चारणके लिये ग्रहण आदि काल, पर्वतशिखर आदि देश, कुश-ऊर्णा आदि पवित्र आसनोंका जो निर्देश मिलता है, वह विधिपूर्वक अनुष्ठानका अङ्ग है। अनुष्ठान, पुरश्चरण आदिसे मन्त्रोंका संस्कार होता है, अग्न्याधानके समान संस्कार करके लौकिक एवं पारलौकिक फलोंकी प्राप्तिके लिये उनका विनियोग होता है। अतः नामोच्चारणके द्वारा पापक्षयरूप फलकी प्राप्तिमें उनका उपयोग नहीं है।

मानसिक शुद्धि मुमुक्षुके लिये

मनकी एकाग्रता, पवित्रता, मौन, मन्त्रार्थ-चिन्तन आदि नामोच्चारणके लिये अनिवार्य अङ्ग नहीं हैं। उनसे जप-सम्पत्ति होती है। सम्पत्ति सकाम कर्ममें आवश्यक है, पापक्षय तो कीर्तनसे ही हो जाता है।

एक दूसरा समाधान यह भी है कि जप दूसरी वस्तु है और कीर्तन दूसरी। उनकी आवश्यकता जपके लिये है, कीर्तनके लिये नहीं। नाम हृदयको पवित्रता देता है। हृदय पवित्र हो जानेपर ही नामोच्चारण करना चाहिये—यह नियम नहीं है। कीर्तनके प्रसङ्गमें जहाँ-जहाँ नियमका उपदेश मिलता है, वह मोक्ष-साधनका अङ्ग है, पापक्षयार्थ नहीं। जैसे समाधि ज्ञान-द्वारा मोक्षका साधन है, वैसे कीर्तन भी। श्रवणके समान साक्षात् साधन नहीं, किंतु अन्तःकरणशुद्धि-रस प्रति-बन्धका निरास करके साधन है।

कीर्तनसे मोक्षका क्रम

कीर्तनसे पापोंका क्षय होता है। कीर्तनकी आवृत्तिसे भगवद्विषयक वासनाएँ बढ़ती हैं और पाप-वासनाएँ क्षीण होती हैं। संतजनोंकी निरन्तर सेवा होती है। उनके श्रीमुखसे भगवन्महिमाका श्रवण करनेसे पुण्यश्लोक-शिरोमणि भगवान्में समृद्ध नैष्ठिकी भक्तिका उदय होता है। शोकादि उच्छिन्न हो जाते हैं। तत्त्वका परमोत्कर्ष होता है। इसके बाद तत्त्व-साक्षात्कार होकर मुक्ति होती है। यह क्रम श्रीमद्भागवतमें देखा जा सकता है। वेदान्त-श्रवण करनेपर भी प्रतिबन्धवशात् काम न हो तो भक्ति प्रतिबन्धको मिटा देती है। यदि वेदान्त श्रवण न हो तो स्वयं भगवान् देहान्तके समय तत्त्वज्ञानका उपदेश कर देते हैं।

नामकीर्तन वेदोक्त

भगवान्का कीर्तन आदि किसी भी नाम अथवा मन्त्रके द्वारा किया जा सकता है। कीर्तन मुक्तिफलके साक्षात् साधन ज्ञानका हेतु है, यह बात अनेक वेदमन्त्रोंके द्वारा वर्णित नाम-महिमासे भी प्रकट होती है। **'मनामहे', 'विवक्तन'** आदि पदघटित मन्त्रोंका अनुसंधान कीजिये। जहाँ-जहाँ कीर्तनके लिये किसी धर्मका उल्लेख है, वहाँ-वहाँ पापक्षयके लिये नहीं, अमृततत्त्व-साधनके लिये है। यही कारण है कि पुराणोंमें अद्भुत कथाएँ मिलती हैं। एक व्याडि नामका व्याध था। वह स्वयं तो हिंसापरायण था ही, दूसरोंको भी हिंसाके लिये प्रवृत्त करते समय 'आहर' (लूट लाओ), 'प्रहर' (प्रहार करो), 'संहर' (मार डालो)—ऐसा बोला करता था। इस प्रसंगवश किये हुए 'हर' नामोच्चारणसे भी उसके पाप दूर हो गये और दूसरे जन्ममें उसे तत्त्व-ज्ञान हो गया।

नामकीर्तन विधि है

जहाँ विधि होती है वहाँ किस लिये, किसके द्वारा, किस प्रकार कर्म करे? इन सब कर्तव्यताओंका वर्णन होता है। कीर्तनके साथ जब कोई अपेक्षा ही नहीं है, तब विधि कैसे?

इस प्रश्नका उत्तर यह है कि 'सत्य बोले',—'धैर्य रखे'—ये जो विधिवाक्य हैं—इनके साथ किसी अङ्गका उपदेश नहीं है और न तो इनमें अतिदेश ही

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

किया जा सकता है। ऐसी स्थितिमें क्या ये विधिवाक्य नहीं हैं ? अवश्य हैं। इनमें यदि किसी सहायककी अपेक्षा है तो केवल इतनी ही कि जिह्वा, तालु, कण्ठ आदिके संयोगसे नामोच्चारण हो सके। अच्छा, यह तो बताइये कि जैसे कर्म-सम्बन्धी अपूर्व विधियाँ होती हैं, वैसे ही यदि अन्य प्रमाणसे अनवगत यह कीर्तन भी पापक्षयके लिये अपूर्व विधि हो तो क्या आपत्ति है ? बिना किसी बाधाके कीर्तनके द्वारा पापक्षय सिद्ध है। इसपर कोई पर्दा नहीं डाला जा सकता।

प्रत्येक नामकी शक्ति अनन्त

प्रश्न यह है कि भगवान्‌के प्रत्येक नाममें पापक्षयकी इतनी शक्ति है, या सब नामोंको मिलाकर या किसी-किसी विशेष नाममें ? इसका उत्तर यह है कि भगवान्‌के प्रत्येक नाममें ही ऐसी सामर्थ्य है। यह कहना गलत है कि फिर तो नरक-सृष्टि निरर्थक हो जायगी; क्योंकि पूर्वपापका दाह हो जानेपर भी उत्तर-कालिक पापसे अथवा महापुरुषोंके अपमानसे नरककी प्राप्ति होती है। अतः नरकका होना भी सफल रहेगा। राजा भरतकी मृगासक्ति, ऋषभदेवके अनुग्रह और उपासनाके फलमें प्रतिबन्धक हो गयी। ब्रह्मविद् सनकादिकोंका अपमान करनेसे वैकुण्ठवासी जय-विजयका भी अधःपतन हुआ। भगवान्‌ने स्पष्ट कह दिया कि यदि महात्माओंके विपरीत चलें तो मैं अपनी भुजाओंको भी काट सकता हूँ। भगवान् भक्तोंके अधीन हैं—यह प्रसिद्ध ही है। एक चिन्तामणिकी जितनी महिमा है उतनी ही सहस्रों चिन्तामणियोंकी। कल्पवृक्ष और कामधेनुकी गणना अधिक होनेसे उनकी महिमा नहीं बढ़ती। एक-एक भगवन्नामकी महिमा निरंकुश है। निश्चय ही नामापराध भी नामसे ही निवृत्त होते हैं।

स्मार्त प्रायश्चित्त व्यर्थ नहीं

ऐसी स्थितिमें क्या स्मार्त प्रायश्चित्त सर्वथा व्यर्थ है ? इसका उत्तर है—नहीं, वे भी सार्थक हैं। पुराणोंने यह स्वीकार किया है कि तप, दान और व्रतसे पापोंकी निवृत्ति होती है। स्मार्त्त प्रायश्चित्त व्यर्थ तो तब होते, जब कहा जाता कि केवल कीर्तन ही करे, दूसरा कुछ न करे। प्रायः मनुष्योंकी बुद्धि अश्रद्धासे ग्रस्त रहती है, इसलिये संकेत, परिहास आदिके व्याजसे ही उनकी ऐसी प्रवृत्ति हो, ऐसा नियम नहीं किया जा सकता। अतः स्मार्त प्रायश्चित्तके लिये पूरा-पूरा अवकाश है। लोकव्यवहारमें देखा जाता है कि किसीकी प्रवृत्ति सुगम चिकित्सामें होती है और किसीकी कठिन चिकित्सामें। अपनी-अपनी रुचि है। किसी-किसीको स्वभावसे ही सुकर चिकित्सा नहीं रुचती। काष्ठौषधिसे निवर्त्य रोगके लिये भी स्वर्णमणिघटित रसभस्मका ही प्रयोग करते हैं। वस्तुतः दुर्वार-दुर्वासनासे ग्रस्त मनुष्योंके हृदयमें पुरुषोत्तमसे विमुखता ही निवास करती है। वे नाममें प्रवृत्त नहीं हो सकते। उनके लिये स्मार्त प्रायश्चित्त सफल, सार्थक एवं सावकाश हैं।

कीर्तनकी महिमा यथार्थ है

अश्वमेध-यज्ञानुष्ठान और यज्ञका ज्ञान—दोनोंका समान फल कहा गया है। ऐसा भी है कि 'पूर्णाहुतिसे ही कामना-पूर्ति होती है।' यदि इन वचनोंको ज्यों-का-त्यों यथार्थ मान लिया जाय तो कोई कर्मानुष्ठान क्यों करे ? ज्ञान और पूर्णाहुतिसे ही सारा फल मिल गया। अतः इन्हें अर्थवाद मानना पड़ता है; परंतु यह दृष्टान्त देकर नाम-कीर्तनकी महिमाको अर्थवाद नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ज्ञान यज्ञका अङ्ग है। अश्वमेधको जानो, फिर अश्वमेध करो, पहले यज्ञ कर लो, तब पूर्णाहुति करो; परंतु नामकीर्तन न स्मार्त प्रायश्चित्तका अङ्ग है और न नाम-कीर्तनके कारण प्रायश्चित्त व्यर्थ ही होते हैं। अतः नाम-कीर्तनकी महिमा यथार्थ है, अर्थवाद नहीं।

निबन्धका प्रयोजन

अच्छा, अब एक प्रश्नका उत्तर हम चाहते हैं। आपका कहना है कि बिना श्रद्धाके केवल नामकीर्तन-

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मात्रसे ही पापक्षय हो जाता है, यही न ? तो आप यह बतलाइये कि इतना बड़ा निबन्ध लिखनेकी क्या आवश्यकता थी, इससे किस प्रयोजनकी सिद्धि हुई ? आप इसके द्वारा श्रद्धा ही तो सिद्ध कर रहे हैं। फिर तो आ गये मार्गपर, कीर्तनके लिये श्रद्धाकी आवश्यकता है। इसका उत्तर यह है कि यह सच है। नामकीर्तनसे पाप तो दूर हो जाता है; परंतु अश्रद्धाके कारण मानसिक दुःखकी निवृत्ति नहीं होती, अतः अश्रद्धाकी निवृत्तिरूप मानसिक शान्तिके लिये इस निबन्धकी रचना की गयी है। (समाप्त)

मनोबोध

(समर्थ स्वामी रामदासजी महाराज)

[समर्थ गुरु रामदास स्वामीने मराठीभाषामें २०५ श्लोकोंकी रचना की है। ये पद मराठी सत-साहित्यमें 'मनाचे श्लोक' के नामसे विख्यात हैं। इन पदोंमें उन्होंने अपने मनको आध्यात्मिक उपदेश दिया है, आध्यात्मिक दृष्टिसे ये श्लोक साहित्यकी मनोभूमिको संस्कारित करनेमें समर्थ हैं। एक बार कल्याणमें इसके प्रायः १०० के लगभग पद्य पहले भी निकल चुके हैं। [सम्पादक]

गणाधीश जो ईश सर्वां गुणां चा
मुळारंभ आरंभ तो निर्गुणा चा
नमूं शारदा मूळ चत्वार वाचा
नमूं पंथ आनंत या राघवाचा ॥ १ ॥

'जो सब गणोंका स्वामी है और सब गुणोंका भी भण्डार है, जो निर्गुण ब्रह्मका भी मूल आरम्भ स्थान है, उस गणेशको और जो चारों वाणियों—परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरीकी मूल है, उस श्रीशारदाजीको हम नमस्कार करते हैं; जिससे (हमारे लिये) भगवान् श्रीरामजीका (भक्तिमार्ग) पथ सुगम हो।

मना सज्जना भक्ति पंथे चि जा वें
तरी श्रीहरी पाविजें तो स्वभावें
जनीं निन्द्य तें सर्व सोडूनि द्यावें
जनीं वन्द्य तें सर्व भावें करावें ॥ २ ॥

'हे सज्जन-मन ! सदा भक्तिमार्गसे ही जाओ, जिससे भगवान् श्रीहरिको तुम सहज ही प्राप्त कर लोगे। समाजमें जो कर्म निन्दनीय समझे गये हैं, उनका त्याग करना चाहिये तथा जो कर्म प्रशंसित हुए हों उन्हें आदरपूर्वक करना चाहिये।'

प्रभातें मनीं राम चिन्तीत जावा
पुढें वैखरी राम आधीं वदावा
सदाचार हा थोर सांडू नये तो
जनीं तो चि तो मानवी धन्य होतो ॥ ३ ॥

'प्रातःकाल मनमें श्रीरामजीका स्मरण करो। बादमें वाणीसे राम कहो। यह महान् सदाचार कभी न छोड़ना। समाजमें सदाचारी मानवको धन्यता मिलती है। (वह महान्-से-महान् यशका भागी बनता है।)'

मना वासना दुष्ट कामा नये रे
मना सर्वथा पाप बुद्धि नको रे
मना धर्मता नीति सोडूँ नको हो
मना अंतरी सार वीचार राहो ॥ ४ ॥

'हे मन ! इस दुष्ट वासनाका त्याग करो (यह किसी कामकी नहीं), मनमें पापबुद्धि कभी मत रखो। अर्थात् दुर्बुद्धिका सर्वथा नाश करो। स्वधर्मका पालन करते समय नीतिको कभी न छोड़ो। नीतिपूर्वक सारासार विवेकको सदैव धारण करो।'

मना पाप संकल्प सोडूनि द्यावा
मना सत्य संकल्प जीवीं धरावा
मना कल्पना के नको वीषयांची
विकारें घडे हो जनीं सर्व ची ची ॥ ५ ॥

'हे मन ! तुम्हें पाप-संकल्प त्याग देना चाहिये। तथा सत्संकल्पको धारण करना चाहिये। तुम विषयोंकी कल्पनातकका त्याग करो। (विषय-चिन्तन न करो।) विकारोंके रहनेसे (विषयी मनुष्यकी) समाजमें निन्दा होती है। (क्रमशः)

अनुवादिका—कु० रोहिणी गोखले

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पराञ्चि खानि

(महामहोपाध्याय पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी)

इस जगत्के निर्माताने हमारी इन्द्रियोंका निर्माण कुछ इस प्रकार किया है, जिससे वे बहिर्मुख हो गयी हैं। वे आत्मासे विपरीत दिशाकी ओर चलती हैं। आत्माकी स्थिति भीतर है और इन्द्रियाँ बाहर हैं; इसलिये मनुष्य अपने बाहरकी ओर ही देखता है। भीतर क्या-क्या तत्त्व छिपे पड़े हैं, इसे जाननेके लिये उसकी दृष्टि भीतर जाने ही नहीं पाती। आत्मा क्या वस्तु है—यह कोई नहीं देख पाता। अपनी आँखोंको भीतरकी ओर परावर्तित करनेवाला धीर पुरुष ही आत्मतत्त्व आदि भीतरके तत्त्वोंका दर्शन करनेमें समर्थ होता है। वह सदा भीतरका ही विचार करता है। वह अमृतका अभिलाषी मरणधर्मा संसारसे अपनेको बिरत करना चाहता है। चर्मचक्षु तो देखेगा बाहरकी ओर ही, किंतु उसके विचारकी शृङ्खला इस तरह चल पड़ेगी कि आँखकी यह वृत्ति बनी कैसे? आँख वस्तुको देखती है, मन उस वस्तुके साथ सम्बन्ध जोड़ता है, बुद्धिके हिस्सेमें आता है यह निश्चय करना कि यह लेने योग्य है या न लेने योग्य। इन वृत्तियोंका उद्भव, विकास और विलय, उक्त विचार-प्रक्रियासे धीर पुरुषसे छिपा नहीं रह सकता। अन्ततः वह अपने स्वरूपको इस प्रकार समझेगा कि मैं तो केवल दर्शक हूँ, ये सभी क्रीड़ाएँ तो केवल प्रकृतिकी ही चल रही हैं। आत्म-चैतन्यसे प्रकृतिकी इस पृथक् पहचानके बाद ही पुरुषके सामनेसे प्रकृति अपनी क्रीड़ाओंका जाल हटा लेती है। सांख्यकारिकाकी एक सुन्दर कारिका स्मरणीय है—

प्रकृतेः सुकुमारतरं न किंचिदस्तीति मे मतिर्भवति।
यद् द्रष्टास्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य॥

प्राचीन भारतकी सुकुमार नारियाँ अपने अङ्गोंको सर्वथा ढँककर ही निकलती थीं, प्रयत्न करती थीं कि उनके शरीरका किसी भी भागपर किसीकी नजर न पड़ जाय। यदि किसीने उनके किसी अङ्गको कभी देख लिया तो उसके सामने वह फिर कभी आती ही नहीं थीं कि उसने हमें देख लिया, हम अब उसके सामने होकर कैसे जायँ? वही बात प्रकृतिके लिये भी यहाँ कही गयी है कि पुरुष अपनेसे अलग प्रकृतिको यदि एक बार भी देख ले तो सुकुमारताके अतिशयके कारण फिर वह पुरुषके सामने जाती ही नहीं है।

संसारमें दो प्रकारके तत्त्व देखे जाते हैं——अमृत और मृत। जो सर्वदा स्थिर रहनेवाला है, वह अमृत है, जो अस्थिर विनाशशील है, वह मृत है। इसी मृत, अस्थिर, विनाशशील तत्त्वपर अपनी विचार-दृष्टिको केन्द्रित कर बौद्ध विचारकोंने **'क्षणिकम् क्षणिकम्'** की घोषणा कर डाली; परंतु वैदिक अनुशीलन-कर्त्ताओंने स्थिर अविनाशी तत्त्वको पकड़ा। सभी मरणशील पदार्थोंमें अमृत-तत्त्व अनुस्यूत है। वही आत्मा शब्दसे कहा जाता है। सत्-चित्-आनन्द-रूपसे वह सर्वत्र व्याप्त है। सत्का अनुवाद होगा 'है'——'अस्तित्व'। वह कभी नहीं बदलता। 'जल है,' 'कमल है,' 'है' कहाँ नहीं है। 'नहीं है' में भी 'है' लगा रहता है। परिवर्तनशीलमें अपरिवर्तित तत्त्व उपस्थित है। ऐसे ही तत्त्वका अन्वेषक स्वयंको अमृत-की ओर ले चलता है। **'अमृतस्य पुत्राः'**की घोषणाका भी यही रहस्य है।

श्रीमद्भागवतका जडभरतका दृष्टान्त स्मरणीय है कि एक ब्रह्मर्षिके घरमें जन्म ग्रहण करनेवाले जडभरत पूर्वजन्मके ज्ञानसे नित्यतृप्त और कामना-रहित होकर इतस्ततः विचरण किया करते थे। किसी समय

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

राजाकी पालकी उठानेके लिये जोत दिये गये। उस पालकी उठानेका अभ्यास था नहीं, वह डगमगाने लगी। राजाने डाँट बतलायी—'देखनेमें हृष्ट-पुष्ट लगता है, परंतु ठीकसे पालकी नहीं ढोता।' उत्तरमें जड भरत बोले—'राजन्! तुम्हारी पालकी मैं कहाँ ढो रहा हूँ, पालकी कंधेपर है, मैं कंधा तो हूँ नहीं, कंधा पैरपर है, मैं पैर भी नहीं हूँ, पैर पृथ्वीपर है, मैं पृथ्वी भी नहीं हूँ। ये सारे चरित्र तो प्रकृतिके हैं, मैं तो स्वतन्त्र हूँ, देख रहा हूँ इन लीलाओंको।' राजाने पालकीसे उतरकर प्रणाम किया, उपदेश प्राप्त किया।

प्रकृतिका ही सब कुछ कारबार है, आत्मा निर्लिप्त है, यह जान लेनेपर द्रष्टा प्रकृतिके क्रिया-कलापोंसे उदासीन हो जाता है। उपनिषद् कहती है—

'आवृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्'

आँखोंको भीतरकी ओर आवृत्त करो तो मालूम होने लगेगा कि मन, शरीर, इन्द्रियाँ ही सब काम करती हैं, मैं तो इनकी लीलाओंका दर्शकमात्र हूँ, इतना अभ्यास होते ही, राग-द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह एक झटकेमें अलग हो जाते हैं। बस, यही अमरताका द्वार है।

जो अपनेको विद्वान् और पण्डित समझते हुए भी बाहरी पदार्थोंके लिये व्याकुल रहते हैं, उपनिषद्ने उन्हें बालककी संज्ञा दी है—

'पराचः कामाननुयन्ति बालाः'

बाहरकी कामनाएँ तो मृत्युके पाश हैं। इनमें अपने भीतर नित्य-स्थित आनन्दकी खोज करना कस्तूरी-मृगकी उपमाको चरितार्थ करता है। वह बेचारा अज्ञानवश गन्धकी तृष्णामें, जो उसीके शरीरमें है, चारों ओर भटकता फिरता है। अन्तःकरणकी वृत्तिके जरा स्थिर होते ही उसपर आत्माका प्रतिबिम्ब पड़ता है, तभी उस आनन्दका अनुभव होने लगता है, जिसके लिये मनुष्य व्याकुल है। उसको बहिर्मुख व्यक्ति बाहरसे आया हुआ ही मानता है। बाहरके नश्वर परिवर्तनशील पदार्थोंमें अविनश्वर आत्म-तत्त्वको पहचानना ही बुद्धिकी सार्थकता है।

वर्तमान विज्ञान आत्माके अभावकी घोषणा करता हुआ कहता है कि यदि ऐसा कोई तत्त्व होता तो वह यन्त्रोंकी पकड़में जरूर आता। विज्ञानकी यान्त्रिक प्रक्रियासे उपलब्ध सभी तत्त्वोंका विश्लेषण कर लिया गया है। हमारे मस्तिष्कके तन्तु जब पदार्थोंके सम्पर्कसे प्रज्वलित होते हैं तभी हमें ज्ञान होता जाता है। इसमें अदृश्य आत्माकी क्या आवश्यकता। यह कोई संदेह नया वैज्ञानिकोंके द्वारा नहीं उठाया जा रहा है। इसका उत्तर यह है कि एक मस्तिष्क तन्तुके प्रज्वलनसे आप एक ज्ञान प्राप्त कर लेंगे, परंतु दो वस्तुओंकी अच्छाई-बुराई आदिका परस्पर अन्तर कैसे जाना जायगा। एक-एक तन्तुके प्रज्वलनसे तो एक ही वस्तु ज्ञात हो सकेगी। परंतु उन सबको जाननेके बाद अच्छा-बुरा, कोमल-कठोर, सुगन्ध-दुर्गन्ध आदि भेदोंका ज्ञान कहाँसे आयेगा?

इसका समाधान बिना चेतन-तत्त्वकी जड़ नियामतको स्वीकार किये हो ही नहीं सकता। जाग्रत्-अवस्थामें स्वप्नावस्थाके मिथ्या होनेका बोध होता है। भगवत्कृपासे यदि जाग्रत्-अवस्थामें एक और जाग्रत्-अवस्था मिल जाय तो यह भी मिथ्या ही सिद्ध हो सकती है। उसीका प्रयत्न उपनिषद्-शास्त्रके द्वारा उपदिष्ट होता है। अवयवोंके प्रकम्पनको ही दुःख या शोक कहा जाता है। आत्मा तो निरवयव है, अतः वहाँ दुःख और शोकका सर्वथा अभाव है। उस आनन्दसमुद्रमें लीन होनेवाला भी आनन्दरूप ही हो जाता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भगवान्‌के दिव्य श्रीविग्रहके दर्शन—६

(नित्य लीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

कर्म आलस्यसे अच्छा है। परंतु कर्मका आधार यदि केवल कर्म है तो वह बन्धनका कारण है। केवल यथार्थ कर्म मुक्तिका देनेवाला है। कर्मका आधार भगवान्‌को होना चाहिये। कर्मका आधार भगवान् तभी हो सकते हैं जब सब समय भगवान्‌का स्मरण होता रहे—**'योगस्थः कुरु कर्माणि'** तथा फलमें भी भगवान् हों—**'मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा'**। इसके अतिरिक्त मनुष्यको वे ही कर्म करने चाहिये जो भगवान्‌के स्मरणमें सहायक हों; चाहे वे लौकिक दृष्टिसे कितने ही नीच अथवा राजसिक ही क्यों न हों। इसके विपरीत जो कर्म सात्त्विक होनेपर भी हमारी केवल कर्ममें आसक्ति बढ़ाता है, वह त्याज्य है। सत्य, अहिंसा आदिके व्रत भी यदि भगवान्‌से शून्य हैं तो उनसे काम नहीं बनेगा। **'सर्वधर्मान् परित्यज्य'** इन्हीं धर्मोंके सम्बन्धमें लागू होता है। भगवान्‌से शून्य ऊँचे-से-ऊँचा काम भी नीचा है। इसी प्रकार भगवत्सेवाके रूपमें यदि झाड़ू लगानेका काम भी किया जाय तो वह बहुत ऊँचा है। यदि निरन्तर भजन होता रहे तो फिर यदि कर्म छूट भी जाय तो कोई हानि नहीं। उस समय समझना चाहिये कि कर्म आज सफल हो गये। उनका काम पूरा हो गया; क्योंकि कर्मोंका फल भगवान्‌का भजन ही है। मनुष्य प्रपञ्चमें इतना फँसा हुआ रहता है कि वह यह समझता है कि मेरे बिना अमुक कार्य होगा ही नहीं, घरवालोंका पालन-पोषण कौन करेगा? किंतु जबतक शरीर स्वस्थ है तबतक भजन कर लेना चाहिये, फिर मृत्यु आ जानेपर बात हाथकी न रहेगी। शरीर रुग्ण हो जानेपर भी हम कुछ नहीं कर सकते। फिर पछतानेसे कुछ काम नहीं चलेगा। हमें प्रतिपल अपने उद्देश्यको सँभालते रहना चाहिये और देखते रहना चाहिये कि हम ठीक रास्ते—भगवान्‌के रास्तेपर हैं या नहीं।

दूसरी बात यह है कि किसीको छोटा न समझें, किसीका अपमान न करें, किसीका जी न दुखायें, किसीको कुछ सतावें नहीं, किसीका अहित न करें। कोई प्राणी घृणाका पात्र नहीं है, चाहे वह पापी हो, शत्रु हो, चाहे हमें दुख देनेवाला हो। अपने रामको, अपने कृष्णको सर्वत्र देखना चाहिये। उन्हें सारे जगत्‌में आत्मारूपसे सर्वत्र देखना चाहिये। वर्णाश्रमके अनुसार कर्म करना अच्छा है, परंतु अपनेसे छोटे अपने नौकरको भी छोटा मानना और उससे घृणा करना बड़ा पाप है।

श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रके वर्ण, प्रकाश और सुगन्धके सम्बन्धमें कुछ बातें हो चुकी हैं। देखें, भगवान्‌के अङ्गका ऐसा सौन्दर्य है कि उसका वर्णन हो ही नहीं सकता; क्योंकि जगत्‌का सारा सौन्दर्य उसके सौन्दर्यका एक कणमात्र है। उनके अङ्गका सौन्दर्य ऐसा आकर्षक है कि देवता, ऋषि, मुनिलोगोंके मनको भी मोहित कर लेता है। सनकादिकोंने भगवान्‌के चरणोंमें की हुई तुलसीकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा कि हम भी इसीके सदृश हो जायँ; क्योंकि ये चरणोंकी गन्ध लेनेसे तृप्त नहीं होतीं।

भगवान्‌के आभूषण भी भगवान्‌के अङ्ग ही हैं, क्योंकि ये सब चेतन हैं, सत् हैं और सुगंधपूर्ण हैं। पहले मुरलीकी बात ही कर लें। मुरली बड़ी आकर्षक है। उसका स्वर जिसके कानोंमें पड़ जाता है वही मोहित हो जाता है। कहते हैं कि जिस समय वृन्दावनमें शरद्पूर्णिमाकी रात्रिमें भगवान्‌की मुरली

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बजी उस समय सब लोकोंमें जाकर उस ध्वनिने सबको मुग्ध कर दिया। ब्रह्मा, शिव आदिक मुग्ध हो गये और सबकी तो बात ही क्या है, केवल गोपिकाएँ ही नहीं खिचीं, किंतु सब-के-सब खिंच गये। गोपिकाओंको सशरीर उस स्थानपर पहुँचनेका अधिकार था, अन्य सबको देखनेमात्रका ही। चन्द्रमा, नक्षत्रादि सबकी क्रिया ६-६ महीनेतक बन्द हो गयी। किसीको पता भी नहीं लगा कि कितना समय बीत गया। इन सबका कारण थी मुरलीकी ध्वनि। जितने सूखे तरु-पल्लव थे उनमेंसे रस झरने लगा। जितने वहाँ प्राणी थे, अचल हो गये। जिस बछड़ेने गायके स्तनको मुँहमें ले रखा था, उसका दुग्ध-पान करना बन्द होकर ज्यों-का-त्यों स्तब्ध हो गया। जिस मयूरने आँख खोल रखी थी उसकी पलक नहीं पड़ी। इस प्रकार उस ध्वनिका असर हुआ। प्रकृतिका कर्म भी बन्द हो गया। सम्पूर्ण गोलोक वहाँ उतर आया। मुरलीने जिन-जिनको आह्वान किया उन सबकी क्रिया बन्द होकर जैसे थीं उसी अवस्थामें दौड़ पड़ीं, किसीको कुछ भी संकेत नहीं कर सकीं। किसीके हाथमें ग्रास था तो कोई नेत्रोंमें अंजन दे रही थी, कोई वस्त्र या आभूषण पहन रहीं थी, उसे वैसे ही बीचमें छोड़कर दौड़ चली। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि जब श्रीभगवान्‌का आह्वान होता है तब कोई रुक नहीं सकता। उस मुरलीकी ध्वनिने प्रेमका प्रवाह बहा दिया—**'तदनङ्गवर्धनम्'**। किंतु यह काम अन्य है—यह भी भगवान्‌के मिलनेकी आकांक्षाका काम है। जैसे श्रीभगवान्‌की सब वस्तुएँ नित्य हैं उसी प्रकार मुरली आदि भगवान्‌की सब वस्तुएँ नित्य हैं। वह मुरली जिस बाँसकी थी वह बाँस बननेकी आकांक्षा गोपियोंने की। दूसरे तो भगवान्‌से मिलना चाहते हैं, किंतु मुरलीको भगवान् ही छोड़ नहीं सकते। मुरलीके समान आत्मसमर्पण किसीका नहीं है। यह आध्यात्मिक विवेचन है। उसने अपने सब अङ्गको पोला बना दिया था। जैसा स्वर भगवान् उसमें भरते वैसे ही वह बजती। उसने अपना सम्पूर्ण अहंकार त्याग दिया था। उसे किसी प्रकारकी चाह नहीं थी। मुरलीके अंदर अपना कुछ रहा ही नहीं। जो अपने सम्पूर्ण आचरणोंको भगवान्‌के अर्पण कर देता है, सम्पूर्ण हृदय भगवान्‌के लिये खाली कर देता है, उसीके हृदयमें भगवान् अपना आसन जमा लेते हैं। यह काम-बीज है जो यह 'क्लीं' शब्द है; वह मुरलीका रूपान्तर है। जो सारा-का-सारा भगवान्‌के लिये चाहता है वह भगवान्‌का प्रेम है। भगवान्‌के स्वरकी महिमा नहीं कही जा सकती। कोयलके बच्चे आदिकोंके सारे-के-सारे स्वर उसके कणमात्र हैं। भगवान्‌का स्वर अति सुरीला है, किंतु उस मुरलीका स्वर अति ही विलक्षण है। उसमें केवल माधुर्य रस है, अन्य स्वरोंमें सब प्रकारके रस हैं जैसे **'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धः'** यह स्वर सुनकर अर्जुन काँप गया। जो इस मुरलीका स्वर सुननेके अधिकारी हैं उन्हींके कानोंमें वह स्वर सुनायी देता है। मुरली वृन्दावनमें ही बजती है। जहाँ माधुर्य रस रहता है वहीं मुरली बजती है। पाञ्चजन्य कुरुक्षेत्रमें बजता है, पर मुरली वहाँ नहीं बजती। एक कवि कहता है—एक दिनके १०-११ बजेका समय था। भगवान् व्रजसे लौटकर घरकी तरफ आये। हमेशा तो सन्ध्या-समय आते थे—आज भोजन करनेके समय आ गये। यह मुरलीका शब्द सुनकर एक गोपी कहती है—

'मुरहररन्धनसमये मा कुरु मुरलीरवं मधुरम्'

....कि इस समय इसे तो न बजाया करो; क्योंकि इसकी आवाज सुनकर सूखी लकड़ीमेंसे भी पानी चूने लगा, जिससे आग बुझ गयी।

व्रजमें एक नयी गोपी आयी—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां..........................।'

(गीता १०। ९-१०)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

—ये सब बातें गोपिकाओंमें चरितार्थ हुई थीं।

'या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप······कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने।'

उस नयी आयी हुई गोपीसे सास, ननद, अड़ोस-पड़ोसकी सब स्त्रियाँ पूछती हैं कि तूने श्यामसुन्दरको देखा था नहीं। उसने कहा—क्या उसमें अनोखी बात है। मैंने गाँवके बहुत-से बालक देखे हैं। जब श्यामसुन्दर सन्ध्या-समय लौटे उस समय वह नवीन गोपी दीपक जला रही थी। उसके कानमें मुरलीकी मीठी आवाज आयी, जिसे सुनकर वह बेसुध हो गयी। दीपककी जगह उसकी अँगुली जलने लगी, जिसकी भी उसे सुधि ही नहीं। यह स्वर 'श्रवण-मङ्गल' है। उससे तृप्ति नहीं है। अर्जुनने भी गीतामें ऐसा ही कहा था। मुरलीका स्वर बड़ा मधुर होता है। जितना निर्मल स्वर मुरलीके द्वारा होता है उतना अन्यका नहीं। यह तो मुरलीके स्वरकी महिमा है। आज स्वयं उस मुरलीकी क्या महिमा है कि उसके एक क्षणके वियोगको भगवान् सह नहीं सकते। जिसको भगवान्‌के हाथका स्पर्श प्राप्त है उसकी भी कोई महिमा कही नहीं जा सकती। तब जो मुरली श्रीभगवान्‌के अधर ओष्ठोंका रसास्वाद-पान करती थी, उसकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है। यह भगवान्‌के संयोगकी महिमा है। गोपियाँ भी मुरली बननेके लिये तरसती रहीं, किंतु बन न सकीं।

मुरलीमेंसे प्रेम और ज्ञान दो प्रकारके स्वर निकलते हैं। जो प्रेमके अधिकारी नहीं हैं उन्हें ज्ञानका स्वर दबा लेता है। एक समयकी बात है—ऋषिलोग वनमें यज्ञ कर रहे थे, भगवान्‌ने मुरली बजायी, किंतु ऋषिलोग उसे न सुन सके। उनकी पत्नियोंको वह स्वर सुनायी पड़ा; क्योंकि वे प्रेमकी अधिकारिणी थीं। जब ये स्त्रियाँ भगवान्‌से मिलकर आयीं तब वे ऋषिलोग इन्हें देखकर अपनेको धिक्कार देने लगे।

'धिक्कुलं धिक्क्रियादीलम्—'

भगवान् जैसी ध्वनि निकालना चाहते हैं वैसी ही निकलती है, जिसे सुनाना चाहते हैं उसे सुनायी देती है। सामवेद भगवान्‌का ज्ञान-गान है, जिसकी रचना हुई। किंतु भगवान्‌के प्रेम-गानकी रचना नहीं हो सकती। मुरलीका बड़ा साहित्य है। संस्कृत और हिन्दीके कवियोंने मुरलीपर बहुत लिखा है।

सूरने 'मुरली ! कौन तप तू कियो', 'मुरली तौउ गोपालहि भावति।' आदि अनेक पद रचे हैं।

—समाप्त

'प्रभु मनमें मुसुकाई'

या सिसुके गुन-नाम-बड़ाई।
को कहि सकै, सुनहु नरपति, श्रीपति समान प्रभुताई॥ १॥
जद्यपि बुधि, बय, रूप, सील, गुन समै चारु चार्‍यो भाई।
तदपि लोक-लोचन-चकोर-ससि राम भगत-सुखदाई॥ २॥
सुर, नर, मुनि करि अभय दनुज हति, हरहि, धरनि गरुआई।
कीरति बिमल बिस्व-अघमोचनि रहिहि सकल जग छाई॥ ३॥
याके चरन-सरोज कपट तजि जे भजिहैं मन लाई।
ते कुल जुगल सहित तरिहैं भव, यह न कछू अधिकाई॥ ४॥
सुनि गुरबचन पुलक मन दंपति, हरष न हृदय समाई।
तुलसिदास अवलोकि मातु मुख प्रभु मनमें मुसुकाई॥ ५॥

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भजनकी आवश्यकता

(एक संतका प्रसाद)

प्र०—भजन करनेसे क्या लाभ है ?

उ०—भजनसे प्रेमस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति होती है ।

प्र०—भजन न करनेसे क्या हानि है ?

उ०—भजन न करनेसे विषयोंकी प्राप्ति होगी । विषय अनित्य हैं, अतः उनके नाश होनेपर उसके कारण दुःख होगा ।

हम अवगुणी हैं, दीन हैं, दुखिया हैं—ऐसी भावनाओंको दूर करनेके लिये भी भजन करना आवश्यक है ।

प्र०—महाराजजी ! संसारमें बहुत पाप होने लगा है । उद्धार कैसे होगा ?

उ०—भैया ! जो तुम्हारे लाला करेंगे वही होगा । तुम क्यों फिक्र करते हो ? जिसने इस संसारको बनाया है वह स्वयं इसकी चिन्ता कर लेगा । तुम्हें तो अपने लालाका भजन करते रहना चाहिये ।

प्र०—भजन करनेमें सञ्चितकर्म बाधा देते हैं या नहीं ?

उ०—भजन करनेके लिये दृढ़ताकी आवश्यकता है । दृढ संकल्प हुए बिना तो सभी बाधा देते हैं । उनमें भी कुसंगके समान और कोई बाधा नहीं देता । सञ्चितकर्म इसमें कोई बाधा नहीं दे सकता । यह तो भजन न करनेवालेको ही बाधा दे सकता है । सत्संग, सच्छास्त्रविचार और भजनसे सञ्चितकर्म दब जाते हैं । भक्तोंके जीवन-चरित्र पढ़नेसे भजनमें जितनी रुचि बढ़ेगी उतनी भगवान्के चरित्रोंसे भी नहीं होगी । भक्तोंने भगवान्को प्रकट किया है, इसलिये भक्त भगवान्से भी बढ़कर हैं । भक्तोंके गुणोंका गान भगवद्गुणगानसे भी बढ़कर है । स्वल्प पुण्यवालोंको भगवान्के प्रसाद, नाम-गुणगान, भक्तचरित्र और भगवद्विग्रहमें प्रीति नहीं होती । जिसका भक्तोंमें प्रेम हो गया वह तो भगवान्के प्रेमका अधिकारी हो ही गया ।

प्र०—क्या भक्तको फिर मनुष्यजन्म मिलेगा ?

उ०—वह मनुष्योचित कर्म करेगा तो मनुष्यजन्म मिलेगा ।

एक व्यक्ति श्रीराधावल्लभजीका उपासक था । उसे कभी संनिपात हो गया । उसमें भी वह श्रीराधा-कृष्ण-सम्बन्धी पद ही गाता रहा । दूसरा एक ठेकेदार था । उसे भी सन्निपात हुआ । उसमें वह 'अरे ! कंकड़ कूटो । मजदूरोंको बुलाओ' यही कहता रहा । उसे भगवन्नाम लेनेको कहा गया, परंतु वह ले न सका । इसीसे कहा है—**'सदा तद्भावभावितः ।'**

प्र०—मनुष्य-जीवनका प्रधान लक्ष्य क्या होना चाहिये ?

उ०—मननशीलको मनुष्य कहते हैं । उसके दो लक्ष्य होने चाहिये—एक ईश्वरप्रेम और दूसरा शास्त्रोक्त व्यवहार ।

प्र०—सत्संग करते रहनेपर भी वैराग्य क्यों नहीं होता ?

उ०—वैराग्य होनेका कारण है—भगवान्में आसक्ति होना और वह होती है भगवान्के भजनसे । सत्संग भी एक प्रकारका भजन ही है । इसके दृढ अभ्याससे भगवान्में आसक्ति होनेपर वैराग्य होगा ।

प्र०—भजन और वेदान्तमें क्या भेद है ?

उ०—भेदकी बात मत पूछो । बस, भजन करते जाओ ।

✻

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्र०—क्या भजनमें वेदान्त बाधक है ?

उ०—भगवान्‌को पानेके अनेक मार्ग हैं। उनमें भगवान् श्रीकृष्णको पानेका मार्ग तो है भजन और ज्ञान-प्राप्तिका साधन है वेदान्त। इनमेंसे किसी एक ही मार्गको अनन्यभावसे पकड़ना चाहिये। तभी सफलता होगी।

प्र०—भजन बनता नहीं।

उ०—इसलिये नहीं बनता कि उसमें आसक्ति नहीं है।

प्र०—भजनमें आसक्ति कैसे हो ?

उ०—लगातार भजन करनेसे ही भजनमें आसक्ति होगी। जो भजन न करके यों ही प्रेम पाना चाहते हैं वे तो मूर्ख हैं।

प्र०—क्या करें, सांसारिक भोगोंकी आसक्ति बनी हुई है, इससे भजनमें मन नहीं लगता। यह विषयोंकी आसक्ति कैसे हटे ?

उ०—लोहा लोहेसे कटता है। अतः आसक्तिसे ही आसक्ति दूर होगी। जिसकी संसारमें बहुत आसक्ति है उसको अपनी वह आसक्ति भगवान्‌में लगा देनी चाहिये। फिर ज्यों-ज्यों भगवान्‌में आसक्तिकी बढ़ती होगी त्यों-त्यों ही संसारकी आसक्ति घटती जायगी। तब तो आपसे आप ही भजन होने लगेगा। और वह भजन ऐसा होगा कि उसका एक कण भी बहुतेरे पापियोंको पवित्र कर देगा।

प्र०—महाराजजी ! उपासनामें रुचि कैसे हो ?

उ०—उपासना करनेसे ही उपासनामें रुचि हो सकती है। जिसका जो इष्ट हो, उसे निरन्तर उसीका चिन्तन करते रहना चाहिये। हम जिसकी निरन्तर भावना करेंगे वह वस्तु हमें अवश्य प्राप्त हो जायगी। उपासक तो एक नयी सृष्टि पैदा कर लेता है। इस प्राकृत संसारसे उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता।

प्र०—भगवन् ! ऐसी दिव्य दृष्टि कैसे प्राप्त हो ?

उ०—वह तो भगवद्भजनसे ही प्राप्त हो सकती है। इससे अष्टसिद्धि और निर्विकल्प समाधि भी प्राप्त हो सकती है। ऐसे महानुभावोंको ही दिव्य वृन्दावनके दर्शन होते हैं। साधारण बुद्धिवाले उसे कैसे देख सकते हैं ? भक्तोंकी तो सृष्टि ही अलग होती है।

प्र०—उनकी सृष्टि कैसी होती है ?

उ०—जिसमें निरन्तर रास हो रहा है।

उ०—वह कैसे दीखे ?

प्र०—जो इस दुनियासे अंधे हैं; उन्हें ही वह रास दिखायी देता है।

× × ×

१—शास्त्रमें कहा है—'यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्' अर्थात् जिस दिन वैराग्य हो उसी दिन विरक्त होकर चला जाय।' इसलिये यदि कोई भजन तथा ब्रह्मचर्यपालनमें विरोध करे तो उसकी बात नहीं माननी चाहिये।

२—प्रारम्भमें यदि कोई दम्भसे भी भजन करता हो तो भी उसका विरोध नहीं करना चाहिये; क्योंकि साधुसंग निरन्तर होनेसे धीरे-धीरे उसका दम्भ छूट जायगा और वास्तविक भजन होने लगेगा। इसलिये भजन न करनेकी अपेक्षा दम्भसे भी भजन करनेवाला अच्छा है। भजनकी नकल भी करना उत्तम है; क्योंकि वह भजन-नकलची सच्चे भजनमें भी लग सकता है।

भायँ कुभाय अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

३—भगवद्दर्शनकी इतनी चिन्ता न करे, भगवच्चिन्तनकी अधिक चिन्ता करे। किसी भी प्रकार परमात्माकी शरणमें जानेसे माया छूट सकती है। जबतक हम और परमात्मा दोनों रहते हैं, तबतक तल्लीनता नहीं लाती।

४—दुनियाका चिन्तन करते हुए तुम ज्ञानी या भक्त बनना चाहो तो यह त्रिकालमें भी नहीं हो

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सकता । भगवन्नाम इसीलिये अखण्ड रूपसे जपा जाता है, जिससे दुनियाका चिन्तन न हो । गुरु नानकदेव कहते हैं—

अलिफ अल्लाहहु याद कर, गफलत मनो बिसार ।
स्वासा पलटै नाम बिनु, धिग जीवन संसार ॥

५–ज्ञान और भक्ति क्या कोई खेलकी चीजें हैं ? ज्ञानी और भक्तको दुनियाकी बातें करनेकी फुर्सत कहाँ होती है । केवल आवारा आदमी ही दूसरोंकी निन्दा या स्तुति किया करते हैं ।

६–जिसको संसारमें दुःख मालूम होता है, वही उससे छूटनेकी चेष्टा करता है; क्योंकि हम ऐसा नित्य-सुख चाहते हैं जिसमें दुःखका लेश भी न हो ।

७–चित्तमें निरन्तर भगवान्‌का चिन्तन रहना चाहिये । वैराग्यकी स्थिति भी चिन्तनसे ही रह सकती है । यदि चित्त चिन्तनसे खाली होगा तो मोहमें फँसेगा, मोह न भी हुआ तो तमोगुण ही बढ़ जायगा । किंतु भगवच्चिन्तन रहेगा तो मोह, काम या तमोगुण किसीका प्रभाव नहीं पड़ेगा । अतः——

घर में बाहर पंथ में कहूँ रहे यह देह ।
तुलसी सीताराम सों, लाग्यो रहै सनेह ॥

८–आज-कल कोई ठीक तरहसे भजन नहीं करता । जैसा भजन किया जाता है, उससे कोई सिद्धि नहीं हो सकती । यदि विधिवत् भजन किया जाय तो फौरन लाभ होगा । देखो, एक बार क्रोध करनेसे एक मासका भजन नष्ट हो जाता है । यदि एक सालमें बारह बार क्रोध आ जाय, तो सोचो कि कितना भजन बाकी रहा !

९–जिसको विषयमें दुःख प्रतीत होता है, वही भजन कर सकता है । जिसे विषयानन्दकी चाट लगी है उससे भजन नहीं हो सकता ।

१०–यदि तुम भगवान्‌को प्राप्त करना चाहते हो, तो भजन करो ।

११–निर्बलता बलवान्‌का सहारा लिये बिना नहीं जाती, इसलिये सबसे बड़े बलवान्‌का सहारा लेना चाहिये । सबसे बड़े बलवान् तो भगवान् ही हैं । अतः उन्हींका सहारा लेना उचित है ।

१२–हमारे पापोंका कुछ ठिकाना है ? न जाने चौरासी लाख योनियोंमें कितने पाप किये हैं । फिर तुम जो समझते हो कि चार दिन भगवन्नाम लेनेसे ही आनन्द आ जाय, यह कैसे हो सकता है ? इतने पाप कैसे नष्ट होंगे ? हाँ, भजन करते रहनेसे धीरे-धीरे सब नष्ट हो जायँगे ।

१३–भगवान्‌के स्मरण-चिन्तनमें इतना बल है कि वह अभय-पदकी प्राप्ति करा देता है । भगवान्‌का स्मरण करके दुष्ट-से-दुष्ट प्रकृतिका मनुष्य भी अपना उद्धार कर सकता है ।

१५–केवल श्रद्धा की और भजन न किया तो कुछ भी नहीं होगा । श्रद्धाके साथ-साथ भजन भी अवश्य करो । मान लो, तुम्हारी श्रद्धा तो दान करनेकी है, परंतु करते नहीं हो तो उससे क्या होगा ? इसलिये काम तभी चलेगा जब श्रद्धा भी हो और भजन भी ।

१५–भगवान्‌के भजनसे चार बातोंकी प्राप्ति होती है—

(१) भगवान्‌के ऐश्वर्यका अनुभव ।

(२) तात्कालिक अर्थात् दृष्ट दुःखका अभाव ।

(३) रजोगुण-तमोगुणका अभाव और

(४) आनन्दकी प्राप्ति अर्थात् जन्म-मरणका अभाव ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

साधकोंके प्रति—

[एक निश्चयकी महिमा]

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

भोग और ऐश्वर्यमें आसक्त रहनेवाले पुरुषोंका ऐसा निश्चय भी नहीं होता कि हमें परमात्माकी प्राप्ति करनी है, फिर उन्हें तत्त्वकी प्राप्ति होना तो बहुत दूरकी बात है—

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥
(गीता २ । ४४)

यत्न करते हुए भी वे इस परमात्मतत्त्वको नहीं जान सकते—**'यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥'** (गीता १५ । ११) कबतक ? जबतक कि भोग और संग्रहमें आसक्ति है अर्थात् जबतक सांसारिक पदार्थोंसे सुख लेते रहें और रुपयोंका संग्रह बना रहे—ये भावनाएँ भीतरमें बनी हैं, तबतक परमात्म-तत्त्वको स्पर्श नहीं कर सकते और परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति ही करना है—ऐसा उनका निश्चय भी नहीं हो सकता। कारण कि उनके हृदयमें परमात्माके स्थानपर धन और भोग आकर बैठ गये हैं। 'सुख भोगना है और सुख-भोगके लिये संग्रहकी आवश्यकता है'—यह संग्रह और भोगकी रुचि बहुत घातक है। धनका उपयोग अपने और औरोंके निर्वाहके लिये खर्च करनेमें है और धनका संग्रह तो केवल पतन करनेवाला है। संग्रह करनेकी जो रुचि है कि मेरे पास इतनी वस्तुएँ हो जायँ, इतने रुपये हो जायँ—यह बहुत ही बाधक है।

रुपयों और पदार्थोंके संग्रहकी रुचिकी तो बात ही क्या है। पढ़ाई करके ज्ञान अधिक संग्रह कर लूँ, बहुत पढ़ाई कर लूँ, बहुत शास्त्र पढ़ लूँ, इस प्रकार पढ़ाईके संग्रहकी भावना जबतक रहेगी, तबतक मनुष्य परमात्म-तत्त्वको जान नहीं सकता और उसकी प्राप्तिके विषयमें निश्चय भी नहीं कर सकता। जो अपना कल्याण चाहता है, उसकी बुद्धि एक ही होती है, उसका एक ही निश्चय होता है कि 'हमें तो परमात्मतत्त्वको ही प्राप्त करना है और यही हमारे जीवनका ध्येय है।'

जिनका ऐसा एक निश्चय नहीं है, जो संसारके भोग और संग्रहमें आसक्त हैं, उनकी बहुत बुद्धियाँ होती हैं और वे बुद्धियाँ भी अनन्त शाखाओंवाली होती हैं अर्थात् उनकी बुद्धियाँ भी अनन्त होती हैं और एक-एक बुद्धिकी शाखा भी अनन्त होती है। जैसे—पुत्र मिले, यह एक बुद्धि हुई और पुत्र-प्राप्तिके लिये किस औषधका सेवन करें। किस मन्त्रका अथवा किस जप आदिका अनुष्ठान करें अथवा किस संतका आशीर्वाद लें अथवा और कहाँकी यात्रा करें, जिससे पुत्रकी प्राप्ति हो। तात्पर्य यह है कि पुत्रकी प्राप्ति, यह तो एक बुद्धि हुई और उसकी प्राप्तिके अनेक उपाय उस बुद्धिकी अनन्त शाखाएँ हुईं। इसी तरह धनकी प्राप्ति एक बुद्धि हुई और उसकी प्राप्तिके लिये व्यापार करना, नौकरी करना, चोरी करना, डाका डालना, ठगाई करना, धोखा देना आदि उस बुद्धिकी अनन्त शाखाएँ हुईं। ऐसे पुरुषोंका परमात्माकी प्राप्तिका निश्चय नहीं हो सकता।

गीताजीमें भगवान्‌ने परमात्माकी प्राप्ति-विषयक एक निश्चयकी बड़ी भारी महिमा गायी है। इतनी विलक्षण महिमा बतायी है कि जिसकी महिमा कही नहीं जा सकती। **'अपि चेत्सुदुराचारः'**—साङ्गोपाङ्ग दुराचारी, जिसके दुराचरणमें कोई कमी नहीं है। जो झूठ, कपट, बेईमानी, अभक्ष्य-भक्षण, वेश्या-गमन, जूआ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

खेलना, चोरी, व्यभिचार आदि जितने दुराचार सम्भव हैं, सब करनेवाला है। ऐसा पुरुष भी यदि परमात्माकी ओर ही चलनेका निश्चय कर ले तो भगवान् कहते हैं कि उसको साधु ही मानना चाहिये—**'साधुरेव स मन्तव्यः'**।

ऐसे दुराचारीको साधु क्यों मानना चाहिये? भगवान् आज्ञा देते हैं कि उसको साधु ही मानना चाहिये; क्योंकि **'सम्यग्व्यवसितो हि सः'** (गीता ९। ३०) 'उसने परमात्माकी प्राप्तिका एक निश्चय कर लिया है।' अब उस निश्चयके अनुसार उसका जीवन धार्मिक हो जायगा। उसका एक लक्ष्य बन गया, एक ध्येय बन गया कि अब कुछ भी हो जाय, एक भगवत्प्राप्ति ही करनी है। ऐसे पुरुषको **'सम्यग्व्यवसितो हि सः'** (जिसने अपने जीवनका लक्ष्य भलीभाँति निश्चित कर लिया है) कहते हैं।

एक प्रश्न उठता है कि भोग और ऐश्वर्यके संग्रहमें जो आसक्त हैं, उनका तो परमात्माकी प्राप्तिका निश्चय नहीं हो सकता और पापी-से-पापी भी ऐसा निश्चय कर सकता है—इन दोनों बातोंमें विरोध प्रतीत होता है। बात ठीक है। इसीलिये **'अपि चेत्'** पद श्लोकमें आये हैं। साधारणतया पापी लोगोंकी भजनमें रुचि नहीं होती—**'न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।'** (गीता ७। १५)। पापी लोग मेरा भजन नहीं करते, यह सामान्य बात है; परंतु यदि पापी भी भजनका निश्चय कर ले, तो इस निश्चयके आधारपर उसे साधु ही मानना चाहिये। भगवान्ने ऐसा कहा है।

बात यह है कि पाप करनेकी भावना रहते हुए ऐसा निश्चय नहीं होता, यह ठीक है, परंतु जीवमात्र भगवान्का अंश है और तत्त्वतः निर्दोष है। संसारकी आसक्तिके कारण उसमें दोष आये हैं। यदि उसके मनमें पापोंसे घृणा होकर किसी तरह यह जँच जाय कि भगवान्का भजन ही श्रेष्ठ है, तो वह बहुत शीघ्र धर्मात्मा बन जाता है।

मनुष्यमें जहाँ संसारकी कामना है, वहीं उसमें भगवान्की ओर चलनेकी रुचि भी है। यदि भगवान्को प्राप्त करनेकी रुचि जम जाय, तो फिर कामना नष्ट होकर भगवत्प्राप्तिमें देरी नहीं लग सकती। यह मानवके विवेककी महिमा है। यह सत्य है कि प्रायः पापियोंका ऐसा निश्चय हुआ नहीं करता; परंतु ऐसा नहीं है कि पापी ऐसा निश्चय नहीं कर सकते। महान्-से-महान् पापी अपना उद्धार कर सकता है। जबतक मृत्युकाल नहीं आया है, तबतक इस मनुष्यमें यह शक्ति है कि वह भगवत्प्राप्तिका निश्चय कर सकता है; परंतु भोगोंका, धनका महत्त्व हृदयमें रहते हुए परमात्माकी प्राप्तिका निश्चय नहीं कर सकता।

यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि किये हुए पाप मनुष्यको भगवान्की ओर जानेमें नहीं रोक रहे हैं। इसी तरह सांसारिक पदार्थ भी भगवान्की ओर जानेमें नहीं रोक रहे हैं; परंतु वर्तमानमें भोगोंका जो महत्त्व अन्तःकरणमें बैठा हुआ है, वह बाधा दे रहा है। भोग उतना नहीं अटकाते, जितना भोगोंका महत्त्व अटकाता है। अटकानेमें आपकी रुचि—नीयत प्रधान है। पापीने पाप बहुत किये; परंतु अब उसकी रुचि—नीयत पाप करनेकी नहीं रही। अब उसने निश्चय कर लिया कि एक परमात्माकी प्राप्ति ही करनी है। इसलिये उसे 'धर्मात्मा' बनते देर नहीं लगती, परमात्माकी प्राप्ति होनेमें देरी नहीं लगती; क्योंकि मनुष्य स्वयं परमात्माका अंश है।

यदि भोग और संग्रहकी रुचिको रखते हुए परमात्माकी प्राप्ति करना चाहें तो परमात्माकी प्राप्ति तो दूर रही, उनकी प्राप्तिका एक निश्चय भी नहीं हो सकता। कारण कि जहाँ भोगोंकी रुचि है, वहीं

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परमात्माकी रुचि है। रुचि जबतक भोग-संग्रहमें है, मान, बड़ाई, आराममें है, तबतक कोई भी परमात्मामें नहीं लग सकता; क्योंकि उसका चित्त भोगोंकी रुचि-द्वारा हरा गया। जो शक्ति थी, वह भोग और ऐश्वर्यमें लग गयी। भोग और संग्रहमें मनुष्यको मिलेगा कुछ नहीं, प्रत्युत वह परमात्माकी प्राप्तिसे वञ्चित रह जायगा। धोखा हो जायगा धोखा! मान-बड़ाई कितने दिन रहेगी? मान-बड़ाई मिलकर भी क्या निहाल करेगी? भोग कितने दिन भोगेंगे? संग्रह कितने दिन रहेगा? यहाँ खूब धन इकट्ठा किया, पर यदि आज आयु समाप्त हो गयी तो आज ही मर जाओगे, धन यहीं रह जायगा और परमात्माकी प्राप्तिसे वञ्चित रह जाओगे।

इसलिये भगवान्‌के कहनेका अभिप्राय यह है कि यदि परमात्माकी प्राप्ति वास्तवमें चाहते हो, तो भोग और संग्रहको महत्त्व मत दो। आजकल तो खर्चके लिये ही रुपयोंका महत्त्व नहीं, अपितु उनकी संख्याको महत्त्व दे रहे हैं। हम लखपति हो जायँ, हमारे पास इतना संग्रह हो जाय। पासमें रुपया है पर उसे खानेमें खर्च नहीं कर सकते, अच्छे काममें खर्च नहीं कर सकते। केवल एक धुन धन जोड़नेकी लगी हुई है—'संख्या कम न हो जाय।' मूलधनमें कम-से-कम एक लाख रुपया तो इस साल जमा हो जाय, ऐसी रुचि रहती है। लड़कोंको उपदेश देते हैं कि 'रुपया जोड़ो! जोड़ो नहीं, तो कमाओ, उतना खाओ! मूल पूँजी खर्च करते हो? तुममें बुद्धि नहीं है।' मूल खर्च करते दुःख होता है तो मूलमें क्या तूली लगाओगे? खर्च नहीं करोगे तो क्या करोगे?

सज्जनो! यह संग्रहकी वृत्ति नरकोंमें ले जानेवाली है। माँ-बाप बूढ़े हो जाते हैं तो वे लड़कोंको समझाते हैं कि 'तुमलोग बुद्धिहीन हो। मूलधन खर्च करते हो? इस मूलधनको मत छेड़ो। जितना कमाओ' उतना खर्च कर लो, पर मूलधन कम मत करो।' ऐसे पुरुष परमात्माकी प्राप्ति कर ही नहीं सकते। साधु हो, गृहस्थ हो, पढ़ा-लिखा हो, मूर्ख हो, पण्डित हो, भाई हो, चाहे बहन हो, जबतक संग्रह करनेकी तथा संग्रह बना रहे—यह रुचि रहेगी, तबतक वे परमात्माकी प्राप्तिके मार्गमें नहीं चल सकते। यदि आपके भीतर और संग्रहकी रुचि नहीं है तो आपके पास चाहे लाखों-करोड़ों रुपये हैं, पर वे आपको अटका नहीं सकते। बैंकोंमें बहुत धन पड़ा है, शहरमें बहुत मकान हैं; पर वे हमें नहीं अटकाते। क्यों नहीं अटकाते? क्योंकि उनमें हमारी ममता नहीं है तथा उनकी प्राप्तिकी इच्छा नहीं है। यदि उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छा हो जायगी तो उनमें हम फँस जायँगे।

हमारा बन्धन कहाँ है? जितने धनमें हमने ममता की है, वही तो बाँधनेवाला है। संसारमात्रसे हमारी मुक्ति स्वतः है। दस-बीस आदमियोंको जिन्हें हमने अपना मान रखा है। वही बन्धन है। लाख दो लाख रुपयोंको हमने अपना मान रखा है, मकानको अपना मान रखा है, वही फँसावट है। हमने जिन्हें अपना नहीं माना है, वे मनुष्य मर जायँ, उन्हें कुछ भी हो जाय, तो हमारे चित्तपर कुछ असर नहीं पड़ता। जिन मकानोंको हमने अपना नहीं माना, वे सब-के-सब धराशायी हो जायँ तो हमपर कोई असर नहीं पड़ता। जिन रुपयोंको हमने अपना नहीं माना, वे चले जायँ लाखों-करोड़ोंकी उथल-पुथल हो जाय तो हमपर कोई असर नहीं पड़ता; क्योंकि उनमें हम बँधे हुए नहीं हैं। सारे संसारसे आपको बन्धन नहीं है। आपने इन थोड़ोंको जो अपना मान रखा है, यदि इनकी ममताका भी आप त्याग कर दें तो निहाल हो जायँगे। अधिक बन्धन नहीं है। अधिक-सा बन्धन तो टूटा हुआ है ही अर्थात् जिनमें आपकी ममता नहीं, उनसे आप

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मुक्त हैं ही। जिनमें आप ममता करते हैं, उनमें आप बँध जाते हैं।

मनुष्योंमें ऐसी ही चाल है कि वे अधिक व्यक्तियोंमें, पदार्थोंमें ममता करना चाहते हैं। वक्ता भी चाहता है कि श्रोता अधिक आ जायँ। यदि ऐसी इच्छा नहीं रखेंगे तो फँसेंगे कैसे? वे भी फँसनेकी तैयारी करते रहते हैं। इसी प्रकार अन्य लोग भी अपने-अपने क्षेत्रमें अधिक-से-अधिक भोग मिल जाय—यह चाहते रहते हैं, पर अधिक चाहनेसे मिलता नहीं। यदि मिल जाय तो टिकेगा नहीं और वह यदि टिकेगा भी, तो आप नहीं टिक सकेंगे। इस तरह आप फँसे ही रहेंगे, मरनेके बाद भी आप छूट सकेंगे नहीं।

मैं-मैं बुरी बलाय है, सको तो निकसो भाग।
कब तक निबाहे रामजी, रुई लपेटी आग॥

जैसे रुईमें लपेटी आग कितने दिन ठहरेगी? वह तो जलायेगी ही। ऐसे ही जिन पदार्थोंमें 'मैं और मेरापन' करते हो, वे कितने दिन ठहरेंगे? आप सम्बन्ध रखेंगे तो बँध ही जायँगे। इसलिये प्रत्येक भाई-बहनके लिये बहुत आवश्यक है कि वह संसारके भोगोंको और उनके संग्रहकी इच्छाको भीतरसे त्याग दें।

भीतरसे पदार्थोंकी इच्छा छोड़ देनेपर पदार्थ प्रारब्धानुसार स्वतः आते हैं। चाहनासे पदार्थोंके मिलनेमें आड़ लगती है। अपनी चाहनाका त्याग होनेसे आपकी आवश्यकता सर्वत्र फैलती है। लोगोंके मनमें आपकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये स्वतः प्रेरणा होती है। हमारे चाहना रखते हुए हमारी इच्छा हममें सीमित हो जाती है और मिलनेमें आड़ लग जाती है। चाहना रखते हुए जब हमें धन, मकान मिलता है तब हम अपनेको सफल मानते हैं; चाहनाका त्याग कर देनेपर वस्तुएँ खुली आयेंगी और हमारी सेवामें लगकर सफल होंगी।

परमात्म-तत्त्वमें नित्य-निरन्तर स्थिति चाहते हैं तो उत्पत्ति-विनाशवाली वस्तुओंका आकर्षण सर्वथा मिटाइये। उत्पन्न और नष्ट होनेवाली वस्तुओंमें फँसे रहेंगे, तो अनुत्पन्न तत्त्व नहीं मिलेगा। सदा साथमें रहता हुआ परमात्मा नहीं मिलेगा। उससे वञ्चित रह जायँगे। भोग और संग्रहकी रुचि रखेंगे तो परमात्मासे वञ्चित रहनेके सिवाय अन्य कुछ लाभ नहीं होगा। धन भी नहीं मिलेगा। यदि मिलेगा भी तो रहेगा नहीं। न भोग मिलेंगे। यदि मिलेंगे तो वे रहेंगे नहीं और न आप रहेंगे। केवल आपको जन्म-मरणमें डालनेवाला, नरकोंमें ले जानेवाला बन्धन रहेगा। इसलिये भोग और संग्रहकी इच्छा सर्वथा त्याग दें।

आप अपने पास धन रखें, इसमें मेरा विरोध नहीं है, पर आप जो उसके गुलाम बनते हैं, उससे मेरा विरोध है। न्याययुक्त कमाते हुए लाख रुपया आ जाय तो मौज, लाख चला जाय तो मौज! लाखों-करोड़ों आ जायँ तो वही प्रसन्नता; सब-के-सब चले जायँ तो भी आपको वही प्रसन्नता। तब तो आप वास्तवमें धनपति हैं। पर धन आनेसे तो हो जायँ प्रसन्न और चले जानेसे रोने लग जायँ तो आप धनदास हुए, धनपति नहीं हुए। रुपये जानेसे रोना-ही-रोना आ रहा है—हमारा मालिक (धन) चला गया, अब कैसे रहें? उससे पूछा जाय कि क्या चला गया भाई? अरे, जिसने कमाया था, वह तो मौजूद है? परंतु बात बुद्धिमें नहीं आती; क्योंकि उसने धनको अपना इष्टदेव मान रखा है। जिन्होंने धनको इष्टदेव मान रखा है, उन्हें झूठ, कपट, बेईमानी, धोखेबाजीका आश्रय लेना पड़ता है। उनके मनमें दृढ़तासे यह भाव जम जाता है कि झूठ, कपट, जालसाजी, बेईमानी, ठगी, ब्लैकमार्केट किये विना पैसे पैदा नहीं हो सकते। जैसे भगवान्‌का भक्त सद्गुणोंका सहारा लेता है, ऐसे ही

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

धनके भक्तको झूठ, कपट, छल, ठगी आदि दुर्गुणोंका सहारा लेना ही पड़ता है। कोई कितनी सच्ची बात कहे, पर उन्हें यही बात जँची हुई है कि झूठ, कपट, चोरी बिना पैसा पैदा नहीं हो सकता। ब्रह्माजीकी भी शक्ति नहीं, जो उन्हें समझा दें। कोई उन्हें ठीक बात समझावे तो उसे वे मूर्ख समझते हैं कि आजके जमानेमें झूठ, कपट, बेईमानी, अन्याय बिना काम कैसे चल सकता है?' यह दृढ़ धारणा उनके मनमें बैठ गयी है। इसलिये यदि आपको परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति करनी है तो धन आदि पदार्थोंके भोग और संग्रहकी आशाका सर्वथा त्याग करना ही पड़ेगा।

भोग और संग्रहकी रुचि रखते हुए तत्त्वकी प्राप्ति, उसकी अनुभूति सम्भव नहीं। आजकल भगवत्तत्त्वकी बातें शीघ्र समझमें न आनेका मुख्य कारण यही है कि 'भोग और संग्रहकी रुचि छोड़ते नहीं और सच्चे हृदयसे इस रुचिको छोड़ना चाहते नहीं। इस रुचिको त्यागे बिना परमात्मतत्त्वकी बातें समझमें आतीं नहीं।'

नारायण! नारायण! नारायण!

श्रीकृष्ण-नाम-जपयोग-साधना

[नाम, रूप, गुण, लीला और धामके संदर्भमें]

(लेखक—डॉ० श्रीसत्यपालजी गोयल, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, आयुर्वेदरत्न)

युगानुरूप साधन, विधि तथा विचारोंमें परिवर्तनकी एक शाश्वत परम्परा है। जिन कार्योंको सत्ययुगमें मन्त्र-शक्तिसे सम्पन्न कर लिया जाता था उनमेंसे कुछेक कार्योंको कलियुगमें यन्त्रोंके माध्यमसे पूर्णकर सुख-सुविधाएँ सुलभ की जा रही हैं। यद्यपि कलियुगमें यन्त्रोंद्वारा साधन-सुविधाएँ सुलभ हो रही हैं, किंतु सत्ययुगमें मन्त्र-शक्तिसे संचालित क्रियाओंकी तुलनामें यान्त्रिक सुख-सुविधाएँ गुणात्मक दृष्टिसे उतनी उपादेय तथा नित्यानन्दप्रदायक नहीं हैं। उनसे केवल भौतिक शरीरकी ही संतुष्टि सम्भव है, आध्यात्मिक नहीं; जबकि मन्त्रोंद्वारा सम्बन्धित देवताका आह्वान कर जीवनको सार्थक करना सम्भव था। यान्त्रिक सुविधाओंसे मनुष्योंकी आत्मशक्ति, चिन्तनशक्ति तथा चारित्रिक शक्तिका ह्रास हुआ है। शुचिता, सात्त्विकता, सदाशयता तथा परस्पर दयाभावका हनन हुआ है।

त्रेतामें यज्ञोंद्वारा उत्पन्न सुगन्धित तरंगोंद्वारा वातावरण सौम्य एवं शुद्ध रहता था जिससे मानवकी काया निरोग तथा दीर्घायु रहती थी। ऋतु-परिवर्तन अपने निर्धारित समयपर तथा संतुलित रहता था, जबकि यान्त्रिक युगमें वायु-प्रदूषण, जल-प्रदूषण, ध्वनि-प्रदूषण तथा वैचारिक प्रदूषणोंसे अनेक प्रकारके रोग, मानसिक असंतुलन तथा प्राणियोंकी आयुक्षीण, शारीरिक अशक्तता एवं आकार शीघ्रता—सत्ययुग, त्रेता तथा द्वापरयुगकी तुलनामें बढ़ गया है।

परम्परागत चिंतन, व्यवस्था तथा साधनोंके अभावने मानव-मनको संकुल-क्षुब्ध तथा असमर्थ बना दिया है। भौतिकवादी चिंतन जीवनकी प्रत्येक विधापर प्रभाशील हो गया है। कुतर्क और आशंकाओंने डेरा जमा लिया है। जिस प्रकार भौतिक पदार्थोंकी स्थिति, गति तथा लय स्थायी नहीं है उसी प्रकार भौतिकवादी चिंतन कालचक्रकी धारामें आध्यात्मिक चिंतनकी तुलनामें पंगु रह जायगा। वैसे वह पंगु तो अब भी है, परंतु प्रकटरूपसे जो भास रहा है, वह भी अनित्य शरीरोंकी तरह नष्ट हो जायगा। फिर तो शाश्वत मान्यताएँ विश्वके प्रत्येक मानवके हृदयमें पुनः स्थापित हो जायँगी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

युगानुरूप भक्तिका साधन

सनातन धर्मसे सम्बन्धित भक्तिधर्म-ग्रन्थोंमें भगवान्‌को प्राप्त करनेके अनेक साधनोंकी व्यवस्था है, परंतु प्रधानरूपसे सतयुगमें ध्यान अर्थात् तप त्रेतामें यज्ञकर्म, द्वापरमें अर्चन तथा कलियुगमें हरिनाम-संकीर्तन ही भक्तिके प्रधान साधन मान्य हैं; यथा—

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

इसी प्रकार अन्यत्र भी उल्लेख मिलता है कि भगवन्नामका स्मरण, मनन, और चिन्तन ही कलियुगमें भवसागरसे पार होनेका एकमात्र साधन है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

भक्तवर गोस्वामी तुलसीदासजीने भी श्रीरामचरितमानसमें अनेक प्रसङ्गोंमें नामस्मरणको महत्त्व दिया है—

कलिजुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा॥
जपहि नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥

भगवान् गोविन्दके नामका स्मरण तो इतना प्रभावपूर्ण कहा गया है कि उसकी तुलनामें करोड़ों गायोंका दान, काशी, प्रयाग तथा गङ्गाके किनारे कल्पवास, पर्वताकार पिण्डका दान तथा हजारों यज्ञ भी नगण्य हैं—

गोकोटिदानं ग्रहणेषु काशी-
प्रयागगङ्गाऽयुतकल्पवासः।
यज्ञाऽयुतं कोटिसुवर्णदानम्
गोविन्दनाम्ना न कदापि तुल्यम्॥

भगवान् विष्णुने भी अपने मुखारविन्दसे अपने नामोंका कीर्तन करनेवाले भक्तोंके मध्य अपने निवास करनेका उल्लेख किया है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

भगवान्‌का नाम ही कलियुगमें भगवान्‌के दर्शन, भवसागरसे पार होने तथा भौतिक दुःखोंसे त्राण पानेका एकमेव साधन है। इस सम्बन्धमें अनेक प्रमाण धर्म एवं भक्ति-ग्रन्थोंमें सुलभ हैं।

अतएव कठोर तपस्याओंका विचार त्यागकर प्रत्येक साधकको नामजपका आश्रय ग्रहण कर भगवान् श्रीकृष्णकी विशुद्ध भक्तिकी ओर पूर्ण समर्पण-भावसे आकृष्ट होना चाहिये।

जपका प्रकार

परम संतोंद्वारा तीन प्रकारके जप (मानसिक, उपांशु तथा वाचिक) बतलाये गये हैं। तीनों प्रकारके जपोंका साधना-भेदसे अलग-अलग महत्त्व है। यदि किसी मन्त्रकी सिद्धि तो वाचिक जपसे उपांशु जप सौ गुणा श्रेष्ठ है तथा उपांशु जपसे मानसिक जप हजार गुणा श्रेष्ठ है। मन्त्र-सिद्धि स्वान्तःसुखाय होती है, जिसमें मनकी एकाग्रता अत्यन्त आवश्यक होती है; पर यदि मन चंचल रहता है तो जीव (साधक) समाधिकी अवस्था प्राप्त नहीं कर सकता। और परान्तःसुखाय जाप करना है तो मानसिक जपसे उपांशु जप सौ गुणा तथा उपांशुसे वाचिक जप हजार गुणा श्रेष्ठ होता है; क्योंकि वाचिक जपमें भगवन्नाम अन्य प्राणियोंके कर्णविवरोंमें प्रवेश करता है, जिससे उनका कल्याण भी साधित होता है। साधनाके क्षेत्रमें आध्यात्मिक दृष्टिसे यही परान्तःसुखाय कहा जाता है। इसीको कीर्तन कहते हैं।

वाचिक जपमें उच्चारण इतना जोरसे किया जाता है कि वायु-मण्डलमें तरंगित स्वर अन्य प्राणियोंतक पहुँच सकें। उपांशु जपमें साधकके मुखसे प्रस्फुटित होनेवाला स्वर अधिकतम साधकके स्वयंके कर्ण-विवरोंमें ही जाता है अर्थात् भगवन्नामका उच्चारण स्पष्ट तथा शुद्धरूपसे होता है; जबकि मानसिक जपमें नामका उच्चारण श्वसन क्रियाके साथ बिना अधर स्पंदनके मनमें ही स्मरण (जप) करना पड़ता है। इस

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रकारकी स्थिति समाधि (योग) अवस्थाके लिये अधिक बल प्रदान करती है ।

मानसिक नाम-जपमें श्वास तथा आन्तरिक ध्वनि-रहित उच्चारणकी गति जितनी ही कम तथा लय-युक्त होगी, मनकी तल्लीनता उतनी ही अधिक होगी । साधक योगावस्थामें अपने इष्टके लीला विधानमें उतना ही अधिक प्रवेशकर भगवान्का साक्षात्कार करेगा । मानसिक जपमें उठनेवाली तरंगें रेडियो तथा टेलीविजनकी तरंगोंसे भी अधिक सूक्ष्म होती हैं जो निरंतर साधकके इष्टसे टकराकर उसके हृदयमें साधकके आह्वानकी सूचना देती है ।

साधन सिद्धिके लिये एकाग्रता अनिवार्य है । जिस प्रकार आतशी काचके ऊपर सूर्यकी किरणें पड़नेपर एकत्रित किरणें काष्ठ, कागज या किसी भी पदार्थको जलानेमें समर्थ रहती है, उसी प्रकार एकाग्र मनसे कृष्णनामजपसे साधकमें अद्भुत आध्यात्मशक्ति जाग्रत् होने लगती है, भगवान्से साक्षात्कार होने लगता है—ऐसी तपोनिष्ठ महर्षियोंकी प्रत्यक्ष अनुभूति है ।

प्राणायाम

मनकी एकाग्रताके लिये साधकको मन्त्र-जाप प्रारम्भ करनेसे पूर्व प्रतिदिन नाडी-शुद्धि तथा आत्म-शुद्धिके लिये प्राणायाम अवश्य करना चाहिये । प्राणायाम-क्रियामें शरीरपर किसी प्रकारका बल-प्रयोग नहीं करना चाहिये । वायु यन्त्रोंपर अनावश्यक दबाव नहीं पड़ना चाहिये । साधकको प्राणायामकी सम्पूर्ण क्रिया-स्थितिमें आगे लिखे हुए महामन्त्रका जाप मंद गतिसे करते रहना चाहिये ।

—क्रमशः

कण-कणमें भगवान्—वैज्ञानिक दृष्टिकोण

(लेखक—श्रीरामस्वरूपजी शर्मा)

भगवान्को किसी परिभाषाकी सीमामें बाँधकर पारिभाषित करना असम्भव है । गीताके दसवें अध्यायके दूसरे श्लोकमें भगवान्ने स्वयं अर्जुनसे कहा है कि मेरे प्रकट होनेको न देवता जानते हैं और न महर्षि; क्योंकि मैं सब प्रकारसे देवताओं और महर्षियोंका आदि अर्थात् महाकारण हूँ ।

जब देवता और महर्षि ही भगवान्के सही रूप व गुणोंको जाननेमें समर्थ नहीं हैं तो मनुष्यद्वारा सब जान लेना कैसे सम्भव हो सकेगा ? कुछ महर्षियों, संतों एवं भक्तोंको भगवान्के अंशोंकी अनुभूतियाँ भिन्न-भिन्न रूपोंमें हो सकीं तथा उन्होंने अपनी-अपनी अनुभूतियोंके अनुसार भगवान्के रूप व गुणोंके बारेमें भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रतिपादन किये । भगवान्के रूप एवं गुणोंके बारेमें हर धर्म, सम्प्रदाय, समुदाय व व्यक्तिके विचारोंमें भिन्नता रहनेका मुख्य कारण यही है । भिन्नता होते हुए भी इस तथ्यको प्रायः सभी धर्म, सम्प्रदाय आदि स्वीकार करते हैं कि दृष्टिगोचर होनेवाले चर एवं अचर संसारके ऊपर कोई एक असीमित तथा सर्वव्यापी शक्ति अवश्य है जो सबको नियन्त्रित करती है । साररूपमें यह कहा जा सकता है कि असीम व चैतन्य शक्तिका समुच्चय ही भगवान् है जो सर्वव्यापी हैं तथा सृष्टिके कण-कणमें व्याप्त है ।

आजका युग विज्ञान-प्रधान है तथा जबतक किसी बातकी पुष्टि विज्ञानद्वारा नहीं हो पाती तबतक लोग ऐसे प्रतिपादनोंको माननेको तैयार नहीं होते—यद्यपि अध्यात्म और विज्ञान दोनोंके कार्य-क्षेत्र अलग-अलग हैं तथा तुलनामें विज्ञान अभी बहुत छोटा बच्चा है । अध्यात्मका क्षेत्र आत्मा है जो दिव्य (सूक्ष्म) है ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भगवान् (शक्ति) भी सूक्ष्म है। सूक्ष्मके अध्ययनके लिये तत्त्वज्ञानियोंकी सूक्ष्म दृष्टि ही समर्थ हो सकती है, न कि भौतिक दृष्टि। अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णको अपना दिव्यरूप दिखलानेकी प्रार्थना की। भगवान्ने गीताके ग्यारहवें अध्यायके श्लोक ५, ६, ७में चार बार 'पश्य' पदका प्रयोग कर अर्जुनको उनका दिव्य रूप देखनेकी आज्ञा दी, किंतु वह कुछ नहीं देख सके। इसपर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको दिव्य चक्षु प्रदान किये और देखनेकी आज्ञा दी; जैसा कि निम्न श्लोकसे प्रकट होता है—

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥
(गीता ११। ८)

'तू अपनी इन आँखोंसे अर्थात् चक्षुओंसे मुझको नहीं देख सकता। इस हेतु मैं तुझे दिव्य चक्षु देता हूँ, जिससे तू मेरी ईश्वरीय सामर्थ्यको देख सकोगे।

वैज्ञानिक भी अब इस बातको स्वीकार करने लगे हैं कि जड़के अतिरिक्त चेतन शक्तिका पृथक् अस्तित्व है जो भौतिक क्षेत्रसे परे है। इस शक्तिकी खोज करनेके लिये विज्ञान भी अपना कार्यक्षेत्र बदल रहा है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलिवर लॉजका कथन है कि 'मुझे विश्वास है कि अब वह समय निकट आ गया है, जब कि विज्ञानको नये क्षेत्रमें प्रवेश करना होगा। विज्ञान अब भौतिक जगत्तक ही सीमित नहीं रहेगा। चेतना-जगत् भी अब वैज्ञानिक प्रयोग-परीक्षणका महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है। बीसवीं सदीके महान् वैज्ञानिक अलबर्ट आईन्सटीनकी मान्यता भी इसी प्रकारकी है कि 'मैं ईश्वरको मानता हूँ। इस अविज्ञात सृष्टिके अद्भुत रहस्योंमें ईश्वरीय शक्ति ही परिलक्षित होती है।' अब विज्ञान भी इस बातका समर्थन कर रहा है कि सम्पूर्ण सृष्टिका नियमन एक अदृश्य चेतनसत्ता कर रही है। रसायन शास्त्री डॉ० थमल डेबिड पार्क्स भी अपने जीवनके अनुभवोंको इस प्रकार प्रतिपादित करते हैं—'मेरे चारों ओर जितना भी दृश्य जगत् है उसमें नियम एवं प्रयोजन देखता हूँ। मुझे यह मान्यता निराधार जान पड़ती है कि सभी पदार्थ एवं पदार्थोंसे युक्त यह सृष्टि अकस्मात् मात्र परमाणुओंके संघातसे बनी है। मैं तो सर्वत्र कण-कणमें बुद्धि-व्यवस्थाका साम्राज्य देखता हूँ—एक ऐसी बुद्धि जो सुपर है, अचिन्त्य-अगोचर है। उस महती बुद्धिको ही भगवान् कहता हूँ।

शोध-निष्कर्षके रूपमें सर ए० ए० एडिंगटनका कथन है कि 'भौतिक पदार्थोंके अन्तरालमें एक चेतन शक्ति क्रियाशील है जिसे उसके प्राण-जीवनका आधार माना जा सकता है। अबतक हम इसके स्वरूप एवं क्रिया-कलापसे अवगत नहीं हो सके हैं, पर उसके अस्तित्वको झुठलाया नहीं जा सकता है। वैज्ञानिक मैक ब्राईटने भी अपना अध्ययन-निष्कर्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि 'परोक्ष जगत्में एक ज्ञानयुक्त एवं इच्छायुक्त सत्ताके होनेकी पूरी सम्भावना है। विश्वकी समस्त गतिविधियाँ इसीसे संचालित हैं।' ब्रह्माण्डीय चेतनाके शोधकर्ता प्रो० मर्फीने कहा है कि 'एक नये चिन्तनका प्रादुर्भाव हमारी शोध-प्रक्रियासे हो रहा है। मान्यता अब अधिक पुष्ट होती जा रही है कि अन्तरिक्ष ऊर्जा एवं पदार्थ वस्तुतः एक ही तत्त्व हैं। उनका उद्गम किसी एकसे हुआ है (अखण्ड ज्योति जु० ८१। ८)।' प्रसिद्ध दार्शनिक फ्रांसिस बेकनने तो यहाँतक कह दिया कि 'थोड़ी वैज्ञानिक बुद्धि तथा दार्शनिकता मनुष्यको नास्तिकताकी ओर ले जाती है। किंतु गंभीर शोधबुद्धि एवं दार्शनिकता मनुष्यको आस्तिकताकी ओर ले जाती है। अतएव सृष्टिकी नियामक सत्ताके संदर्भमें इन्कार करनेसे पूर्व गम्भीरतासे विचार करना चाहिये।'

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

विज्ञानने परमाणुकी जो खोज की है उससे भी कण-कणमें भगवान्की मान्यता प्रतिपादित होती है। पदार्थका छोटे-से-छोटा आँखोंसे दिखलायी देनेवाला मात्र टुकड़ा असंख्य परमाणुओंका समुच्चय है। अब तो परमाणुके भी सूक्ष्म तत्त्व न्यूट्रांस, प्रोट्रान्स एवं इलेक्ट्रान्स-को भी खोज लिया गया है जो परमाणुसे भी सूक्ष्मतर होते हैं। परमाणुके नाभिकके विघटनसे प्रचण्ड ऊर्जा (शक्ति) उत्पन्न होती है। हिरोशिमाका परमाणु-बम-विस्फोट इसकी भयंकर विनाश-शक्तिका उदाहरण हमारे सामने है। कुछ समय पूर्वसे विज्ञान यह भी मानने लगा है कि प्रत्येक पदार्थका एक प्रति पदार्थ (एन्टीमेटर) भी होता है, जो प्रतिछाया रूपमें सूक्ष्म संसारमें रहता है। जैसे परमाणुके न्यूट्रान्स, प्रोट्रान्स एवं इलेक्ट्रान्स होते हैं, उसी प्रकार प्रति पदार्थके परमाणुके भी एन्टी न्यूट्रान्स, एन्टी प्रोट्रान्स व एन्टी इलेक्ट्रान्स (पोजट्रॉन) होते हैं। डॉ० लियोन लैडरमैनने १९६५ में एन्टी न्यूक्लियसकी संरचना करके एन्टीएटम-(प्रति परमाणु) का स्वरूप प्रदान किया है। वैज्ञानिकोंकी मान्यता है कि अगर परमाणु एवं प्रति परमाणुमें किसी प्रकार टकराव हो जाय या करा दिया जाय तो उस विस्फोटकी शक्ति अकेले परमाणुकी शक्तिसे कई सौ गुनी होगी। जहाँतक शक्तिकी गतिशीलताका प्रश्न है, इसकी गति एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेण्ड—प्रकाशकी गति बतायी गयी है। क्वान्टम थ्योरीके अन्तर्गत जो शक्तिके सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म कणोंका अध्ययन करती है, इसका अध्ययन चल रहा है। इससे इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि यह शक्ति इतनी अनन्त एवं गतिशील है कि उसका अनुमान लगाना साधारण व्यक्तिके लिये सम्भव नहीं तथा उसे सर्वव्यापी मानकर नतमस्तक होनेमें ही सन्तोष होता है।

स्पष्ट है कि प्रत्येक पदार्थके परमाणुमें प्रचण्ड शक्ति छिपी हुई है। पृथ्वी, पहाड़, पत्थर, कोयला आदि धातु जो हमें जड़ दिखायी पड़ते हैं उनके प्रत्येक कणमें अपार शक्ति है। गीताके अध्याय १० के २५ वें श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि स्थिर रहनेवालोंमें हिमालय मैं ही हूँ। विज्ञान इस बातको भी स्वीकार करता है कि प्रत्येक पदार्थ ऊर्जाका कन्सनट्रेड (जमा हुआ) रूप है। आईस्टनके ऊर्जा समीकरणके अनुसार अगर एक ग्राम पदार्थको पूर्णतया शक्तिमें बदल दिया जा सके तो उससे २१४ खरब ३० अरब कलौरी ऊष्मा उत्पन्न होगी। एक कलौरी ऊष्माका तात्पर्य एक ग्राम पानीका ताप एक डिग्री सेन्टीग्रेड बढ़ानेके लिये प्रयुक्त ऊष्माकी मात्रासे है। इसका अर्थ यह हुआ कि इससे २ लाख १७ हजार तीन सौ टन शून्य डिग्री सेन्टीग्रेडवाले पानीको १०० डिग्री सेंटीग्रेड तक खौलाया जा सकता है। अभीतक वैज्ञानिक इस तरहकी कोई तकनीकी विकसित नहीं कर सके हैं, जिससे पदार्थको पूर्णतया शक्तिमें बदला जा सके और उसका पूरा-पूरा उपयोग किया जा सके।

हमारे तत्त्व-ज्ञानियोंने अकेली पृथ्वीके बारेमें जो ब्योरा दिया है वह चौंका देनेवाला है। उनके अनुसार पृथ्वीकी ऊपरी परत लगभग ४० मील मोटी है तथा इसके नीचे भूरस नामक तरल पदार्थ है। यह परत गर्म एवं तरल चट्टानोंकी है। इसके नीचे ७०० मील मोटा भाग शिलावरण कहलाता है। शिलावरणके नीचे भी लोहे एवं पत्थरकी मिली-जुली परतें हैं जो लगभग ११०० मील मोटी है। इसकी परिधि २५०० मील एवं वजन ६६० खरब करोड़ टन है (अखण्ड ज्योति माह फरवरी १९८१, पृष्ठ १७)। वैज्ञानिक अभी इस स्तरकी खोज नहीं कर सके हैं। इसके साथ ही ब्रह्माण्डमें जितने तारे हैं, वे सभी उसी शक्तिसे उत्पन्न हुए हैं, जिसको

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अध्यात्ममें ब्रह्म कहा जाता है। कल्पना कीजिये; अगर यह सभी पदार्थ शक्तिमें परिवर्तित हो जायँ तो कितनी शक्ति होगी जिसकी कल्पना मात्रसे सिर चकराने लगता है।

इसीलिये वेदोंमें भगवान्‌को 'नेति-नेति' कहकर ही सन्तोष करना पड़ा और 'कण-कण'में भगवान्‌का प्रतिपादन किया। प्रसन्नताका विषय है कि विज्ञानने एकपक्षीय एवं कठोर दृष्टिकोणको छोड़कर चेतन-शक्तिके बारेमें कार्य प्रारम्भ किया है तथा भविष्यमें पूरे नहीं तो कुछ और अधिक प्रतिपादन दे सकेगा। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि हमारे ऋषि-मुनियों एवं तत्त्व-दार्शनिकोंने जो प्रतिपादन दिये हैं, उन्हें हम कोरी कल्पना ही मान बैठे। प्रत्येक जड़ व चेतन भगवान्‌का ही अंश है तथा हमें उसमें भगवान्‌के दर्शन करने चाहिये। मूर्तिमें भगवान्‌के दर्शन करनेकी अवधारणाके पीछे सम्भवतया तत्त्वदर्शियोंका यही दर्शन रहा हो। जड़ व चेतन पदार्थके कण-कणमें शक्तिका विपुल भण्डार होना वैज्ञानिक तथ्योंसे प्रमाणित है। वैज्ञानिक इस बातको स्वीकार करते हैं कि सृष्टिके अद्भुत रहस्योंमें ईश्वरीय शक्ति परिलक्षित है तथा कण-कणमें अचिन्त्य, अगोचर, 'सुपर' बुद्धि विद्यमान है। भौतिक पदार्थोंके अन्तरालमें एक क्रियाशील चेतन शक्तिके दर्शन करते हैं तथा अन्तरिक्ष ऊर्जा व भौतिक पदार्थोंको एक ही तत्त्व मानते हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने गीताके दसवें अध्यायके श्लोक ४१ में अर्जुनसे कहा कि जो ऐश्वर्ययुक्त, शोभायुक्त एवं बलयुक्त वस्तु है उसको तू मेरे ही तेज- (योग-) के अंशसे उत्पन्न हुआ समझ। इसी अध्यायके ३९ वें श्लोकमें भगवान्‌ने प्रतिपादित किया है कि मेरे बिना कोई भी चर, अचर प्राणी नहीं है अर्थात् चर, अचर सब कुछमें मैं ही हूँ। श्लोक ८ में भी उन्होंने अपनेको ही सृष्टिका मूल कारण बतलाया है तथा कहा है कि समस्त सृष्टि मुझसे ही प्रवृत्त हो रही है।

अतः उपर्युक्त तथ्योंके आधारपर हमारे तत्त्वदर्शियोंका कण-कणमें भगवान् होनेका प्रतिपादन सन्देहसे परे एवं विज्ञान-सम्मत है। कुछ व्यक्ति विज्ञानके नामपर भगवान्‌के अस्तित्वको नकार देते हैं या प्रमाणस्वरूप अपने भौतिक चक्षुओंसे दिखलायी देनेका दुराग्रह कर बैठते हैं। ऐसी विचारधारावाले व्यक्तियोंको प्रसिद्ध दार्शनिक फ्रान्सिसी बेकनके पूर्वोक्त परामर्शपर मनन करना चाहिये। उनद्वारा इस प्रकार नकार देनेसे भगवान्‌की प्रतिष्ठा न तो घटती है और न बढ़ती है। जैसे किसी रेडियो स्टेशनसे निर्धारित कार्यक्रमानुसार संगीतका प्रसारण चल रहा है, किंतु रेडियोके अभावमें हमको सुनायी नहीं दे रहा है, इस आधारपर हमारे यह कहनेसे कि हमारे, आस-पास संगीत व्याप्त नहीं है, संगीतके अस्तित्वपर कोई असर नहीं पड़ता। उस समय संगीत व्याप्त है तथा उसे हम सुन सकते हैं, बशर्ते कि उसको पकड़नेका संयन्त्र (रेडियो) हमारे पास हो। इसी प्रकार भगवान् कण-कणमें व्याप्त हैं, भले ही उसे आप मान्यता दें या नहीं। अगर भगवान्‌के प्रति श्रद्धा व विश्वास नामक संयन्त्र आपके हृदयमें है तो उसकी अनुभूति व अभिव्यक्ति आपको हो सकती है। भगवान् दिव्य हैं तथा उनके दर्शन दिव्य चक्षुओंसे ही सम्भव हैं, इन भौतिक चक्षुओंसे तो उस दिव्यकी अनुभूति मात्रसे ही सन्तोष करना पड़ेगा या फिर संजय व अर्जुन-स्तरकी अध्यात्म-साधनाकर दिव्य दृष्टि अर्जित करनी होगी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भगवत्-तत्त्वकी सुलभता

(एक विचारक)

प्रायः भगवत्-तत्त्वकी प्राप्ति दुर्लभ मानी जा रही है। यह कहा जा रहा है कि भगवत्प्राप्ति बड़ी कठिन है, बहुत जन्मोंके साधनके बाद कहीं भगवत्प्राप्ति सम्भव है। इस विषयमें 'इतिहाससे आये हुए प्रसंग मनु-शतरूपा आदिकी बड़ी तपस्याके बाद भगवत्-दर्शन हुआ आदि प्रमाण भी दिये जाते हैं। परंतु यह बात ठीक है क्या ? यह बात गहराईसे विचार करने योग्य है।

परमात्मा सदा सर्वदा सर्वत्र विद्यमान हैं। इनका कहीं कभी अभाव नहीं है। ऐसे तत्त्वकी अनुभूतिको दुर्गम कठिन एवं श्रम-साध्य बताना एक प्रकारसे भ्रम फैलाना है। इस तत्त्वसे निराश होना अपनी बड़ी भारी भूल है। स्वामी रामतीर्थको प्रवचन करनेके लिये अमेरिकामें एक विषय दिया गया जिसका शीर्षक था "Way to God realization" यानी भगवत्प्राप्तिका मार्ग या साधन। इसी विषयपर प्रवचन दिया जाता था। उन्होंने अपना प्रवचन प्रारम्भ करते ही सबसे पहले यह कहा कि भगवत्प्राप्तिका कहीं मार्ग थोड़े ही होता है, वह तत्त्व तो सर्वत्र परिपूर्ण है। मार्ग तो सांसारिक स्थान-वस्तु आदिकी प्राप्तिमें लगता है।

कल्याणके पाठक-पाठिकाएँ हमारे परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकासे परिचित होगें ही; उन्होंने तत्त्वचिन्तामणिके छठे भागके 'सत्संगके अमृत कण'में लिखा है कि अप्राप्तकी प्राप्ति नहीं करना है, जो प्राप्त है उसकी ही प्राप्ति करनी है। यानी प्राप्त तत्त्वकी प्राप्तिमें अप्राप्तिका भ्रम हो रहा है, उसे ही मिटाना है। और सत्संगी भाइयोंने जो उनके प्रवचनोंको हाथसे लिखा है उन प्रवचनोंमें कई जगह ऐसा पढ़ा गया है कि जो भगवत्प्राप्तिको कठिन बताते हैं उन पुरुषोंका संग नहीं करना चाहिये। उन्हें अपने पास नहीं बैठने देना चाहिये। तात्पर्य हुआ कि भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं है और न तो कठिन मानना ही चाहिये। श्रद्धेय शरणानन्दजी अपनी 'मानवकी माँग' पुस्तक तथा अन्य पुस्तकोंमें भी लिखते हैं कि तत्त्व-ज्ञानकी प्राप्तिमें जो कालकी अपेक्षा मानते हैं, उन्होंने तत्त्वज्ञानकी महिमाको समझा ही नहीं। भगवत्प्राप्तिके लिये लेशमात्र भी भविष्यकी अपेक्षा नहीं है, अभी वर्तमानमें ही सम्भव है।

परम श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंमें आता है कि भगवत्प्राप्ति जितनी सरल है, इतना संसारमें और कोई काम सरल नहीं है। यह मनुष्य-जन्म केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही मिला है। इसमें वर्तमानमें ही भगवत्प्राप्ति हो सकती है। इसके लिये समयकी अपेक्षा नहीं है।

उपर्युक्त संतोंके विचार इसलिये लिखे गये हैं कि हम विचारें कि क्या सभी संत अंधेरेमें कह रहे हैं। हमें भगवत्प्राप्ति कठिन मालूम देती है; परंतु सभी संत भगवत्प्राप्ति बहुत सुगम—विना श्रम साध्य बताते हैं। पहेली क्या है ?

बात यह है कि वास्तवमें हम लोग भगवत्प्राप्ति चाहते ही नहीं। हम सत्संग सुनते हैं, पुस्तकोंका अध्ययन करते हैं; परंतु वास्तवमें हम क्या चाहते हैं, इधर दृष्टिपात नहीं करते। हम भगवत्प्राप्ति-विषयकी बातें सुनते हैं, परंतु संग करते हैं संसारका। अन्तः-करणमें सत्ता-महत्ता देते हैं स्त्री-पुत्र, धन-मान शरीरके आराम आदिको। संसारकी महत्ताको कायम रखते हुए सत्संग करते हैं, इसलिये बहुत वर्ष सत्संग करते हो गये परंतु विशेष आध्यात्मिक लाभ नहीं देखनेमें आ रहा है। यही हेतु है कि हम भगवत्प्राप्तिसे निराश हो रहे हैं, हमें भगवत्प्राप्ति कठिन मालूम होती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

साधकको गहरा विचार करना चाहिये कि क्या वास्तवमें हम उस तत्त्वको चाहते हैं? यदि उस तत्त्वको चाहते हैं, वह हमें नहीं मिल रहा है तो क्या हमारे हृदयमें इसकी व्यथा है? यदि व्यथा नहीं है तो वास्तवमें हम तत्त्वको चाहते ही नहीं। अपनेको धोखेमें डाल रहे हैं। और कामनाएँ पड़ी हुई हैं तथा उनकी पूर्तिसे सुख लेनेकी आशा रखते हैं तो भगवत्प्राप्तिकी इच्छा ही कहाँ है? एक प्रकारका धोखा ही तो है। यदि भगवत्प्राप्तिकी इच्छा हो और भगवान् न मिलें—यह सम्भव ही नहीं; क्योंकि जो तत्त्व सर्वत्र परिपूर्ण है उसकी प्राप्ति कठिन एवं दुर्लभ नहीं है, श्रमसाध्य नहीं है। भगवत्प्राप्तिकी इच्छा संसारकी सत्ताको खा जाती है; जो परमात्मसत्ता सदैव सर्वत्र है, उसका अनुभव हो जाता है।

भगवत्-तत्त्व ही सुलभ है; कारण इसमें कोई भी मनुष्य पराधीन एवं असमर्थ नहीं है; क्योंकि भगवान् सबके हैं; सभीके अपने हैं। अपनी चीज ही यदि हमें न मिलेगी तो और हमें क्या मिल सकता है? इसलिये भगवत्प्राप्तिको कभी कठिन न मानें; इससे निराश न हों और अपने उद्देश्यपर दृढ़ रहें।

भागवतीय प्रवचन

(संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)

मैंने कभी भीख नहीं माँगी, किंतु अपने प्रभुकी कृपासे मैं कभी भूखा न रहा। मैंने किसी वस्तुका संग्रह नहीं किया; परंतु मेरे भगवान्‌ने किसी दिन मुझे भूखा नहीं रखा। मैं भगवत्-स्मरण करता फिरता था। मैंने बारह वर्षतक अनेक तीर्थोंका भ्रमण किया। इसके बाद मैं घूमता-फिरता गङ्गा नदीके तटपर पहुँचा। गङ्गामें स्नान किया, इसके बाद एक पीपलके वृक्षके नीचे बैठकर मैं जप करता था। जप ध्यानपूर्वक करता था। गुरुदेवने आज्ञा दी थी कि खूब जप करना। मैंने जप नहीं छोड़ा। गुरुने कहा था कि प्रभु दर्शन दें तो भी जप छोड़ना नहीं। मैं गङ्गा-किनारे बारह वर्षतक रहा।

चौबीस सालसे भावना करता था कि कन्हैया मेरे साथ हैं। मेरे पूर्वजन्मके पाप बहुत होंगे, इसलिये मुझे दर्शन नहीं हो रहे हैं; परंतु श्रद्धा अडिग थी, इस कारण मुझे विश्वास था कि एक दिन प्रभु मुझे अवश्य दर्शन देंगे। भावनामें भावसे मुझे श्रीकृष्ण दीखते थे; किंतु मुझे बालकृष्णके प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो रहे थे। अपने श्रीकृष्णका मुझे प्रत्यक्ष दर्शन करना था। मुझे लगा कि श्रीकृष्ण मुझे कब अपनायेंगे? कब मुझे मिलेंगे? मुझे श्रीकृष्ण-दर्शनकी तीव्र इच्छा जागी—'क्या ही अच्छा हो कि मुझे श्रीकृष्णकी झाँकी हो'!

मेरे लालने कृपा की। एक दिन ध्यानमें मुझे सुन्दर नीला प्रकाश दीखा। प्रकाशको देखकर भी मैं जप करता रहा। वहाँ प्रकाशमेंसे बालकृष्णका स्वरूप प्रकट हुआ। मुझे बालकृष्णलालके मनोहर स्वरूपकी झाँकी हुई। मेरे कृष्णने कस्तूरीका तिलक लगाया था, वक्षःस्थलपर कौस्तुभ मणिकी माला धारण की थी। उनकी आँखें प्रेमसे भरी थीं। मुझे जो आनन्द हुआ, उसका वर्णन करनेकी शक्ति सरस्वतीमें भी नहीं है। मनमें आया कि मैं दौड़ता जाऊँ और श्रीकृष्णके चरणोंमें वन्दन करूँ। मैं जैसे ही वन्दन करने गया तो कृष्ण अन्तर्ध्यान हो गये! मुझे लगा मेरे श्रीकृष्ण मुझे क्यों छोड़कर चले गये? वहाँ मुझे आकाशवाणीसे आज्ञा मिली—'तेरे मनमें सूक्ष्म वासना है। जिसके मनमें सूक्ष्म वासना रह गयी हो ऐसे योगीको मैं दर्शन नहीं देता। इस जन्ममें अब

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मेरा दर्शन तुझे नहीं होगा। यों तो मैं तेरी भक्तिसे प्रसन्न हूँ, तेरे प्रेमको एवं भक्तिको पुष्ट करनेके लिये मैंने तुझे दर्शन दिया है; परंतु तुझे अभी एक जन्म और लेना पड़ेगा। अभी तेरा बहुत जप बाकी है। अगले जन्ममें तुझे मेरा दर्शन होगा; दृष्टि और मनको सुधार। सतत विचार कर कि मैं तेरे साथ हूँ। जीवनके अन्तिम श्वासतक जप करना। भजन बिना किया भोजन पाप है। सत्कर्मकी समाप्ति नहीं हुआ करती। जिस दिन जीवनकी समाप्ति, उसी दिन सत्कर्मकी समाप्ति होती है।'

इसके बाद मैं गङ्गा-किनारे रहा। मरनेसे पहले मुझे अनुभव होने लगा कि इस शरीरसे मैं पृथक् हूँ। जड़-चेतनकी ग्रन्थि छूट गयी। जड़ और चेतनकी, शरीर और आत्माकी जो गाँठ लगी है, यह गाँठ भक्तिके सिवा नहीं छूटती। शरीरसे आत्मा पृथक् है, यह सब जानते हैं, पर उसका अनुभव कौन करता है?

ज्ञानका अनुभव भक्तिसे होता है। संत तुकाराम महाराज कहते हैं कि मैंने अपनी आँखोंसे अपना मरण देखा है, अपने आत्म-स्वरूप को निहारा है। मन ईश्वरमें लगा हो और ईश्वर-स्मरण करते-करते शरीर छूट जाय तो मुक्ति मिलती है। मनको ईश्वरका स्मरण करानेके लिये जपके बिना कोई अन्य साधन नहीं है। जब जीभसे जप करो, तब मनसे भी स्मरण चलना चाहिये। सारा जीवन जिसके स्मरणमें बीता होगा, वही अन्तकालमें भी याद आवेगा। 'अन्तकाल तक मेरा जप चालू रहा। जपकी पूर्णाहुति नहीं होती। भजनकी समाप्ति नहीं होती। शरीरकी समाप्तिके साथ ही भजनकी समाप्ति होती है। जीवनके अन्ततक भजन करना चाहिये। अन्तकालमें राधा-कृष्णका चिन्तन करते हुए मैंने शरीरका त्याग किया। अपनी मृत्यु मैंने प्रत्यक्ष देखी। मुझे मृत्युका कष्ट नहीं हुआ। इसके बाद मैं ब्रह्माजीके यहाँ जन्मा। पूर्वजन्मके कर्मोंका फल मुझे इस जन्ममें मिला। मेरा नाम नारद रखा गया। पूर्वजन्ममें किये गये भजनसे मेरा मन स्थिर हुआ है। मेरा मन संसारकी ओर जाता ही नहीं। अब मेरा मन चञ्चल नहीं होता है। अब तो मैं सतत परमात्माका दर्शन करता हूँ।'

'एक दिन मैं गोलोक-धाममें गया, जहाँ सतत रास-लीला होती है। वहाँ श्रीराधा-कृष्णका मुझे दर्शन हुआ। मैं कीर्तनमें तन्मय हुआ। श्रीकृष्ण-कीर्तनमें मुझे अतिशय आनन्द हुआ। प्रसन्न होकर राधाजीने मेरे लिये प्रभुसे प्रार्थना की कि नारदजीको प्रसाद दें। श्रीकृष्णजीने मुझे प्रसाद दिया।' व्यासजीने पूछा—'प्रसादमें प्रभुने आपको क्या दिया?' नारदजीने कहा कि 'प्रसादमें प्रभुने मुझे यह 'तम्बूरा' दिया और कहा—'कृष्ण-कीर्तन करते-करते जगत्में भ्रमण करो और मुझसे वियुक्त हुए अधिकारी जीवोंको मेरे पास लाओ। संसार-प्रवाहमें बहते हुए जीवोंको मेरी ओर लगाओ।'

'भगवान्को कीर्तनभक्ति अतिशय प्रिय है। यह वीणा लिये मैं जगत्में भ्रमण करता हूँ। आदरके साथ कीर्तन करता हूँ। अधिकारी जीवोंमें कोई योग्य चेला मिले, उसे प्रभुके धाममें ले जाता हूँ। मुझे रास्तेमें ध्रुव मिला। उसको प्रभुके पास ले गया। मुझे प्रह्लादजी मिले तो उनको प्रभुके पास ले गया। ऐसे भक्त और मिले, उन्हें मैं प्रभुके पास ले गया। जो कोई भक्त मिलते हैं, उनको प्रभुके पास ले जाता हूँ।'

सत्सङ्गमें मैंने भागवत-कथा सुनी, श्रीकृष्ण-कथा सुनी। फिर मैंने कृष्ण-कीर्तन किया और प्रेमलताको पुष्ट किया। अब तो जब मैं इच्छा करूँ तभी कन्हैया मुझे झाँकी देते हैं। मेरे साथ कन्हैया नाचते हैं। (संत नामदेव महाराज जब कीर्तन करते थे, उस समय श्रीविट्ठलनाथजी नाचते थे।) 'मैं अपने ठाकुरजीका काम करता हूँ, इसलिये उन्हें अतिशय प्रिय लगता हूँ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कीर्तनमें संसारका भान भूले तो आनन्द आये । कीर्तनमें तन्मय हुआ मनुष्य संसारको भूलता है । कीर्तनसे संसार-सम्बन्ध छूटता है और प्रभुके साथ सम्बन्ध बँधता है । संसारका ध्यान छोड़नेका प्रयत्न करो । कीर्तनमें आनन्द कब आता है ? जब जीभसे प्रभुका कीर्तन, मनसे उनका चिन्तन करेंगे और दृष्टिसे उनके स्वरूपको देखेंगे तभी आनन्द आयेगा । कलियुगमें नामकीर्तन करनेसे पाप जलते हैं । हृदय शुद्ध होता है । परमात्मा हृदयमें समाता है । परमात्माकी प्राप्ति होती है । अतः कथामें कीर्तन होना ही चाहिये । कीर्तन बिना कथा परिपूर्ण नहीं होती । कलियुगमें स्वरूपसेवा जल्दी नहीं फलती । स्मरण-सेवा अर्थात् नामसेवा तुरंत फलती है। हे व्यासजी ! इस सबका मूल सत्संग है । सत्संगकी यह बड़ी महिमा है । जो सत्संग करता है वही संत बनता है ।'

श्रीकृष्णकथासे मेरा जीवन सुधरा है । कृष्णकथा सुनकर मुझे सच्चा जीवन मिला है । (कथा सुनकर वैराग्य करो और स्वभावको सुधारो । संयम बढ़ाकर ज्यादा भजन करोगे तो सफलता जरूर मिलेगी ।) नारदजी व्यासजीसे कहते हैं—'आप मुझे जो मान देते हैं यह सत्संगका मान है । सत्संगसे ही मैं मानके योग्य हुआ हूँ । भील बालकोंके साथ आवारा घूमनेवाला सत्संगसे ही देवर्षि बना हूँ ।'

नारदजी दासीपुत्र थे । सच्चे साधु-संतकी सेवासे उनका जीवन सुधरा । संत स्वयं तीर्थ रूप हैं । संत जङ्गम तीर्थ हैं । पारसमणि लोहेको सोना बनाती है पर लोहेको अपने जैसा नहीं बनाती; परंतु संत अपने संसर्गमें आये हुओंको अपने जैसा बनाते हैं—'**संत करे आपु समाना** ।' मनुष्य देव होनेके लिये बनाया गया है । मनुष्यको देव होनेके लिये चारु गुणोंकी आवश्यकता है । सत्संगका फल भागवतमें बताया गया है ।

सत्संगसे नारदजी दासीपुत्रसे देवर्षि हुए हैं । मनुष्य मायाका दास बना है । सत्संगसे वह इससे छुटकारा पा सकता है । फिर सच्ची भक्तिका रंग लगता है तो उसे प्रभु बिना चैन नहीं मिलता । इस चरित्रका उद्देश्य सत्संग और सेवाका फल बताना है । अतः विस्तार किया है । हमने यह देख लिया कि जप बिना जीवन सुधरता नहीं । दानसे धनकी शुद्धि होती है । ध्यानसे मनकी शुद्धि होती है और स्नानसे शरीरकी शुद्धि होती है । परोपकारसे भी मनकी मलिनता पूर्णतः नहीं धुलती है, इसलिये ध्यान और जपकी आवश्यकता है ।

जप करनेवालेकी स्थिति कैसी होनी चाहिये ! श्रीब्रह्मचैतन्य स्वामीने कहा है कि '**सहज सुमिरन होत है, रोम रोमसे राम** ।' जपकी प्रशंसा करते गीतामें भगवान्‌ने कहा है—'**यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि**' (१० । २५) 'मैं यज्ञोंमें जपयज्ञ हूँ ।'

—क्रमशः

भगवान्‌का किया ही सब कुछ होता है

करी गोपाल की सब होइ ।
जो अपनौं पुरुषारथ मानत, अति झूठौ है सोइ ॥
साधन, मंत्र, जंत्र, उद्यम, बल, ये सब डारौ धोइ ।
जो कछु लिखि राखी नँदनंदन, मेटि सकै नहिं कोइ ॥
दुख-सुख, लाभ-अलाभ समुझि तुम, कतहिं मरत हौ रोइ ।
सूरदास स्वामी करुनामय, स्याम चरन मन पोइ ॥

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कलिका पुनीत प्रताप

(लेखक—स्वामी श्रीशंकरानन्दजी सरस्वती)

कलेर्दोषनिधेस्तात गुण एको महानपि।
मानसं हि भवेत् पुण्यं सुकृतं नहि दुष्कृतम्॥
(ब्रह्मवै० पु०)

कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहिं पापा॥

'हे तात! यद्यपि कलियुग दोषोंका कोष है, तथापि उसमें एक महान् गुण भी है। कलियुगमें मानस सुकृत तो पुण्य हो जाते हैं, परंतु मानस दुष्कृत पाप नहीं होता।'

शङ्का—उक्त श्लोक तथा अर्धालीमें 'नहिं' शब्द पुण्य और पाप दोनोंके बीचमें रखा होनेके कारण कुछ विद्वान् ऐसा अर्थ करते हैं कि 'कलियुगमें मानस पुण्य और पाप दोनों ही नहीं होते।' कलियुगमें मानस पुण्य होते हैं, किंतु मानस पाप नहीं होते' ऐसा अर्थ करनेमें यह दोष भी देते हैं कि तब तो मनुष्य एक ब्राह्मणको भोजन करानेमें भी असमर्थ होनेपर भी लाखों ब्राह्मणोंको भोजन कराया, लाखों गायोंका दान किया, सैकड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान किया इत्यादि-इत्यादि रूपमें तथा कथित मानस पुण्य करके उनके फलका भागी हो जायेगा, मानस पापोंसे बचनेका प्रयास न करेगा, जिसका परिणाम पतन ही होगा; क्योंकि विषयोंका चिन्तन पतनका कारण होता है—

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥
(गीता २। ६२-६३)

'विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन-विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, आसक्तिसे कामना उत्पन्न होती है, कामनामें (विघ्न पड़नेसे) क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोधसे मूढ़भाव उत्पन्न होता है, मूढ़भावसे स्मृतिमें भ्रम हो जाता है, स्मृति-भ्रमसे बुद्धिका नाश और बुद्धिनाशसे पतन हो जाता है।'

इस प्रकार जब सामान्यतः विषय-चिन्तन ही पतनका हेतु बन जाता है, तब विशेषरूपसे पापोंका चिन्तनरूप मानस पाप परिणाममें पतनका हेतु बन जाये तो आश्चर्य क्या? भविष्यकालमें परिणाममें ही नहीं, किंतु पापचिन्तनरूप मानसपापको रोकनेका प्रयास न करनेपर तो भगवच्चिन्तन आदि साधन भी न हो सकेंगे। इस प्रकार वर्तमान कालमें भी महान् हानिकर होनेसे उसका त्याग करना परमावश्यक है।

समाधान—निम्नलिखित महाभारतके श्लोकोंके अर्थपर विचार करनेसे उक्त शङ्काका समाधान हो जाता है—

धर्मकार्यं यतञ्छक्त्या नो चेत्प्राप्नोति मानवः।
प्राप्तं भवति तत्पुण्यमत्र मे नास्ति संशयः॥
मनसा चिन्तयन् पापं कर्मणा नातिरोचयन्।
न प्राप्नोति फलं तस्येत्येवं धर्मविदो विदुः॥
(महाभा० उ० प० ९३। ६-७)

'अपनी सामर्थ्यके अनुसार धर्मकार्यके लिये यत्न करता हुआ मनुष्य यदि किसी कारण उसे पूर्ण नहीं कर पाता है तो उसे उस कार्यका पुण्य प्राप्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। इसी प्रकार मनसे पापका चिन्तन करता हुआ कर्मसे उसे अच्छा नहीं समझता हो तो (ऐसी दशामें) उसे उसका पापरूप फल नहीं प्राप्त होता है, ऐसा धर्ममर्मज्ञ जानते हैं।

तात्पर्य यह है कि जिस मनुष्यमें चार ब्राह्मण खिलाने या एक गाय दान करने अथवा एक यज्ञ करनेकी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सामर्थ्य है उसके लिये उसने समग्र सामग्रीका संग्रह कर लिया है, ऐसी दशामें किसी अनिवार्य कारण-विशेषसे अथवा कर्ताकी मृत्यु हो जानेसे वह पुण्यकार्य पूरा न हो पाये तो उस पुण्यकार्यको करनेके मानस संकल्पसे ही उसे उस शुभ कार्यका पुण्य फल मिल जायगा। महाभारतके इस स्पष्टीकरणसे पूर्वोक्त इस शङ्काके लिये कोई अवकाश नहीं रह जाता कि 'एक ब्राह्मणको भी भोजन करानेमें असमर्थ होनेपर भी लाखों ब्राह्मणोंको भोजन कराया, इस मानसपुण्यका भी फल प्राप्त होने लगेगा, इत्यादि।

इसी प्रकार कोई मनुष्य प्रबल द्वेष-वशात् शत्रुको मार डालनेका संकल्प तो करता है, किंतु शास्त्र या लोकभयसे उसे कार्यरूपमें परिणत करना नहीं चाहता। ऐसी दशामें शत्रुको मार डालनेकी क्रिया सम्पन्न न होनेके कारण उसे मार डालनेके संकल्परूप मानस पापमात्रसे ही शत्रुवधका जरा भी फल उसे नहीं मिलेगा। यही कलियुगकी विशेषता है, जब कि सतयुग आदिमें शत्रुवधके संकल्परूप मानसपापका भी कुछ फल अवश्य मिलता है।

'पापचिन्तनरूप मानसपापको रोकनेका प्रयास न करनेपर तो भगवत्-चिन्तन आदि साधन हो ही न सकेंगे' इत्यादि शङ्का भी ठीक नहीं; क्योंकि पापके अनुत्पादक व्यर्थ चिन्तन भी भगवत्-चिन्तनमें ही नहीं, किंतु भौतिक-विज्ञानके अनुसन्धानमें भी बाधक होनेके कारण जब उसका त्याग करना परमावश्यक माना जाता है, तब पाप-चिन्तनका त्याग परमावश्यक माना जाय, इसमें तो कहना ही क्या है।

'मानस पुण्य और पाप दोनों ही नहीं होते' इस अर्थमें कुछ लोग यह भी असंगति देखते हैं कि इस अर्थको स्वीकार कर लेनेपर तो भगवत्-चिन्तन ध्यान-रूप मानस पुण्यका फल भी कलियुगमें न होगा।

इसका समाधान करते हुए किसी विद्वान्का कहना है कि जो शुभ या अशुभ कर्म शारीरिक स्थूल क्रियासे सम्पादित होते हैं उनके हेतु संकल्परूप मानस पाप पुण्यपर ही उक्त श्लोक तथा अर्धालीमें विचार किया गया है, भगवत्-चिन्तन-ध्यान तो केवल मनसे सम्पादित होनेवाला मानस कर्म ही है, उसकी चर्चा यहाँ करना व्यर्थ है।

अन्य विद्वान्का कहना है कि भगवत्-चिन्तन-ध्यान कर्म ही नहीं, किंतु उपासना है, अतः उसकी चर्चा यहाँ करना निरर्थक है।

मेरी दृष्टिसे तो 'मानस पुण्य होते हैं और मानस पाप नहीं होते' यही अर्थ श्रेष्ठ है। इसपर होनेवाली शङ्काओंका समाधान पूर्व लिखित महाभारतके श्लोकोंपर किये गये विचारसे हो ही जाता है, अतः 'मानस पुण्य और पाप दोनों नहीं होते' इस अर्थपर दिखायी गयी असंगति और उसके समाधानपर मैं विचार नहीं करता।

'मानस पुण्य होते हैं, मानस पाप नहीं होते' इस अर्थको श्रेष्ठ माननेका कारण यह है कि यदि कलियुगमें भी मानस पाप हों तो किसीका उद्धार होना ही प्रायः असम्भव हो जाये; क्योंकि परम सन्त तुलसीदासजीने कहा है—

'कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥

तथापि मनकी सीधी बातें आचरणमें भी आने लगनेकी सम्भावना होती है। अतः मानस पापसे दूर रहकर पुण्यकर समयका सदुपयोग करना चाहिये।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

गीता-माधुर्य—८

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

आठवाँ अध्याय

अर्जुन बोले—हे पुरुषोत्तम ! अभी आपने अपने आश्रितजनोंके द्वारा अपने ब्रह्म, अध्यात्म आदि समग्ररूपको जाननेकी बात कही; अतः मैं यह पूछना चाहता हूँ कि वह ब्रह्म क्या है ?

भगवान् बोले—उस परम अक्षर अर्थात् निर्गुण-निराकार परमात्माको ब्रह्म कहते हैं ।

वह अध्यात्म क्या है ?

जीवोंकी सत्ता (होनेपन)को अध्यात्म कहते हैं ।

वह कर्म क्या है ?

सृष्टिके आदिमें मेरा 'मैं एक ही अनेक रूपोंसे हो जाऊँ'—यह संकल्परूप त्याग ही कर्म (आदि कर्म) है ।

अधिभूत किसे कहा गया है भगवन् ?

हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! नष्ट होनेवाले मात्र पदार्थ अधिभूत हैं ।

अधिदैव किसे कहा जाता है ?

सृष्टिके आरम्भमें सबसे पहले प्रकट होनेवाले हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी अधिदैव हैं ।

इस देहमें अधियज्ञ कौन है ?

इस मनुष्य-शरीरमें अन्तर्यामीरूपसे मैं ही अधियज्ञ हूँ ।

हे मधुसूदन ! नियतात्मा मनुष्योंके द्वारा अन्तकालमें आप कैसे जाननेमें आते हैं ?

जो मनुष्य अन्तकालमें मेरा स्मरण करते हुए शरीर छोड़ता है, वह मुझे ही प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है ॥ १—५ ॥

अन्तकालमें आपका स्मरण करे तो आपको प्राप्त होगा, पर यदि आपका स्मरण न करे, तो ?

हे कुन्तीनन्दन ! मनुष्य अन्त समयमें जिस-जिस भावका स्मरण करते हुए शरीर छोड़ता है, वह उसी (अन्तसमयके) भावसे सदा भावित हुआ उसी भावको प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥

तो फिर अन्तकालमें आपके स्मरणके लिये क्या करना चाहिये ?

तुम अपने मन और बुद्धिको मुझमें अर्पण करके सब समय मेरा ही स्मरण करो और समय-समयपर कर्तव्य-कर्म भी करो ।

इससे क्या होगा ?

तुम निःसंदेह मुझे ही प्राप्त होओगे ॥ ७ ॥

आपके किस स्वरूपका चिन्तन करें भगवन् ?

मेरे सगुण-निराकार, निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार—ये तीन स्वरूप हैं । इनमेंसे पहले मैं सगुण-निराकारके चिन्तनका प्रकार बताता हूँ । हे पार्थ ! जो मनुष्य अभ्यासयोगसे युक्त अनन्य-चित्तसे परम दिव्य-पुरुषका अर्थात् मेरे सगुण-निराकार स्वरूपका चिन्तन करता हुआ शरीर छोड़ता है, वह मेरे उसी स्वरूपको प्राप्त हो जाता है ॥ ८ ॥

वह स्वरूप कैसा है भगवन् ?

वह सर्वज्ञ है, सबका आदि है, सबपर शासन करनेवाला है, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म है, सबका धारण-पोषण करनेवाला है, अचिन्त्य स्वरूपवाला है और अज्ञान-अन्धकारसे रहित तथा सूर्यकी तरह प्रकाशस्वरूप है । ऐसे स्वरूपका जो चिन्तन करता है, वह भक्तियुक्त मनुष्य अन्तकालमें योगबलके द्वारा अचल मनसे अपने प्राणोंको भृकुटीके मध्यमें अच्छी तरहसे स्थापन करके शरीर छोड़नेपर उस परम दिव्य पुरुषको प्राप्त हो जाता है ॥ ९-१० ॥

मैंने आपके सगुण-निराकार स्वरूपके चिन्तनका प्रकार सुन लिया, अब निर्गुण-निराकारका चिन्तन कैसे करें ?

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वेदवेत्तालोग जिसे अक्षर कहते हैं, रागरहित यतिलोग जिसे प्राप्त करते हैं और जिसे प्राप्त करनेकी इच्छासे ब्रह्मचारीलोग ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उस पदकी प्राप्तिकी बात मैं संक्षेपसे कहूँगा । जो साधक अन्तकालमें सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके, मनको हृदयमें स्थापन करके और प्राणोंको मस्तिष्कमें धारण करके योगधारणामें स्थित हुआ 'ॐ' इस एक अक्षर ब्रह्मका उच्चारण और मेरे निर्गुण-निराकार स्वरूपका चिन्तन करता हुआ शरीर छोड़ता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ११–१३ ॥

मैंने आपके निर्गुण-निराकार स्वरूपके चिन्तनका प्रकार सुन लिया, अब सगुण-साकारका चिन्तन कैसे करें ?

हे पार्थ ! अनन्यचित्तवाला जो मनुष्य नित्य-निरन्तर मेरा ही चिन्तन करता है, मुझमें सदा लगे हुए उस योगीको मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसे मैं सुलभतासे प्राप्त हो जाता हूँ ॥ १४ ॥

आपकी प्राप्तिसे क्या होता है भगवन् ?

जो महात्मालोग मेरे परम प्रेमसे युक्त होकर मुझे प्राप्त कर लेते हैं, वे हर समय मिटनेवाले और दुःखोंके घररूप पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होते ॥ १५ ॥

तो फिर पुनर्जन्म किसका होता है ?

हे अर्जुन ! ब्रह्मलोकतक सभी लोक पुनरावर्ती हैं, इसलिये उन लोकोंमें जानेपर फिर लौटकर आना ही पड़ता है अर्थात् फिर जन्म लेना ही पड़ता है; परंतु हे कौन्तेय ! मेरी प्राप्ति होनेपर फिर जन्म नहीं लेना पड़ता ॥ १६ ॥

वे लोक पुनरावर्ती क्यों हैं ?

अवधिवाले होनेसे ।

वह अवधि क्या है ?

ब्रह्माके दिन-रातके तत्त्वको जाननेवाले पुरुषोंका कहना है कि एक हजार चतुर्युगी* बीतनेपर ब्रह्माका एक दिन होता है और एक हजार ही चतुर्युगी बीतनेपर ब्रह्माकी एक रात होती है । ब्रह्माके दिनके आरम्भ-कालमें (नींदसे ब्रह्माके जागनेपर) ब्रह्माके सूक्ष्मशरीरसे सम्पूर्ण प्राणी प्रकट होते हैं और ब्रह्माकी रातके आरम्भकालमें (ब्रह्माके सोनेपर) ब्रह्माके सूक्ष्मशरीरमें सम्पूर्ण प्राणी लीन हो जाते हैं ॥ १७-१८ ॥

वे प्राणी बार-बार क्यों जन्मते-मरते हैं भगवन् ?

प्राणियोंका समुदाय तो वही रहता है, जो कि पहले सर्गोंमें था । पर केवल अपने राग-द्वेषयुक्त स्वभावके परवश होकर वही प्राणिसमुदाय ब्रह्माके दिनके समय उत्पन्न होता है और ब्रह्माकी रातके समय लीन होता है ॥ १९ ॥

उस अव्यक्त (ब्रह्माके सूक्ष्मशरीर)से भी श्रेष्ठ और कोई है क्या, जिसका कभी विनाश न होता हो ?

हाँ, उस ब्रह्मासे भी पर (श्रेष्ठ) एक नित्य-निरन्तर रहनेवाला भावरूप अव्यक्त (परमात्मा) है, जो कि सम्पूर्ण प्राणियोंके नष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होता । उसीको अव्यक्त, अक्षर और परमगति कहते हैं तथा जिसे प्राप्त होनेपर जीव फिर लौटकर संसारमें नहीं आते, वही मेरा परमधाम (स्वरूप) है ॥ २०-२१ ॥

उस परमधामकी प्राप्ति कैसे हो ?

हे पार्थ ! जिसके अन्तर्गत सब संसार है और जिससे सब संसार व्याप्त है, वह परम पुरुष परमात्मा अनन्य भक्तिसे प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

अन्यका सम्बन्ध न रखनेसे और अन्यका सम्बन्ध रखनेसे क्या होता है ?

हे अर्जुन ! जिस मार्गसे गये हुए अन्यका सम्बन्ध न रखनेवाले प्राणी फिर लौटकर संसारमें नहीं आते और जिस मार्गसे गये हुए अन्यका सम्बन्ध रखनेवाले

* तैंतीस लाख बीस हजार वर्षोंकी एक चतुर्युगी होती है ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्राणी फिर लौटकर संसारमें आते हैं, उन दोनों मार्गोंको मैं कहूँगा ॥ २३ ॥

वे दोनों मार्ग कौन-से हैं भगवन् ?

जिस मार्गमें प्रकाशस्वरूप अग्नि, दिन, शुक्लपक्ष और छः महीनोंवाले उत्तरायणके अधिपति देवता हैं, शरीर छोड़कर उस मार्गसे गये हुए ब्रह्मवेत्तालोग ब्रह्मको प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् फिर लौटकर नहीं आते; और जिस मार्गमें धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष और छः महीनोंवाले दक्षिणायनके अधिपति देवता हैं, शरीर छोड़कर उस मार्गसे गये हुए सकाम मनुष्य स्वर्गादि ऊँचे लोकोंका सुख भोगकर फिर लौटकर आते हैं ॥ २४-२५ ॥

ये दोनों मार्ग कबसे आरम्भ हुए हैं ?

प्राणियोंके ये दोनों शुक्ल और कृष्ण-मार्ग अनादि हैं । इनमेंसे शुक्लमार्गसे गये हुएको लौटकर नहीं आना पड़ता और कृष्णमार्गसे गये हुएको लौटकर आना पड़ता है ॥ २६ ॥

लौटकर न आना पड़े--इसके लिये क्या करें भगवन् ?

हे पार्थ ! इन दोनों मार्गोंके परिणामको जाननेसे कोई भी योगी संसारमें मोहित नहीं होता । इसलिये हे अर्जुन ! तुम सब समयमें योगयुक्त हो जाओ अर्थात् संसारमें सदा ही निर्लिप्त, निर्विकार रहो ॥ २७ ॥

योगी होनेसे क्या होगा भगवन् ?

वेदोंमें, यज्ञोंमें, तपोंमें तथा दानोंमें जो-जो पुण्यफल कहे गये हैं, योगी उन सभी पुण्यफलोंका अतिक्रमण करके आदिस्थान परमात्माको प्राप्त हो जाता है ॥२८॥

'नाटक'

क्रोधसे मालती रसोई-घरमें बर्तन धो रही थी । 'नीलम बहन पूरे दिन बैठी रहती है और मुझे नौकरीसे आकर चूल्हा सँभालना पड़ता है ?' उससे इतना भी नहीं होता कि साग सँभालकर रखे, आटा सान दे । और, माँ ! तुम भी अपनी सेवा-पूजासे शीघ्र खाली नहीं होतीं । मैं अकेली यह सब कैसे करूँ ? मैं क्या अकेली ही इस घरमें खाती हूँ ? ये नयी-नयी माँके यहाँ आयी हैं । ससुराल रहो न ? यहाँ नैहर आयी हैं मेरा रक्त चूसने !

और बाहरसे नीलमके उग्र शब्द सुनायी दिये—'भाभी ! तुम अपनी सीमामें रहो, बहुत बोलनेकी आवश्यकता नहीं है । मैं अपनी माँके घर आयी हूँ, तुम्हारी माँके घर नहीं आयी हूँ ।'

बस, मालतीको तो यही चाहिये था । सुनते ही साड़ीको ऊपर खोंसकर रसोई-घरसे बाहर निकली, 'देखो नील्र बहन ! मुँह सम्हालकर बात करना । मेरी माँके घर तुम क्यों आओगी ? और यहाँ बहुत ज्यादा दुःख लगता हो तो जाओ ससुराल । किसलिये माँके पास हो ? विवाह होनेके बाद तुम्हारी शोभा ससुरालमें ही है, भाईके यहाँ नहीं; समझी ? वहाँ कुरसीपर बैठी रहना । मैं कुछ कहने नहीं जाऊँगी । तुमसे कुछ काम तो होता नहीं है, सबको यह दिक्कत होती है । अब तो तुम पूरे जीवन मेरे माथे आकर पड़ी हो । ये तुम्हारे भाईका घर है, माँका नहीं । क्या समझी ? तुम बार-बार कहती हो—मेरी माँका घर, मेरी माँका घर है । सो तुम्हारी माँ-(सास-)का घर तो वहाँ देहातमें है, वहाँ चली जाओ । आरामसे पड़ी रहना । यहाँ मेरी छातीपर दाल मत दलो ।'

'भाभी ! मेरी माँ यहीं हैं, इसलिये यहाँ आयी हूँ । नहीं तो तुम्हारे द्वारपर काला कुत्ता भी नहीं आनेका । मुझे तुम्हारे स्वभावका पता है । कोई आ जाय यह तुम्हें सहन नहीं होता ।'

'तो तुम अपनी ससुराल जाओ न ? क्यों मेरे ऊपर उपकार करने आयी हो ? क्रोधमें अन्तिम वाक्य बोलती

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हुई मालती रसोई-घरमें चली गयी। अंदर जाकर घड़ेमेंसे प्याला भरकर पानी पिया और आँखोंमें आये आँसू पोंछे।

थोड़ी देरमें रसोई बनाकर ढककर छोटे बबलूको लेकर एक ओर बैठ गयी।

नीलम थालीमें चावल लेकर पासमें बैठी अपनी माँके पास आ गयी और बोली—'माँ! यह कबतक चलेगा? भाभीके ऐसे शब्द मुझसे सहन नहीं होते।'

माँने पुत्रीको देखकर सीधा-सा उत्तर दिया—'मैं क्या करूँ बेटी! यह तो जैसे तेरे, ऐसे ही सबके; तुझे ही कहाँ अपने ननद-देवर अच्छे लगते हैं?'

नीलम बोली—'माँ! माँ, तू भी ऐसा बोलती है। मैंने तो कोई काम किया ही नहीं। मेरे माथे तो सास, ननद और देवरकी जवाबदारी है। जो अविनाश (मेरा पति) बदली करा ले तो मैं तैयार हूँ, परंतु सबकी चाकरी मुझसे नहीं होती।'

माँने समझाते हुए कहा—'बेटी! जैसा तू सोचती है, ऐसा ही सब सोचते हैं। मैं तेरी माँ हूँ, परंतु मालतीकी भी तो सास हूँ। ये भी कहेंगी कि मुझसे सास-ननदका काम नहीं होता। बेटी! बापके घर हाथी, घोड़े हों तो भी पुत्रीके किस काम के! ससुरालमें झोंपड़ी ही हो तो क्या बड़े बापकी बेटीको उसे छोड़ देना चाहिये?'

नीलमने आसूँ गिराते हुए कहा—'माँ! तू भी ऐसा बोलेगी मुझे पता नहीं था। तू भी भाभीके वशमें हो गयी है। मैं तुम लोगोंको क्या भारी पड़ती हूँ? दो बार खाती हूँ, इतना ही न? भाभी इतना अधिक बोलती है, उसमें तू भी सहयोग देती है। मैं क्या दासीकी तरह इसके बच्चोंको खिलाऊँ और सेठानी आवें तबतक सब तैयारी करके रखूँ? यही न।'

माँ बोली—'ना बेटी, यह नहीं। मालती नौकरी-परसे आवे तो तू थोड़ी सहायता करे तो इसे सुविधा रहे, और क्या? तू कुछ भी नहीं करती तो उसे चिढ़ लगती है।'

नीलम बोली—'माँ! मैं यहाँ रहूँ, यह तुझे भी अच्छा नहीं लगता। ठीक है, मैं कुछ मार्ग निकालूँगी।'

'कहाँ जाती है बेटी!'

'अपनी सहेली मीनाके घर जाकर आती हूँ।'

बबलूको लेकर घर आते ही बहू मालतीने साससे पूछा—'माँ! नीलम बहन कहाँ गयी हैं?'

'अभी आती है, अपनी सहेलीके यहाँ गयी है।'

बहू मालती बोली—'माँ! मुझे तो यह 'नाटक' अच्छा नहीं लगता। मुझसे नीलम बहनके प्रति कितने कठोर शब्द निकल जाते हैं।'

सासने समझाया—'देख मालती! तू नीलमका भला चाहती हो तो तुम्हें यह 'नाटक' करना ही पड़ेगा। तुझे रामायणका प्रसंग याद है न? कैकेयी रामको बहुत चाहती थी। परंतु यदि उसने वनवास नहीं दिया होता तो रामायणकी रचना नहीं होती और जिस कार्यके लिये राम-जन्म हुआ था वह अपूर्ण ही रहता। इसलिये मालती! अनुकूल तो सब मिलते हैं, परंतु प्रतिकूल बनकर भलाई करना बहुत कठिन पड़ता है। अभी तू उसे बुरी लगती है, परंतु अन्तमें इसका परिणाम अच्छा ही आयेगा। सासके अधिकारसे मैं तुझे यह 'नाटक' करनेका आदेश देती हूँ। बस, अब नीलमका आनेका समय हो गया, तू अपना कैकेयी रूप चालू रखना। कारण, अभी ससुरालसे आये, अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। इसके पति अविनाशको अभी इसके प्रति आकर्षण होगा। परंतु अधिक समय व्यतीत होनेपर मेरी बेटीकी 'न घरकी न घाटकी' दशा होगी। इसलिये मालती! मेरी बेटीका संसार चमत्कृत हो, तू

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अपना 'नाटक' चालू रखना। इतना कहकर साड़ीके छोरसे उन्होंने अपने अश्रु पोंछे।

नीलमके आते ही मालती बोली—'नीलम बहन! जरा बबलूको स्नान कराकर तैयार कर दो और फिर आओ रसोईमें सहायता करने।'

'भाभी! मैं एक साथ कितने काम करूँ?'

'अरे, तुमसे दो काम नहीं होंगे? मैं तो सुबह ५ बजेसे उठकर केल्हूके बैलकी तरह काममें जुट जाती हूँ। मैंने तो कल तुम्हारे भाईसे कह दिया कि मुझसे सबके नखड़े सहन नहीं होते। अपने अलग रहेंगे। मैं, बबलू और आप—तीन प्राणी। हमें सास-ननदसे क्या लेना-देना।'

मालती आफिस जानेको तैयार हुई। बबलूको रोते हुए देखकर बोली—'अरे नीलम बहन! बबलूकी पट्टी तो बदल दो।' इतना कहकर मालती हाथमें पर्स लेकर बाहर निकल गयी।

माँ मन-ही-मन प्रसन्न होती थी। 'नाटक'का प्रभाव धीरे-धीरे हो रहा था। नीलम रसोई घरसे बाहर आयी, 'लो, मेम साहब आदेश देकर चली गयीं। माँ! तू भी बहूकी नौकर हो गयी है। तू भी उससे कुछ नहीं कह सकती।'

'मैं क्या कहूँ बेटी! मैं तो अब हाथ-पैर-बिनाकी हो गयी हूँ। लड़का खिलावे तो खाना।'

थोड़ी देर पश्चात् नीलमको पत्र पढ़ते देखकर माँने पूछा—'किसका पत्र है?'

'माँ! अविनाशका है। उन्होंने मुझसे अन्तिम उत्तर माँगा है। किसी भी संयोगमें वे माँ और भाई-बहनसे अलग नहीं रह सकते। मुझे इस शर्तपर रहना हो तो बुलाने आवें—ऐसा लिखा है।'

'बेटी! तेरा क्या विचार है?'

नीलम रोती हुई माँसे लिपट गयी—'माँ! मैं जाना चाहती हूँ। भाभीके व्यङ्ग्य सुननेकी अपेक्षा सास-ननदकी सेवा अच्छी। किसी दिन तो यश मिलेगा।' पुत्रीके विचार सुनते ही माँके आनन्दका पारावार नहीं रहा। वे मन-ही-मन जगदम्बाकी प्रार्थना करने लगीं—'माँ! तूने मेरी पुत्रीको सद्बुद्धि दी।' अपने नाटककी सफलताकी प्रसन्नता और बेटीके चले जानेके दुःखके विचारके साथ ही शामकी रसोई माँने बनायी। शामको जब मालती घर आयी तो नीलम पूरी बेल रही थी और सास सेंक रही थी। बबलू एक तरफ खिलौनासे खेल रहा था।

'लाओ, नीलम बहन! मैं बेलूँ।'

'ना, ना, भाभी! तुम रहने दो। ये तुम्हारे लिये चाय रखी है, इसे पीकर पहले आप बच्चेको लो। बेचारा कबसे राह देखता है।' एक सच्ची गृहिणीकी तरह नीलम बहनको बोलते देखकर मालतीने हाथके संकेतसे साससे पूछा, आज किस दिशामें सूर्य निकला है?

सासने भी संकेतसे उत्तर दे दिया, 'शुभ समाचार है। अविनाश आनेवाला है नीलमको बुलाने।'

'ओहो, इसीलिये बहनजी ऐसी हो गयी हैं। हमारे अविनाश भाई आनेवाले हैं····इसलिये।' इतना कहकर मालतीने ननदके कपोलपर प्यारसे हाथ स्पर्श कराया।

'भाभी! मुझे क्षमा करना। मैंने तुम्हें छः महीना बहुत परेशान किया।'

'अरे, मेरी पगली बहन! ऐसा मत बोलो। मैंने ही कहाँ कुछ कहनेमें कसर छोड़ी है। तुम्हें तो मुझे क्षमा करना चाहिये।'

और भाभी-ननद एक-दूसरेसे प्रेमसे गले मिलीं। माँ यह ननद-भौजाईका शुभ मिलन देखकर और अपने रचे हुए 'नाटक'का यह तीसरा अन्तिम दृश्य देखकर मन-ही-मन प्रसन्न हो रही थीं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कथामृतम्

कलिनाशक नल-दमयन्ती-चरित्र

(श्रीहरिकृष्णजी दुजारी)

शास्त्रानुमोदित जीवन ही आदर्श जीवन है । सत्त्वगुणमय, सदाचारमय जीवन मानव-जीवनकी खरी कसौटी है । एक ओर सदाचारयुक्त धीरता, वीरता, जितेन्द्रियता, सत्परायणता, वेदवेत्ता, ब्राह्मण-गौ-भक्ति, उदारता आदि पुरुषोंके अलौकिक गुण हैं, दूसरी ओर पतिपरायणता, सहिष्णुता, धीरता, लज्जा आदि नारीकी शोभा हैं । आजकल संसारमें अधिकतर व्यक्तियोंमें कलियुग प्रवेश कर गया है । कलियुगका प्रभाव ही दुःखोंकी सृष्टि करता है जिसका मुख्य कारण सदाचार एवं शास्त्रानुमोदित आचार-विहीनता है । सदाचारी व्यक्ति सुखी और सम्पन्न रहता है, उसपर कलिदेव अपना प्रभाव नहीं डाल सकते । प्राचीन कालमें सदाचार-गुण-विहीन व्यक्ति बहुत कम पाये जाते थे । मनुष्य आजकी अपेक्षा बहुत सुखी और सम्पन्न थे । उस कालमें किसी सदाचारी व्यक्ति-विशेषपर रुष्ट होनेपर भी कलिदेवको उस व्यक्तिपर अपना प्रभाव डालनेमें अत्यन्त कठिनता होती थी । यदि अपने हठवश कलिदेव ऐसे किसीपर प्रभाव डाल भी देते थे तो उन्हें हार खानी पड़ती थी । सदाचारीके कोपसे कलिदेवका बचना अत्यन्त कठिन हो जाता था और उन्हें अन्तमें क्षमा माँगनी पड़ती थी । सदाचारी जनोंकी इतनी महिमा है कि आज भी उनकी गाथा, उनके गुण मनन करनेसे, पढ़नेसे कलियुगका प्रभाव नष्ट होता है । उनकी चर्चा कलियुगके दोषोंका नाश करनेवाली है ।

प्राचीनकालमें निषधदेशके राजा वीरसेनके पुत्र नल बड़े ब्राह्मणभक्त, वेदवेत्ता, शूरवीर एवं सत्यवादी महाराजा हुए हैं । महाराजा नल बहुत रूपवान् एवं अश्व-सञ्चालनकी कलामें बड़े निपुण थे । उदारता, जितेन्द्रियता, प्रजाजनोंकी भलाई करना आदि विशिष्ट गुण उनमें विद्यमान थे । देवताओंके सिरमौर इन्द्रसे उनकी तुलना हो सकती थी । वे सभी उत्तम गुणोंसे सम्पन्न थे ।

उसी कालमें विदर्भ देशमें महायशस्वी एवं पराक्रमी राजा भीम शासन करते थे । उन्हें सभी तरहकी सम्पन्नता प्राप्त थी; परंतु उनके कोई संतान नहीं थी । ब्रह्मर्षि दमनकी उन्होंने बहुत सेवा की । ब्रह्मर्षिकी कृपासे राजा भीमको चार बड़ी तेजस्वी संतानें—एक कन्या एवं तीन पुत्र प्राप्त हुए । चारों संतानें गुण-सम्पन्न थीं । पुत्रीका नाम दमयन्ती रखा गया । दमयन्ती बड़ी रूपवती थी । उसके रूप-लावण्य एवं सौन्दर्यकी उपमा एकमात्र भगवती लक्ष्मीसे हो सकती थी । अनेक दासियाँ एवं सखियाँ वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित हो उसकी सेवामें लगी रहती थीं । माता-पिताने दमयन्तीके चरित्र-गठनकी शिक्षाका बहुत ध्यान रखा । सती-साध्वी रमणियोंकी कष्टसहिष्णुता एवं अविचल पतिपरायणता-की गाथाओंका दमयन्तीके हृदयपर गहरा प्रभाव पड़ा । युवावस्थामें प्रवेश करते ही दमयन्तीकी शोभा और अद्भुत हो गयी । वैसी सुन्दरता मनुष्योंमें न तो कभी देखी ही गयी थी और न सुनी ही गयी थी । दमयन्तीके रूपलावण्यको देखकर सभी वर्गके लोग मुग्ध हो जाते थे ।

नरश्रेष्ठ नल समय-समयपर विदर्भदेशसे आये यात्रियोंसे नारीभूषण दमयन्तीके रूप-लावण्य एवं गुणोंकी चर्चा सुना करते थे । उधर दमयन्ती भी कामदेवके समान सौन्दर्यवाले राजा नलके गुणोंकी चर्चा सुना करती थी । एक दूसरेके सौंदर्य एवं गुणोंकी प्रशंसा सुनकर वे लोग परस्पर एक-दूसरेपर मोहित हो गये थे । एक दूसरेको वे प्राप्त करनेके चिन्तनमें लीन रहने लगे ।

एक दिन निषधनरेश नलने एक सुन्दर सुवर्णमय हंसको अपने उद्यानमें पकड़ लिया ।* हंसने नरश्रेष्ठ

* पौराणिकी गाथा है कि वह हंस भगवान् शंकरके एक अंशसे अवतरित हुआ था । पूर्वजन्ममें महाराजा नल और

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नलसे मानवी वाणीमें कहा—'राजन् ! मैं तो आपका प्रिय कार्य करनेके लिये आया हूँ । मैं दमयन्तीके पास जाकर आपके गुणोंकी प्रशंसा करूँगा, जिससे वह आपको अपना वर चुने।' राजा नलने ऐसा सुनते ही उसे छोड़ दिया।

वह हंस अपने अन्य साथी हंसोंके साथ उड़ता हुआ सुन्दरी दमयन्तीके उद्यानमें पहुँचा । दमयन्ती अपनी सखियोंके साथ उद्यानमें घूम रही थी । स्वर्णमय हंसको देखकर दमयन्ती उसे पकड़नेके लिये दौड़ी । सुन्दरी दमयन्ती ! सुनो, हंसने मानवी वाणीमें कहा—'निषधनरेश नलसे रूपवान् देवता, गन्धर्व, मनुष्य, नाग एवं राक्षसोंमें कोई नहीं है । वे सौन्दर्यमें मूर्तिमान् कामदेव हैं, सर्वगुणसम्पन्न हैं, पुरुषोंमें मुकुटमणि हैं और सब तरहसे तुम्हारे उपयुक्त वर हैं ।' दमयन्तीने सुनकर कहा—'हंसदेव ! आप यह संदेश निषधराजसे भी निवेदन करें ।' हंसदेवने पुनः निषधदेश लौटकर राजा नलसे सब वृत्तान्त निवेदित किया ।

राजा नलके प्रति अनुरक्त हुई दमयन्ती अनमनी-सी रहने लगी । वह युवावस्थामें पूर्णरूपसे प्रवेश कर चुकी थी । माता-पितासे उसके मनोभाव छिपे नहीं रहे । राजा भीमने दमयन्तीके लिये स्वयंवर रचना ही श्रेष्ठ समझा । राजा भीमने दमयन्तीके स्वयंवरका निमन्त्रण दूतोंद्वारा चारों दिशाओंमें भिजवा दिया । इस समाचारसे सभी नरेश विदर्भराज भीमके यहाँ पहुँचने लगे ।

स्वर्गलोकमें देवर्षि नारदजीने देवराज इन्द्रको दमयन्तीके स्वयंवरकी सूचना दी । 'देवराज ! इस जगत्में दमयन्तीके समान सौन्दर्यशालिनी कोई नारी नहीं है, वह अलौकिक गुणोंसे सम्पन्न स्त्रीरत्न है ।' देवर्षिकी बातें सभी लोकपालोंने सुनीं । देवराज इन्द्र, वरुणदेव, अग्निदेव एवं यमराज——ये सभी दमयन्तीको पानेके लिये ललचा उठे और ये लोकपाल स्वयंवरमें शामिल होनेके लिये रवाना हो गये ।

दमयन्तीके स्वयंवरके समाचार सुनकर निषधराज नल भी उसमें शामिल होनेके लिये रवाना हुए । मार्गमें देवताओंने उन्हें देखा । देवतागण महाराज नलसे रूप-वैभवको देखकर आश्चर्यचकित हो उठे और मन-ही-मन दमयन्तीको प्राप्त करनेका संकल्प छोड़ने लगे । देवताओंने चतुरतासे काम लेनेकी युक्ति सोची । वे लोग मार्गमें ही महाराज नलके पास पहुँचे और उनसे बोले—'नरश्रेष्ठ ! हम लोगोंको आपकी सहायताकी आवश्यकता है, आप हमारे दूत बन जायँ ।' 'आपलोग कौन हैं ? मैं आज आप लोगोंकी सेवा करनेको तैयार हूँ ।' परदुःखकातर महाराजा नलने वचन दिया। चारों देवताओंने अपना परिचय दिया और कहा—'हे निषधराज ! आप दमयन्तीके पास हमारे दूत बनकर जायँ। उसे हमारा संदेश दें कि महेन्द्र, अग्निदेव, वरुणदेव एवं यमराज उसके स्वयंवरमें जा रहे हैं । वह हम लोगोंमेंसे किसी एकको अपना पति चुन ले ।'

नरभूषण नल बड़े असमंजसमें पड़ गये । उन्होंने देवताओंसे अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहा कि हम स्वयं इसीलिये स्वयंवरमें जा रहे हैं और हम उसके महलमें घुस भी नहीं सकते हैं ।' देवताओंने उन्हें अपने वचनकी याद दिलायी और कहा—'आप जायें, हमारे प्रभावसे दमयन्तीके अतिरिक्त आपको और कोई नहीं देख सकेगा ।'

महाराजा नल दमयन्तीके पास महलमें पहुँचे । निषधराजका अद्भुत सौन्दर्य तथा मनोहर कान्ति देखकर दमयन्ती आश्चर्यचकित हो उठी । उसने ऐसा अनूठा रूप कभी नहीं देखा था । महाराजा नल भी दमयन्तीकी लावण्य-सुषमा देखकर प्रसन्न हो उठे । उनके

राजकुमारी दमयन्ती एक भील और भीलनी थे । वे भगवान् शंकरके अनन्य भक्त थे । किसी पवित्र कार्यके सम्पादनमें उन्होंने अद्भुत त्याग किया और उनका बिछोह हो गया था । भगवान् शंकरने ही अपने एक अंशसे हंसके रूपमें अवतरित होकर इनका पुनः इस जन्ममें मिलन करवाया । —शिवपुराण

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मनमें उसकी दिव्य कान्ति देखकर उसके पानेकी लालसा प्रज्वलित हो उठी। परंतु उन्हें याद था कि वे देवताओंके दूत बनकर आये थे। उनका धैर्य अटल रहा। उन्होंने दमयन्तीको अपने आनेका रहस्य बताया एवं देवताओंका संदेश सुनाया। दमयन्तीने श्रद्धापूर्वक देवताओंको प्रणाम किया और नरश्रेष्ठ नलसे निवेदन किया—'महाराज! मैंने अपना सब कुछ आपके चरणोंमें समर्पित कर दिया है। मुझे आपके अतिरिक्त किसीको भी वरण नहीं करना है।' नलने कहा—'राजकुमारी! देवतागण शक्तिशाली होते हैं, उनके दण्डके भयसे सभी धर्मरत रहते हैं, उनके पास नाना प्रकारके भोग-वैभव रहते हैं। तुम्हें उन्हींमेंसे किसीको वर चुनना चाहिये।' महाराजा नलकी बात सुनकर विदर्भकुमारीके नेत्र शोकाश्रुओंसे भर गये और वह थर-थर काँपने लगी, परंतु उसका निश्चय अटल रहा। उसने पुनः निवेदन किया—'राजन्! मैंने आपको अपना पति चुना है, मैं आपको इसी समय वरण करना चाहती हूँ।' 'देवि! इस समय मैं देवताओंका दूत हूँ और मुझे अपने स्वरूपकी रक्षा करनी है'—नलने उत्तर दिया। बहुत विचार करके दमयन्तीने दृढ़तासे कहा कि स्वयंवर-सभामें सब देवताओंके सम्मुख ही आपको वरण कर लूँगी, जिससे उन्हें कोई दोष नहीं लगेगा। एकान्तमें पूर्ण युवावस्थामें नल और दमयन्तीके इस प्रकार मिलनेपर भी उन दोनोंके मनमें कोई भी मनोविकारका उदय नहीं हुआ। यह उनकी सच्चरित्रताका पक्का प्रमाण था।

राजा नल देवताओंके प्रभावसे उसी तरह महलसे गुप्त रूपसे बाहर आ गये और लोकपालोंको दमयन्तीके अपने ही साथ प्रणयके दृढ़ निश्चयकी सूचना दी।

शुभ समय, शुभ तिथि एवं पुण्यदायक अवसर आनेपर राजा भीमने समस्त भूपालोंको स्वयंवर-सभामें बुलाया। नाना प्रकारके दिव्य अलङ्कारोंसे रङ्गमण्डप अलंकृत था। दमयन्तीको पानेकी लालसा लिये भूपालगण भिन्न-भिन्न आसनोंपर विराजमान होने लगे। अनुपम लावण्यमयी दमयन्तीने रङ्गमण्डपमें प्रवेश किया।

लोकपालगण भी स्वयंवरमें पधारे थे। उन्होंने पुनः चतुरता की। चारों लोकपाल ठीक नलका रूप-वेष धारण करके राजा नलके आस-पास ही बैठ गये। भीमकुमारी दमयन्ती बड़े असमंजसमें पड़ गयी। एक ही आकृतिके पाँच नल उसको एक साथ बैठे दिखायी दिये। उसने अनेक युक्तियोंसे राजा नलको पहचाननेकी कोशिश की। देवचिह्न जो उसने सुन रखे थे, उनके आधारपर भी वह देवताओंको पहचान नहीं सकी। अन्तमें दमयन्ती देवताओंकी ही शरणमें गयी और प्रार्थना करने लगी—'मैंने हंसकी बात सुनकर निषधनरेश नलका पतिरूपमें वरण कर लिया है। यदि मैं मन-वाणी एवं क्रियाद्वारा कभी सदाचारसे च्युत नहीं हुई हूँ तो इस सत्यके प्रभावसे देवतालोग मुझे राजा नलकी ही प्राप्ति करावें।' अनेक प्रकारसे दमयन्ती देवताओंसे अनुनय-विनय करने लगी। दमयन्तीका राजा नलके प्रति दृढ़ अनुराग देखकर—उसका करुण विलाप सुनकर देवतागण द्रवित हो गये और उन्होंने दमयन्तीको अपनोंको पहचाननेकी शक्ति दे दी। दमयन्तीने देखा—देवताओंके शरीरपर पसीनेकी बूँदे नहीं हैं, उनकी पलकें गिर नहीं रही हैं, उनकी पहनी पुष्पमालाएँ कुम्हलायी हुई नहीं हैं, उनपर धूल-कण नहीं पड़े हैं, उनकी परछाई नहीं पड़ती है एवं उनके पैरोंसे पृथ्वी-तलका स्पर्श नहीं होता है।' दमयन्तीने अपने स्वामी महाराजा नलको तुरंत पहचान लिया और लोकपालों एवं सभीके सम्मुख पुण्यसे नलका वरण कर लिया। उनके गलेमें सुन्दर फूलोंका हार डाल दिया। सभी देवताओं एवं महर्षियोंने राजा नल एवं दमयन्तीकी जोड़ीको आशीर्वाद दिया और उनके सौभाग्यकी सुकामना की। (क्रमशः)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् (२)

कब खायें ?—भूखकी अनुभूति होनेपर यह समझना चाहिये कि शरीरको आहारकी आवश्यकता है और भूखके अभावमें भोजन करना रोगको निमन्त्रण देना है।

जिस प्रकार पसीना आनेपर त्वचापर एक विशेष प्रकारकी अनुभूति होती है, ठीक उसी तरह आमाशयमें पाचक रस छूटनेपर भूखकी अनुभूति होती है। भूखका सीधा सम्बन्ध पाचक रसके स्रावसे है।

भूखका अर्थ है, अन्नको पचानेके लिये आमाशयमें पाचक रस तैयार है। बाहर अग्निसे पकाकर मनुष्य आहार ग्रहण करता है, ठीक उसी तरह क्षुधारूपी अग्निसे जठर खाद्य-पदार्थोंको पकाकर (पचाकर) पोषक रस तैयार करता है, जिससे शरीरके रक्त-मांस, मज्जा तथा आवश्यक कोषोंका निर्माण होता है। जिस प्रकार कम अग्निमें मोटी लकड़ी डालनेपर अग्नि बुझ जाती है और घरभरमें धुआँ भर जाता है, उसी प्रकार कम क्षुधा होनेपर आहार लेनेसे उपर्युक्त अग्निके अभावमें आहारसे वायुप्रकोप (गैस), कब्ज आदि रोग आरम्भ होते हैं।

अतएव यह एक सीधा और सरल नियम है कि भूख लगनेपर खायें और भूख न लगनेपर भोजन न करें। घड़ी देखकर आफिस टाइमपर नहीं, बल्कि भूखको देखकर भोजन करना चाहिये।

कभी-कभी भूख स्पष्ट नहीं होती, खुलकर नहीं लगती। इस प्रकार शङ्कास्पद क्षुधाकी अवस्थामें एक नियम स्मरण रखें कि क्षुधाका स्पष्ट संकेत न होनेपर भोजन न किया जाय और शौच जाने या न जानेके बारेमें शङ्का हो तो शौच अवश्य जाना चाहिये।

भोजनके पूर्व क्षुधाका स्पष्ट संकेत आरोग्यकी दृष्टिसे नितान्त आवश्यक है। क्षुधाकी अनुभूति आरोग्यकी निशानी है। आज समाजमें अजीब स्थिति है। जो व्यक्ति क्षुधासे त्रस्त है, वह भोजनके अभावसे पीड़ित है और अमीर लोगोंके पास खानेका अधिक सामान है तो भूख नहीं है। आधुनिक पाकशास्त्रने खान-पानकी भरपूर और आकर्षक व्यवस्था उनको ध्यानमें रखकर की है, जिसको भूख नहीं है। इससे आरोग्यकी समस्या ज्यादा उलझ गयी है। एक ओर लोग भूखों मर रहे हैं तथा दूसरी ओर लोग अधिक खाकर विभिन्न प्रकारके रोगोंसे ग्रस्त हैं। तरह-तरहके नये-नये रोग सामने आ रहे हैं। सारांश, जहाँ भोगवृत्ति है, वहाँ रोगसे बचनेके लिये आधुनिक सभी उपाय करना अन्तमें व्यर्थ सिद्ध होता है। पर यही उपाय संयम है। सभी जीर्ण रोगी थककर संयमका आधार लेकर यथासमय स्वास्थ्यलाभ करते हैं। मिताहार शरीरमें अमृतका काम करता है और अति आहार विष बनकर अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करता है।

बच्चोंको लाड़-प्यारमें तथा मेहमानोंके आदर-सत्कारमें अधिक खिलानेका जो आग्रह रखते हैं, वह अन्तमें कितना हानिकारक है, यह सहज समझमें आने-जैसी बात है। इससे खाद्य वस्तु तथा शरीर दोनों बिगड़ते हैं। इस प्रकार स्वस्थ जीवनके लिये भूखका बड़ा महत्त्व है। भूख न लगनेपर हमें यह खोज करनी चाहिये कि हमारे आहार-विहारमें कौन-सी भूल है।

सामान्यतः भूख न लगनेका सबसे बड़ा कारण हमारे जीवनमें श्रमका अभाव है। श्रमकी उपयोगिता स्वास्थ्य-रक्षा एवं सुस्वास्थ्य-संवर्धनके लिये नितान्त आवश्यक है। श्रमकी विस्तृत उपयोगिताकी चर्चा आगे की जायगी।

कैसे खायें ?—भोजन शान्त मनसे, एकाग्र होकर करना चाहिये। दुखी, क्षुब्ध या अशान्त मनःस्थितिसे भोजन नहीं करना चाहिये। बहुत ही जरूरी हो तो लघु या तरल आहार किया जाय।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

रोटी या कड़ी वस्तुओंको खूब चबाकर खाना चाहिये। रोटीको साग या चटनी-जैसी सूखी वस्तुके साथ चबाकर खानेसे उसका पाचन मुँहमें ही लारके द्वारा शुरू हो जाता है। रोटीको दाल या पतली वस्तुमें भिगोकर खानेसे मुँहमें उसका पाचन नहीं होता। कोई भी खाद्य वस्तु हो, उसको अच्छी तरह चबाकर खानेसे उसपर पाचक रसोंका प्रभाव आसानीसे हो जाता है। दाँतसे पूरा काम न लेनेपर दाँत कमजोर हो जाते हैं और आमाशयसे दाँतका काम होने लगता है, जिसके कारण आमाशय कमजोर हो जाता है।

भोजनके समय खाद्य पदार्थको प्रभुका प्रसाद मानकर सेवन करना चाहिये। जो लोग भोजनके समय उसमें मिले हुए नमक, मसाला, मिर्च आदिकी टीका-टिप्पणी करते हैं, उनके आमाशयमें बिना पचा हुआ अन्न पड़ा हुआ है और सच्ची भूख नहीं लगी है, ऐसा मानना चाहिये। सच्ची भूख लगनेपर जो भी भगवत्-कृपासे सामने आता है, उसको वह अत्यन्त स्वाद तथा प्रेमपूर्वक खाता है। स्वाद भूखमें होता है, वस्तुमें नहीं।

भोजनके समय टीका-टिप्पणी करनेसे मन खिन्न होता है और पाचक रसके स्रावमें बाधा उत्पन्न होनेके कारण पाचन-कार्यमें बाधा उत्पन्न होती है।

अतएव भोजनका छोटा ग्रास लेकर शान्त चित्तसे अच्छी तरह चबाकर खाना चाहिये। जल्दबाजीमें भोजन करनेसे दाँतका काम भी आँतको करना पड़ता है, जिससे पाचन-यन्त्रपर अधिक जोर पड़ता है। दीर्घकालीन दुर्बलतासे पाचन-यन्त्रके विभिन्न रोग खड़े हो जाते हैं।

मिताहार—कितना खायें, यह प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आहारकी मात्रापर संयमपूर्वक नियन्त्रण रखना ही सबसे कठिन है, लेकिन आवश्यक है। मिताहारी व्यक्ति प्रायः स्वस्थ रहता है। मिताहारी व्यक्ति अगर कभी अल्पमात्रामें राजसिक या तामसिक आहार कर ले तो उससे शरीरको विशेष नुकसान नहीं होता।

इसके विपरीत अगर सात्त्विक आहारका प्रतीक दूध और फल अधिक मात्रामें लें, तो खा लेनेपर उनका गुण तामसिक हो जाता है, इसका भान बहुत कम लोगोंको है। सामान्यतः दूध, फलपर रहनेवाले व्यक्ति मात्राका ख्याल नहीं रख पाते; क्योंकि इस आहारसे पेट हलका और खाली-खाली लगता है और भूख-सी मालूम होती रहती है।

इसलिये दूध और फल अधिक मात्रामें खाया जाता है, जिससे शरीर और मन दोनों अस्वस्थ रहते हैं। मिताहार स्वस्थ जीवनका सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। और फल-दुग्धाहारमें भी मिताहारका ध्यान रहना चाहिये।

अति आहारकी आदत—भोजन या खाद्य पदार्थ आवश्यक मात्रामें खाना चाहिये, लेकिन बचपनसे ही पेट ठूँस-ठूँसकर भरनेकी आदत डाली जाती है। माँ बच्चेसे अपना पिण्ड छुड़ानेके लिये बच्चेके हाथमें खानेकी वस्तु दे देती है।

घरमें माँ बच्चेको खानेकी वस्तु देकर उसको खुश रखती है। मनको बहलानेके लिये आँख, कान तथा बुद्धिका भी आश्रय लेना उचित है, लेकिन हमलोग अधिक भार जिह्वापर डालते हैं, जिससे हमारा पेट तो बिगड़ता ही है और पाचन बिगड़नेपर मन भी अस्वस्थ रहता है।

इस प्रकार अति आहारके अभ्यासके कारण आमाशयके आकारमें आश्चर्यजनक विस्तार होता है और जबतक वह गड्ढा पूरी तरह नहीं भरता, तबतक ऐसा लगता है कि पेट भरा नहीं है और भूख बाकी है। सामान्यतः लोग पेट भरनेके लिये खाते हैं या जीते हैं। अति आहारसे आमाशयकी आकृतिमें वृद्धि होती है और मिताहार या अल्पाहार करनेसे आमाशयका आकार अपेक्षाकृत छोटा होता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

गोरक्षा जीवनकी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता

(श्रीश्री १०८ स्वामी विशुद्धानन्दजी महाराज परिव्राजक)

गोरक्षा मानव-समाजका परम धर्म है । आज मानव-समाजकी असफलताका मूल कारण है—स्वधर्मसे उसकी आस्थाका हट जाना । धार्मिक भावनासे ही विश्वमें सामञ्जस्य—समन्वय भावनाका अभ्युदय हो सकता है । जबतक अपने पूर्वजोंकी धर्मनिष्ठापर पूर्ण विश्वास रहा, तबतक भारतके धर्मवीरोंको कभी भी धर्ममें असफल न होना पड़ा । आज भी पूर्व ऋषियोंकी समाधिसम्भूत अमृतमय वाणीपर पूर्ण निष्ठा रखनेकी अपेक्षा है । हमारे नवयुवक आस्तिक भ्राताओ ! विशेषरूपसे गोरक्षाके लिये कटिबद्ध हो जाओ और जगह-जगह गोशालाओंका आयोजन करो । साथ ही प्रत्येक गृहस्थ भाई (हिंदूमात्र)को एक-एक गौ पालनेका दृढ़ नियम बना लेना चाहिये । पूर्वमें महाराज दिलीप-जैसे गोरक्षक होते आये हैं । भगवान् गोपालनन्दन श्रीकृष्ण तथा मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् राम-जैसे अवतार गोरक्षाके लिये ही हुए । गोस्वामीजी महाराजने रामचरितमानसमें स्पष्ट ही लिखा है कि गो-ब्राह्मण और सुर-संतकी रक्षाके लिये भगवान् अवतार लेते हैं—

'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार ।'

समय-समयपर ऐसे भीषण अवसरोंपर महान् पुरुष भी गोरक्षार्थ अवतीर्ण होते रहे हैं । हमारे ऋषियोंने गोरक्षाको कितना महत्त्व दिया है, इसका स्पष्टीकरण रामायण बालकाण्डमें है, जब अघ (पाप) बहुत बढ़ा, तब पृथ्वी गोरूप धारण करके भगवान् ब्रह्माके पास गयी—

सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका ।
सँग गोतनु धारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका ॥

पृथ्वी जानती थी कि गोरूपधारिणीकी प्रार्थनापर ब्रह्मासे लेकर देव-मनुष्य सभी विचार करके उसके कष्ट-निवारणार्थ अपने प्राणोंतकको न्योछावर करनेके लिये प्रस्तुत हो जायँगे । और ऐसा ही हुआ भी । भगवान्को गोरूपधारी पृथ्वीकी प्रार्थना सुनकर अवतार लेना पड़ा । हिंसाकी हद—अनर्थकी सीमा भी गोहिंसातक ही है । तभी तो विवेक-भ्रष्ट, नष्ट होनेवाले रावणने अपने सेवकोंको यही आज्ञा दी थी कि—

जेहिं जेहिं बिप्र धेनु द्विज पावहिं । नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं ॥
द्विजभोजन मख होम सराधा । सब कै जाइ करौ तुम्ह बाधा ॥

राक्षस जानते थे कि जबतक यज्ञ-हवन-ब्राह्मण-भोजन होते रहेंगे, तबतक हमारी दाल नहीं गलेगी, इसलिये उन्होंने यज्ञ-हवन-द्विजभोजन आदिको नष्ट करनेका प्रयत्न सोचा । और ये सब दूध-घी आदिसे ही सम्पन्न होते हैं, इससे धार्मिक कृत्योंके उद्गमस्थान गायको ही नष्ट कर देना चाहिये । वही नीति आज भी भारतवर्षमें बर्ती जा रही है । अतः यज्ञ-हवनादि कितने कामकी चीजें हैं, इस बातको समझनेकी आज सबसे बड़ी आवश्यकता भारतमें है । भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीमद्भगवद्गीतामें वर्णन किया है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

'प्रजापति ब्रह्माने कल्पके आदिमें यज्ञसहित प्रजाको रचकर कहा कि इस यज्ञद्वारा तुमलोग वृद्धिको प्राप्त होओ और यज्ञ तुमलोगोंकी इच्छित कामनाओंको देनेवाला होवे ।'

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

तथा 'तुमलोग इस यज्ञद्वारा देवताओंकी उन्नति करो और देवता तुमलोगोंकी उन्नति करें, इस प्रकार आपसमें

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कर्तव्य समझकर उन्नति करते हुए परम कल्याण (मोक्ष) को प्राप्त होओगे ।'

इस लक्ष्यकी पुष्टिके लिये यहाँ शुक्ल यजुर्वेदकी माध्यंदिन शाखा अध्याय ३१से तीन मन्त्र उद्धृत किये जाते हैं—

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्। पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ ६ ॥
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः। गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ ८ ॥

'उस आदिपुरुषसे विराट् देह उत्पन्न हुआ और उस देहके ऊपर उसी देहको अधिष्ठित करनेवाला पुरुष—उसका अभिमानी एक पुरुष उत्पन्न हुआ । वह तिर्यक्-मनुष्यादिसे बढ़कर उत्पन्न हुआ । पश्चात् उस पुरुषने पृथ्वी तथा पार्थिव शरीरोंकी सृष्टि की । (जीवोंकी सृष्टिके बाद उस विराट् पुरुषने जीवोंके कर्म(यज्ञ-)को उत्पन्न किया) और उस यज्ञसे दधिमिश्र आज्य उत्पन्न हुआ । फिर उसने वायुमें उड़नेवाले तथा जंगलों एवं गाँवोंमें रहनेवाले जीव उत्पन्न किये । उस यज्ञसे अश्वादि ऊपर-नीचे दोनों ओर दाँतवाले जीव तथा बकरी-भेड़ आदि उत्पन्न हुए ।'

उपर्युक्त मन्त्रोंसे यह सिद्ध हुआ कि बिना गवादिके यज्ञादि सफल नहीं हो सकते । अतः इन पावन कर्त्तव्योंके लिये गोरक्षा अत्यन्त आवश्यक है । गोरक्षाके विषयमें सबसे प्रधान कर्तव्य विद्वान् साधु पुरुषोंका है । उनसे हमारी विनम्र प्रार्थना भी यही है कि वे अपने शारीरिक और बौद्धिक बलसे जनसमूहमें वैदिक-परम्परा-प्रतिपादित गोरक्षाकी लगन उत्पन्न करें । आज सत्तर करोड़ जनसमाज एक सूत्र-(धर्म-) में बद्ध होकर गोरक्षा करनेमें सफल हो सकता है । किंतु खेद है कि पहले तो वैदिक धर्मप्रचारक नहीं मिलते, मिलनेपर भी आपसमें संघटन नहीं हो पाता, संघटन होनेपर भी केवल भाषणों एवं प्रस्तावोंके पास करानेभरसे अपनी इति कर्त्तव्यता मान ली जाती है ।

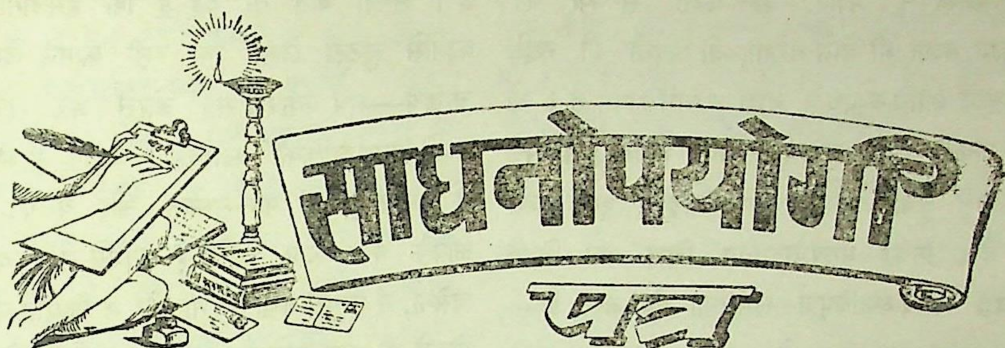
भारतवीरो ! अज्ञान-(आलस्य-व्यसनों-)की निद्रासे जागो तथा उठकर गोरक्षाके लिये कटिबद्ध हो जाओ । जैसे अँधेरी रात्रिमें प्रकाशकी अपेक्षासे दीपक जलाना ही पड़ता है; केवल दीपकी बात करनेसे अन्धकार दूर नहीं होता—

निसि गृहमध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई ।

—वैसे ही केवल गोरक्षा कहनेमात्रसे कुछ काम न चलेगा । जैसे माता-पिता आदि गुरुजनोंका वध होने देना घोर पाप है, साध्वी सती पतिव्रता पत्नीका पतिव्रत बिगड़ने देना और उसकी रक्षा न करना महान् पाप है, वैसे ही गोवध महान् पाप है । हिंदुधर्ममें इसे जघन्य अघ कहा गया है । इस महान् पाप और इससे लगे निन्दनीय कलंकको भारतके सिरसे मिटाने हेतु एक जुट होकर शान्तिपूर्ण महान् प्रयत्न होना चाहिये, गोरक्षा हम सबका परम कर्तव्य ही नहीं, जीवनका ध्येय होना चाहिये ।

तू सिंह-शावक हिंद-बालक, छोड़ अपनी भीरुता ।
पूर्वजोंके तुल्य जगमें अब दिखा दे वीरता ॥ १ ॥
वीर्यमें ही वीरता है, वीर्य धारण अब करो ।
पूज्य गोपर प्राण-संकट, दुःख उसका तुम हरो ॥ २ ॥
प्राण धारण कर रही है बाट तुम्हारी जोह रही ।
हाय तो भी हिंद-जनता विषय-सुखमें सो रही ॥ ३ ॥
घोर निद्रा छोड़ करके जग उठो अब एकदम ।
आर्यपुत्रो ! शीघ्रतासे अब बढ़ाओ निज कदम ॥ ४ ॥

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



(१)

भजन—साधन और साध्य

सप्रेम हरिस्मरण । आपका कृपापत्र मिला । आपने लिखा कि 'मैं सात वर्षसे भजन कर रहा हूँ, परन्तु मेरी आधि-व्याधि अभी दूर नहीं हुई, मेरे दुःखोंका अवसान नहीं हुआ । इसका क्या कारण है ? क्या भजन सर्वथा निष्फल है ? और यदि निष्फल है तो क्यों करना चाहिये ?' इसके उत्तरमें निवेदन है कि न तो भजन निष्फल होता है और न भजनको कभी छोड़ना ही चाहिये । बाहरके दुःख और आधि-व्याधियोंमें मूल हेतु है प्रारब्ध । भगवान् प्रारब्धके भोग भुगताकर आपको भवरोगसे मुक्त कर रहे हैं । कहीं-कहीं तो ऐसा होता है कि भजन करनेवालेको ज्यादा दुःख होता दीखता है । वह दुःख वस्तुतः भजनका फल नहीं है, वह पूर्वकृत किसी ऐसे दुष्कर्मका फल है, जो इस समय फलदानोन्मुख है । भजनका फल तो पीछे मिलेगा और भजनका फल वस्तुतः अन्तःकरणकी शुद्धि है, वह भजनसे हुए बिना रहती नहीं, चाहे दीखे भले नहीं । अमावस्याकी अँधेरी रात केवल दो ही घंटे शेष रहती है, तब भी अँधेरा ही दीखता है; परन्तु उस समय वस्तुतः रात अधिकांश बीत चुकी होती है । प्रभातका प्रकाश होनेवाला ही होता है । इस बातको वही जान सकता है, जिसके पास घड़ी है या जो नक्षत्र-विज्ञानका ज्ञाता है । जो नहीं जानता, वह तो यही समझता है कि अँधेरी रात ज्यों-की-त्यों बनी है । इसी प्रकार भजनसे होनेवाला फल जबतक पूरा प्रत्यक्ष नहीं हो जाता, तबतक वह दीखता नहीं । दीखता भी है तो जैसे किसी रोगीके ज्वर, सिर-दर्द आदि बहुत-से लक्षण मिटनेपर भी यदि थोड़ा-सा पेटदर्द भी शेष रहता है, तबतक तो वह यही कहता और समझता है कि मेरा रोग अच्छा नहीं हुआ—इसी प्रकार उसे भी दीखता है ।

फिर, यदि भजनसे दुःख हुआ सिद्ध भी हो जाय तो वह भगवत्कृपासे भजनके फलस्वरूप भजनमें अधिक लगनेके लिये ही होता है । दवा कड़वी भी होती है और मीठी भी, जैसा रोग, वैसी दवा । वैसे ही किसीको दुःखके मार्गसे ही—कड़वी दवाकी भाँति भगवान् अपने परम सुखमय धाममें ले जाते हैं । यह उनकी कृपासे ही होता है । इसलिये कभी यह नहीं मानना चाहिये कि भजन निष्फल होता है । बल्कि विश्वासी भजन-परायण भक्तको तो इसीमें प्रसन्न रहना और भजनको सफल मानना चाहिये कि भजन होता है । भजन ही भजनका फल है । इससे बड़ा फल और क्या होगा । जो लोग भजनका कोई दूसरा फल चाहते हैं, वे तो भजनका महत्त्व ही नहीं जानते ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

साधनरूपसे भजन करते-करते समयपर वह 'फलरूप' भजन भी होने लगेगा, जो अपनी ही नहीं, जगत्‌भरकी आधि-व्याधिके नाश करनेमें समर्थ है। जो पुरुष अपनी सारी इन्द्रियोंको तथा मनको पूर्णरूपसे भगवद्भावमें डुबा देते हैं, उन्हींके द्वारा ऐसा भजन होता है। उनका भगवद्भावाविष्ट चित्त जब किसी कारणवश आधि-व्याधिपूर्ण संसारकी ओर जाता है—उनके भगवत्-रस-निविष्ट नेत्र जब दुःखमय जगत्‌को देखते हैं, उनकी जरा नजर भी पड़ जाती है, उसी क्षण जगत्‌की वे आधि-व्याधियों तथा जगत्‌के वे दुःख नित्य निरामयता, शान्ति और परमसुखके रूपमें परिणत हो जाते हैं। ऐसी शक्ति आ जाती है उसके चित्त और इन्द्रियोंमें। जो चित्त अथवा जो इन्द्रियसमूह पहले जगत्‌से केवल आधि-व्याधिका ही संग्रह करते थे, जो दुःखका ही आवाहन करते थे, वे फिर अपने स्पर्शमात्रसे जगत्‌को दुःखरहित कर देते हैं; उनका संस्पर्श पाते ही जगत्‌की स्थितिमें परिवर्तन हो जाता है। वे फिर देखते हैं जगत्‌को श्रीभगवान्‌से भरा हुआ और उनका नित्य लीलाक्षेत्र, तथा जगत्‌में होनेवाली प्रत्येक घटनामें वे देखते हैं भगवान्‌का विविध रसमय मधुर लीलाविलास। ऐसा भजन जिस दिन होगा उस दिन फिर इस जीवनको केवल भजनमय बना रखनेकी ही एकमात्र विशुद्ध कामना रहेगी। फिर मुक्ति-सुखके लिये भी भजनका त्याग सहन नहीं होगा। पर ऐसा भजन भी होगा—भजन करते-करते ही। भजन ही साधन है और भजन ही साध्य है।

(२)

संकटमें कोई सहायक नहीं होगा

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। समय तो बीता ही जा रहा है। काल हमारी प्रतीक्षा क्यों करेगा? मृत्यु निश्चय ही समीप आ रही है। सच्ची बात तो यह है कि हमलोगोंको सब कामोंसे छुट्टी लेकर एक इसी काममें लग जाना चाहिये—सब प्रकारसे सब ओरसे और सारी इच्छा तथा क्रिया-शक्तिको बटोरकर। यहाँके ये भोग-वैभव, ये मित्र-बन्धु, ये मान-सम्मान और ये पद-अधिकार आपके क्या काम आवेंगे? इनमेंसे न तो कोई साथ चलेगा, न मृत्युसे बचा सकेगा और न विपरीत कर्मफलके भोगसे ही बचा पायेगा। आप संसारकी पीड़ासे तड़पते-कराहते रहेंगे, कोई आपकी तनिक भी सहायता नहीं कर सकेगा। आप जानते हैं, देख चुके हैं—आपके·······बीमार थे। कितना संकट था उनको। आप हृदयसे चाहते थे कि किसी प्रकार उनका संकट दूर हो, किसी भी खर्चसे हो। पर बताइये, आप क्या कर सके? यही परतन्त्र दशा कर्मफल-भोगमें सबकी है। मानव-शरीर सचमुच बहुत दुर्लभ है। यह भगवद्भजनके लिये ही प्राप्त हुआ है। विषयोंका सेवन तो न मालूम कितनी असंख्य योनियोंमें किया जा चुका है। अब इस मनुष्य-जीवनमें तो सब बातोंको भुलाकर—सबको छोड़कर एकमात्र श्रीहरिके चरणारविन्द-युगलका ध्यान और उनके पवित्र नामों, गुणों और लीलाओंका श्रवण, कीर्तन और चिन्तन ही करना चाहिये। संसारके भोगोंसे चित्त उपरत हो जाय और भगवान्‌की एकरस अखण्ड मधुर स्मृति हो, ऐसी साधना करनी चाहिये।

आप क्यों भूल रहे हैं, क्यों इस प्रमादमें लगे हैं? अब आपको संसारमें क्या प्राप्त करना है? जो कुछ प्राप्त किया है उससे क्या आपको वास्तविक सुख-शान्ति मिली है? फिर अधिक प्राप्त करनेपर क्या होगा? आप तो लिखते हैं, 'मेरी सुख-शान्ति घटी है, तब इस सुख-शान्ति घटानेवाले क्षेत्रमें आप क्यों सिर पटक-पटककर परेशान हो रहे हैं? छोड़िये इस झंझटको।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मत्त-मधुप बनकर लग जाइये भगवान्‌के परम मङ्गलमय परम मधुर चरणारविन्द-मकरन्दके पानमें । भगवान् बड़े दयालु हैं, बड़े प्रेमी हैं । वे आपके हृदयका भाव ज्यों ही जानेंगे, (उनके जाननेमें देर होती नहीं) त्यों ही आपको अपने नित्य नव दिव्य मधुर सुधारससे आप्लावित कर देंगे । आप निहाल हो जायँगे । मानव-जन्म सार्थक हो जायगा, कृतकृत्य हो जायगा ।

(३)

साध्वी पत्नीका त्याग बड़ा पाप है

श्रीगोयन्दकाजीके नाम खूँटीके एक भाईका पत्र आया है । पत्र-लेखकने अपना नाम नहीं लिखा है । वे लिखते हैं—'विवाहसे पहले मैंने माताजीसे कहा था कि मैं विवाह नहीं करूँगा । इसपर पिताजीने कहा—"यदि तुम्हारी विवाहकी इच्छा नहीं है तो वृन्दावन जाकर भजन करो, जिससे मुझे तुम्हारे विवाहके लिये कर्ज भी नहीं करना पड़ेगा, तुम्हारी विवाह न करनेकी इच्छा पूरी हो जायगी और हम लोगोंको लड़कीवालोंसे यह कहनेका बहाना मिल जायगा कि लड़का भाग गया । हमलोग लाचार हैं ।' इसपर मैंने उनसे कहा कि 'आप अपनी ओरसे काम बंद न करें । लड़कीवाला आप ही मना कर देगा ।' मैंने यह बात एक प्रतिष्ठित पण्डितके भरोसे कह दी । पर ऐसा नहीं हुआ और मेरा विवाह गत वर्ष हो गया । मेरी पत्नी सरल, साध्वी, शीलवती और भगवत्सेवामें दृढ़ प्रेम रखनेवाली है । वह मेरी सेवा करना चाहती है । मेरे गुरुजन मुझे सिर्फ उससे बोलने और सेवा स्वीकार कर लेनेको कहते हैं । मैं 'हाँ' भर लेता हूँ, पर ऐसा मुझसे होता नहीं । मेरे मनमें आता है कि मुझे चाहे नरक क्यों न भोगना पड़े, मैं अपनी जिद्द नहीं छोड़ूँगा, स्त्रीकी सेवा स्वीकार न करूँगा, न उससे बोलूँगा । मैं उसे त्याग देना चाहता हूँ और इसपर आपकी सम्मति चाहता हूँ ।'

इस विचारमें वस्तुतः अब कुछ भी सार नहीं है । विवाह न करना था तो पहले ही दृढ़ रहते, पिताकी बात मानकर स्पष्ट कह देते और भजनमें लगते । बिना इच्छाके किसीका विवाह कौन कर सकता है ? इच्छासे विवाह किया, पत्नी आयी । वह बेचारी सरलहृदया, साध्वी तथा सेवा-परायण भी है । पर आप उसका त्याग करना चाहते हैं—हठवश । यह हमारी समझसे तो एक मूर्खतापूर्ण पाप है । दृढ़ वैराग्यवान् पुरुषोंके लिये भी ऐसी स्थितिमें विचार करना आवश्यक हो जाता है । फिर आपकी तो स्थिति ही दूसरी है । हमारा आपसे बल देकर अनुरोध है कि आप इस प्रकारके पापभरे विचारोंको छोड़कर साध्वी पत्नीका आदर करें, उससे प्रेम करें और उसे निर्दोष सुख पहुँचानेका प्रयत्न करें । आपका मन शीलधर्म-पालन करनेका अथवा अधिक-से-अधिक संयम रखनेका हो तो पति-पत्नी दोनों सोच-समझकर अपने लिये संयमका नियम बना लें और उसीके अनुसार जीवनमें व्यवहार करें; परंतु त्यागकी तो कल्पना ही छोड़ दें । यदि आप हठवश साध्वी पत्नी-का त्याग करनेकी बात सोचेंगे और वैसा करने जायँगे तो मेरी दृष्टिसे यह भारी पापका कार्य होगा और पीछे आपको बहुत पश्चात्ताप करना पड़ेगा । आशा है, आप हमारी बात अवश्य मानेंगे और हमें तुरंत सूचना देंगे कि आपने हमारी सम्मति स्वीकार करके पत्नीके त्यागका विचार सर्वथा छोड़ दिया है और उनसे सप्रेम मिलने और बोलने लगे हैं ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

पानी पिलानेकी सेवा

(१)

विद्यालयसे पानी पीनेकी छुट्टी लेकर अथवा खेलके मैदानमें यों भी बाहर आते तो पीपलके वृक्षके नीचे रुड़ी माँ पानी पिलाने बैठी मिलती। 'रुड़ी माँके रहनेके लिये दूसरा घर है या नहीं? यहाँ किसने बैठाया है?' खानेको कौन देता है?' यह सब जानने-समझनेकी हमारी अवस्था नहीं थी। पानी तो रुड़ी माँ ही पिलाती है, इतना ही जानते थे।

उनके पति साठ-पैंसठकी अवस्थामें असाध्य रोगसे दो-एक महीने पीड़ित रहकर स्वर्गीय हो गये थे। घटना ऐसे घटी। रुड़ी माँने रात-दिन खड़े-पग जागरण करके सेवा की थी। पर किसी समय रुड़ी माँ किसी कामसे थोड़ी देरके लिये चारपाईसे दूर हुई कि उनके पतिदेवने पुकारा—'पानी पिलाना।'

दौड़कर रुड़ी माँ घड़ेमेंसे पानीका गिलास भरकर लायी, इतनेमें तो पतिदेव चल बसे थे। पानी गलेके नीचे उतरनेवाला नहीं था। पुत्र गोपाल खेतसे आया, पिताके मरनेका दुःख उसे भी बहुत हुआ। श्मशान-विधि पूर्ण करके श्राद्ध कर्मके बारहवें दिन सम्बन्धियों और पाँच ब्राह्मणोंको भोजन कराकर यथाशक्ति दान-पुण्य किया।

रुड़ी माँसे पूछा—'माँ! दूसरी कोई इच्छा? रुड़ी माँने तो संकल्प ही कर लिया था—'पानी पिलाना'! यह अन्तिम समयका संकेत था—उसके सेव्य, आराध्य प्रभु देवका। उसने अपने पुत्रसे कहा—

'बेटा! प्यासोंको पानी पिलाना है।'

'अच्छा माँ! आपकी जैसी इच्छा। आप कहो तो प्याऊ बनवाकर किसी स्त्रीको पानी पिलानेके लिये बैठा दिया जाय। भगवान्की दया है। मेरे पिताजी बहुत कुछ छोड़ गये हैं।'

पुत्रके बहुत समझानेके पश्चात् भी रुड़ी माँ स्वयं ही प्याऊपर बैठना चाहती थीं।

विद्यालयके समीप पीपलके वृक्षके नीचे झोपड़ी बनवाकर वहाँ प्याऊ प्रारम्भ किया। प्रधानाध्यापकने कम्पाउण्डके अन्दर व्यवस्था कर देनेकी अपनी इच्छा व्यक्त की। किंतु रुड़ी माँने कहा—'कम्पाउण्डके बाहर बैठनेपर आने-जानेवाले पथिक भी पानी पीते जायँगे।' रुड़ी माँ प्रातःकाल जल्दी स्नान करके कुछ खानेका सामान तैयार करती और उसे पासमें रखकर पानी पिलाने प्याऊपर बैठ जाती। बच्चोंको पानी पिलानेके पश्चात् थोड़ा कुछ खानेको देती, इस प्रकार थोड़ा प्रसाद देनेकी उनकी प्रथा थी।

हम पानी पीनेके पश्चात् थोड़ी देर खड़े रहते। रुड़ी माँ कहती—'जाओ बेटा! आज कुछ नहीं है।' परंतु हम रुड़ी माँको पहचान गये थे। पीछेसे निकालकर थोड़ा-थोड़ा कुछ देतीं। बीस वर्ष रुड़ी माँने पानी पिलाया। रुड़ी माँके परलोकवासी होनेपर पुत्र गोपालने वेतन देकर पानी पिलानेको एक विधवा बहिनको बैठाया। अभी कुछ समय पूर्व हमारे गाँवके अध्यापक हमसे मिलने यहाँ बम्बई आये थे तब हमने उस प्याऊके सम्बन्धमें पूछा। उन्होंने संक्षेपमें बताया कि हाई स्कूल होते ही विद्यालयका स्थान बदल गया, गोपाल भाई दूसरे गाँव चले गये। पीपलके नीचे उस प्याऊके गिर जानेसे समीपके नीमके वृक्षके नीचे ग्रीष्ममें चार महीने प्याऊ नियमित चलता है। गोपाल भाईका पुत्र प्याऊपर बैठनेवाले वृद्ध व्यक्तिको वेतन देते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इस प्रकार तीसरी पीढ़ी भी माँकी थोड़ी स्मृति सुरक्षित रक्खे हैं। यह जानकर मैं प्रभावित हुआ—वस्तुतः पानी पिलाना धर्म्य कार्य है।

—हबीब खांभावाला (अखण्ड-आनन्द)

माल्यार्पणसे विपत्ति टली

(२)

भगवान्‌का वाक्य है'''न मे भक्तः प्रणश्यति।—मेरे भक्तका नाश नहीं होता है।' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण विगत १६ नवंबर ८५ को उस समय लोगोंने साश्चर्य देखा जबकि एक चौदह वर्षीय बालक बहुत बड़ी मिट्टीकी दीवारके नीचे दबा रहा और वह लगभग आधा घंटाके उपरान्त दीवारकी मिट्टी हटानेपर बाहर निकाला गया तो पूर्ण स्वस्थ था, उसके शरीरपर चोटका निशानतक न था और वह बिल्कुल प्रसन्न था।

बिहारके नालंदा जिलामें एक बड़ा-सा गाँव है—कपसीमा। उस गाँवपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है; क्योंकि आजके अनास्थाके युगमें भी वहाँके लोगोंमें श्रीमद्भागवत महापुराण और श्रीमद्वाल्मीकिरामायणकी कथाएँ सुननेकी बड़ी रुचि है। प्रायः श्रीमद्भागवत महापुराणके सप्ताह एवं श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके नवाह यज्ञका आयोजन उस गाँवमें होता ही रहता है जिसमें सभी वर्गके स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध एवं युवक सहर्ष भाग लेते हैं और श्रद्धापूर्वक कथाका श्रवण करते हैं। इसके परिणामस्वरूप गाँवके लोग बड़ी-बड़ी विपत्तियोंसे छुटकारा पा जाते हैं।

१६ नवम्बर ८५ को इस गाँवमें सप्ताह-यज्ञका शुभारम्भ था। कथा-स्थलको तोरणों, वंदनवारों, पताकाओंसे सजाया जा रहा था। सुसज्जित मण्डपमें विराजमान गोपी-वल्लभ भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनार्थ नर-नारियोंका समुदाय उत्कण्ठित था। शुभारम्भमें केवल दो घंटेका समय शेष था। कौसलकुमार नामका चौदह वर्षीय बालक गेंदाके बड़े-बड़े फूलोंका गूँथा हुआ एक सुन्दर गजरा लेकर आया और आचार्यजीके समक्ष उपस्थापित करते हुए बहुत ही विनीत स्वरमें प्रसन्नता-पूर्वक निवेदन किया—'आचार्यजी! यह गजरा चाहे जैसा भी बना हो, मैंने श्रद्धापूर्वक गूँथा है। आपकी बड़ी कृपा होगी, यदि आप इसे मेरी ओरसे भगवान् श्रीकृष्णको अर्पित कर देंगे। कुछ ही क्षण पश्चात् जब वह बालक अपने घर पहुँचा, उसके घरकी एक बड़ी-सी मिट्टीकी दीवार पूरी-की-पूरी गिर पड़ी और वह बालक उस दीवारके नीचे दब गया! चारों ओर कुहराम मच गया। झुंड-के-झुंड लोग घटना-स्थलपर पहुँच गये और महान् अनर्थकी आशंकासे हा-हाकार होने लगा। उसके माता-पिता कातर होकर रो रहे थे। और सभीकी आँखोंमें आँसू थे। चारों ओर मिट्टीके ढह और टूटी दीवारके ढोकोंके बीच उस बालकका कहीं अता-पता नहीं लगता था। बड़ी करुणामयी स्थिति थी।

जितने मुँह, उतनी बातें। कोई कह रहा था, कलियुगमें पुण्य करनेसे विपत्ति तो पड़ती ही है। बेचारा अभी-अभी फूल-माला अर्पित करने गया था और लौटते ही मौतके मुँहमें चला गया। लोग तरह-तरहकी बातें कर रहे थे और सभी किंकर्तव्य-विमूढ़ थे। इसी बीच एक चार सालका बच्चा दौड़ा आया और दीवारके टूटे ढोकेपर खड़ा हो गया। कहने लगा, 'कौसल भइया यहीं पर दबा हुआ है। जल्दीसे यहाँसे दीवारके ढोकेको हटाइए, भैया निकल आयेगा।' उस नन्हेंसे बच्चेकी बातपर विश्वास तो क्या होता, किंतु दीवारके नीचे दबे उस बालकको निकालनेका प्रयास तो करना ही था। कुछ वृद्ध मनुष्योंने भी उस नन्हे बच्चेकी बातका समर्थन किया। जहाँ बच्चा संकेत कर रहा था, उस स्थलसे दीवारके खंडको हटानेका प्रयत्न किया गया। ज्यों ही दीवारका भारी-भरकम खंड कुछ खिसका,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दीवारके नीचे पड़े बालकका शिरोभाग दिखायी पड़ा। बड़ी सावधानीसे लोगोंने दीवारके उस टुकड़ेको हटाया जिसके नीचे बालक अचेतावस्थामें पड़ा था। दीवारका टुकड़ा हटते ही कुछ ही क्षण पश्चात् वह बालक उठ बैठा और फिर खड़ा होकर चलने लगा, जैसे कि उसको कुछ हुआ ही नहीं। सभीके कंठोंसे एक साथ निकल पड़ा—'धन्य है, भगवान्‌की महिमा!'

बालकने बताया कि दीवार गिरते ही ऐसा लगा कि किसी आदमीकी गोदमें हूँ और जरा भी चोट नहीं लगी।

उत्तराके गर्भमें अपने चक्रसे परीक्षित्‌की रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा अपरंपार है। फिर क्या था, चारों ओर प्रसन्नता छा गयी और पूरे विश्वास एवं श्रद्धापूर्वक सप्ताह-यज्ञका समापन हुआ और वह बालक कथा-समाप्ति-पर्यन्त भगवान्‌को फूलोंका गजरा अर्पित करता रहा। यह था माल्यार्पणका पुण्यफल जिससे बालकका मारकेश टल गया।

—योगेश्वर पाठक

नष्ट नीड

(३)

वह मुझे बहुत बुरा लग रहा था। टेबलपर कुर्सी रखकर मैंने उसे खींचकर जमीनपर पटक दिया। कुछ पीला-सा द्रव पदार्थ और श्वेत कण फर्शपर बिखर गये। अंदर बैठी चिड़ियाँ चूँ-चूँ करती उड़ गयीं। वह पंख फड़फड़ाती अपने टूटे घोंसलेतक आती और पुनः लौट जाती। उसका यह क्रम बहुत समयतक चलता रहा।

किताब लेकर पढ़ने बैठा, पर काले शब्दोंके बीच मुझे यत्र-तत्र अनेक चिड़ियोंके छोटे-छोटे गुलाबकी पंखुड़ियों-से बच्चे दीख पड़े। मैंने पुस्तक पटक दी।

भोजन करने बैठा, पर मुझे दीखा—जैसे मेरी थालीमें दालके स्थानपर पीला-सा द्रव पदार्थ और रोटीके स्थानपर वही अण्डोंके श्वेत कण परोसे गये हैं। मैं उठ गया।

बाहर आकर खुले आँगनमें घूमने लगा, पर दूर क्षितिजसे एकके बाद एक दैत्याकार श्वेत अण्डे आते और मेरे निकट आते-आते सूक्ष्म होकर फूट जाते। मेरी नजरोंमें वहीं पीला तरल पदार्थ और श्वेत कण सदा तैरने लगे।

सोचा, बाहर घूम आऊँ। नदी-किनारे रेतमें बड़ी देर बैठा रहा, पर चिड़ियोंके लाख-लाख झुंड एक साथ आकर मेरे सामने करुण क्रन्दन करने लगे।

'ऊँह! ये सब क्या पागलपन है। मैं फिजूल जरा-सी बातको सोचकर इतना परेशान हो रहा हूँ। क्या हो गया। यह भी कोई उद्विग्न होनेवाली घटना है?' सोचकर मैंने सिरको हल्का-सा झटका दिया और उठ खड़ा हुआ।

घर आया तो पत्नीने बताया, मुन्नेको तेज बुखार है। देखा, सचमुच बुखार तेज था।

—'दिनभर पानीसे खेलता रहता है। सर्दी लग गयी है, उतर जायगा।' चार दिनतक बुखारकी हालतमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। डाक्टरको बुलाया तो बताया—'टाइफायड है।'

मुन्ना सुबहसे बेहोशीकी दशामें था। शरीरका तापमान १०४ से कम नहीं हो रहा था। दूधकी पट्टियाँ चढ़ानेके पश्चात् भी हालत चिन्तनीय हो गयी। हम दोनों ११ बजे राततक मुन्नाके बिस्तरके निकट बैठे रहे—मौन शान्त। बहुत चाहनेपर भी मैं इस अशुभ विचारको हृदयसे नहीं निकाल सका कि प्रभुने मुझे अपने अपराधका फल दिया है। मैंने क्यों उन निरपराध चिड़ियोंके अण्डोंको नष्ट किया? और फिर वही क्रन्दन करती चिड़ियाँ, तरल पीत द्रव, श्वेत कण,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लाल-लाल मासूम बच्चे ! विचारोंमें तल्लीन मैं सो गया ।

रातके दो बजे थे, मैं चीखकर उठ बैठा ।

'नहीं, ऐसा मत करो। उसका कोई अपराध नहीं। भगवान्के लिये मुझपर दया करो । क्षमा कर दो मुझे ।'

मैं रोया, गिड़गिड़ाया, प्रार्थना की; पर उस क्रूर विकराल दैत्यने मेरे मुन्नेकी टाँग पकड़कर जमीनपर पछाड़ दिया । वही कुछ पीला तरल पदार्थ और हड्डियोंके श्वेत कण मेरे सामने बिखर गये ।

उफ ! कितना बीभत्स स्वप्न था । मेरी साँस जोरोंसे चलने लगी । पत्नी जाग गयी थी । मुन्ना बेहोश था ।

'क्या हुआ' ?

'कुछ नहीं ।' मैंने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया ।

'मुझे क्षमा कर दो प्रभो । मैंने यह सब जान-बूझकर नहीं किया था । इतना कठोर दण्ड न दो भगवन् ! मैं सहन नहीं कर सकूँगा । मेरे बच्चेके प्राणोंकी भीख । इस बार मुझे निर्दोष समझकर दया कर दो देव !' मैं बच्चोंकी तरह फूट-फूटकर रो पड़ा और मेरी हिचकियाँ तब बंद हुईं जब मुन्नेने आँखें खोलकर क्षीण आवाजमें कहा—'पानी ।'

घटना कई वर्ष पूर्वकी है । मुन्ना पूर्ण स्वस्थ है । उस समयसे मैं हमेशा इसी प्रयत्नमें रहता हूँ कि मुझसे कभी कोई निरपराध जीवहिंसा न हो जाय ।

बाबा तुलसीदासकी एक ही चौपाई हर समय हृदयपर एक प्रहार करती जान पड़ती है और मैं पुनः अपने स्थानपर आ जाता हूँ, पथभ्रष्ट होनेपर भी ।

कर्म प्रधान बिस्व करि राखा ।
जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥

—मोहनलाल

मनन करने योग्य

'और दीपक जल उठा'

आँधी, वर्षा, ओले, तूफान अपने पूरे वेगपर था । उस रात उसे चिन्ता थी अपने लाड़लेकी, जो हर क्षण कालकी विकराल और अन्धकारमयी सीमाकी ओर बढ़ता चला जा रहा था; किंतु वह इतनी साधनहीन हो चुकी थी कि घरमें दीपक जलानेके लिये तेल भी न था । काश, वह अपने दम तोड़ रहे लालको किसी भी मूल्यपर बचा पाती ! यदि और कुछ नहीं तो उसके उन अन्तिम क्षणोंमें वह उस मुरझाकर बिखरनेवाले फूलका मुख तो देख सकती—किसी दीपककी लौमें !!

× × ×

वह आरम्भसे ही इतनी निर्धन हो—यह बात नहीं थी । उसका पति मिलिटरीमें मेजर था और कभी विवश होकर उसने अपने पदसे त्यागपत्र दे दिया था । पर अब वह फिर अच्छी नौकरीपर था और उन सबका निर्वाह बड़े आरामसे हो रहा था । फिर उनके पास अपनी जमीन भी तो थी । अन्य सम्बन्धी भी धनवान् थे । उसका पिता····बादशाहका मुख्य मन्त्री था । अपने पूर्वकर्मों और विधिके विधानोंसे बँधी उस मिलिटरीके नवयुवकके साथ पाणिग्रहण होनेके पश्चात् वह भारत आ गयी थी अपने देशके इतने बड़े और सम्पन्न परिवारकी बेटीके भाग्यमें यह घोर दरिद्रताके बुरे दिन भी विधाताने लिख छोड़े थे, यह किसे पता था ।

× × ×

बात कुछ यों हुई कि उसके पतिपर एक मुकदमा चल गया । झूठा था या सच्चा—यह तो परमात्मा जाने; क्योंकि अभीतक उसका कोई निश्चित फैसला न्यायालयसे नहीं हो पाया था । जमानत न दे सकनेके कारण पुलिस उसके पतिको पकड़कर ले गयी । उस युवतीके यौवनको देखकर सिपाहियों तथा अन्य बुरे पुरुषोंकी नजरें बदल गयीं । उसे भाँति-भाँतिके प्रलोभन दिये जाने लगे—'तुम हमारे साथ चलो । संसारके सब सुख, ऐश्वर्य लाकर तुम्हारे कदमोंमें रख दिये

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जायँगे। मेरे पास रहा करना तुम। किसी भी चीजकी कमी कभी तुम्हें महसूस नहीं होने दी जायगी। छोड़ दो अपने पतिके वापस आनेकी आशा अब।' और ऐसी ही न जाने कितनी और बातें; परंतु वह अपने धर्मपर अटल रही। उसने निश्चय कर लिया था कि जीना है तो धर्मके रास्तेपर चलकर, अन्यथा इससे तो मृत्यु ही भली। बहुत बार उसे आत्महत्याका भी विचार आता, पर अपने पाँच वर्षके लाड़ले और तीन वर्षकी मुन्नीको देखकर साहस न होता। आखिर, वह उन्हें किसके सहारे छोड़ती ? सब सम्बन्धी भी तो मुख मोड़ चुके थे। जिन्होंने पतिकी जमानततक नहीं ली थी, उन्हींके अनिश्चित टुकड़ोंपर बच्चोंको छोड़नेकी अपेक्षा उसने जीवित रहकर कठिनाइयोंका सामना करते हुए पेट भरनेका निश्चय कर लिया। पतिके सिख होनेके कारण उसे गुरु नानकपर अपार श्रद्धा थी, अटल विश्वास था। उसे पूरा विश्वास था कि वही 'बाबा' उसके पतिको छुड़ाकर लायेंगे और उनकी रक्षा भी करेंगे।

पहले तो उसके पास जो पैसे थे, उन्हींकी सहायतासे दोनों समय पेटकी ज्वाला शान्त की जाती, पर धीरे-धीरे वे समाप्त हो गये। उसने एक-एक करके अपने आभूषण भी बेच डाले और जब भूखों मरनेकी नौबत आ गयी, तब कुछ दयालु पड़ोसी कुछ दिनोंतक आटा-दाल भेजते रहे। घरके नामपर उसके पास एक छोटा-सा कमरा था। टूटी-फूटी दो खाटें, एक-दो बर्तन और कपड़ोंके नामको बदनाम करनेवाले कुछ चीथड़े थे और एक दीया, जिसकी लौमें बैठकर वह कुछ काम कर लेती थी रातके समय। बस, यही थी उसकी पूँजी, उसका सर्वस्व। विदेशमें अपने घरकी याद करके उसे क्या होता होगा, इसका अनुमान भी कोई कैसे कर सकता है।

× × ×

रुग्णता और निर्धनताका चोली-दामनका साथ है। जाड़ेके दिन शरीरपर पूरे कपड़े भी नहीं। बच्चेको सर्दी लग गयी और ज्वर हो गया; और वह बढ़ता ही गया। दवातक लानेके लिये उसके पास पैसे नहीं थे। खाना-पीना तो भूल गया और हर तरहसे वह बच्चेको बचानेकी कोशिशमें लग गयी। उसके पास प्रकाश करनेके लिये दीयेमें तेल भी न था और फिर रोज-रोज माँगनेपर तो कोई देता भी नहीं। बाहर बड़े जोरका तूफान आ रहा था। ऐसा लगता था मानो इसीके साथ ही उसके जीवनका दीपक—जिसके सहारे वह आजतक जीवित थी—बुझ जायेगा। अपने 'बाबा' के सामने अपना दुःख खोलकर रख दिया उसने। आँसुओंकी झड़ी लग गयी। सच्चे दिलसे प्रार्थना निकल उठी—'बाबा, मेरे बच्चेको बचा ले। इस परिवारका चिराग बुझ रहा है। तुम्हीं रोक सकते हो। मेरे दीपकको जला दो, मैं अपने लालका मुँह तो देख सकूँ। यदि इस गहन अन्धकारमें ही यह विलीन हो गया तो तुम्हें कोई भी भक्तवत्सल न कहेगा।' दिलसे निकली पुकार सीधे दिलपर असर करती है और फिर, सुना है, भगवान् तो हैं ही बहुत कोमल-हृदय। उसकी पुकार कैसे अनसुनी कर सकते थे। उसने देखा, कमरा एकाएक प्रकाशसे भर गया। वह हैरान रह गयी देखकर कि दीपक जल रहा था, पुरानी छोटी-सी बाती उसमें थी—तेलका नामनिशान नहीं था। उसने सोचा, शायद आँखें धोखा दे रही हैं। भागी-भागी गयी वह पड़ोसिनको बुलाने। पड़ोसियोंने देखा—सबने देखा बच्चा पहलेसे काफी स्वस्थ था और दीया जल रहा था बिना तेलके। और वह दीपक जलता ही रहा सम्पूर्ण रात्रि !

धन्य हैं भक्तवत्सल भगवान् और उसके भक्त।

—श्रीवीना चौधरी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

धर्म ही जीवका सच्चा बान्धव है

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव हि दुष्कृतम्॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥
तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम्॥

'मृत्युके बाद जीवकी सहायता न तो माता-पिता कर सकते हैं, न स्त्री-पुत्र और न कुटुम्बी ही कर सकते हैं। केवल धर्म ही उसका सहायक होता है। जीव अकेला ही जन्मता है और अकेला ही मरता है। जन्म-मृत्युके कष्ट उसे अकेले ही भोगने पड़ते हैं। पाप और पुण्यका फल भी वह अकेला ही भोगता है। प्राण निकल जानेपर निर्जीव शरीरको लकड़ीके टुकड़े अथवा मिट्टीके ढेलेकी तरह छोड़कर भाई-बन्धु उल्टे पैरों लौट आते हैं, कोई उसके साथ नहीं जाता। केवल धर्म उसका वहाँ भी साथ नहीं छोड़ता। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह धीरे-धीरे नित्य कुछ-न-कुछ शुभ कर्मोंका संग्रह अवश्य करता रहे, जिससे वे अगले जीवनमें उसके काम आ सकें। धर्मकी सहायतासे मनुष्य घोर नरकोंके भी पार जा सकता है।'

(मनुस्मृति ४ । २३९-२४२)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

श्रीवृन्दावन-महिमा

वृन्दाटवी सहजवीतसमस्तदोषा दोषाकरानपि गुणाकरतां नयन्ती।
पोषाय मे सकलधर्मबहिष्कृतस्य शोषाय दुस्तरमहाघवयस्य भूयात्॥
वृन्दाटवी बहुभवीयसुपुण्यपुञ्जान्नोत्रातिथीभवति यस्य महामहिम्नः।
तस्येश्वरः सकलकर्म मृषा करोति ब्रह्मादयस्तमति भक्तियुता नमन्ति॥
वृन्दावने सकलपावनपावनेऽस्मिन् सर्वोत्तमोत्तमचरस्थिरसत्त्वजातौ।
श्रीराधिकारमणभक्तिरसैककोशे तोषेन नित्यपरमेन कदा वसामि॥
वृन्दावने स्थिरचराखिलसत्त्ववृन्दानन्दाम्बुधिस्नपनदिव्यमहाप्रभावे।
भावेन केनचिदिहामृति ये वसन्ति ते सन्ति सर्वपरवैष्णवलोकमूर्ध्नि॥

'श्रीवृन्दावन-धाम स्वाभाविक ही समस्त दोषोंसे मुक्त है, यही नहीं, वह दोष-कोषोंको भी गुणागार बना देनेकी सामर्थ्य रखता है। यद्यपि सब प्रकारके धर्मोंने मेरा बहिष्कार कर दिया है—मुझसे नाता तोड़ लिया है, फिर भी मैं आशा करता हूँ कि मेरा सब प्रकारसे पोषण करेगा और मेरे दुस्तर महापातक-समुद्रको शीघ्र ही सुखा डालेगा। अनेक जन्मोंकी महान् पुण्य-राशि जब फलीभूत होती है, तभी श्रीवृन्दावन-धामके दर्शन होते हैं। किंतु जिस महाभाग्यवान् पुरुषको श्रीवृन्दावन-धामके दर्शन हो जाते हैं, कर्म-फल-दाता ईश्वर उसके सारे सञ्चित कर्मोंको विफल कर देते हैं और ब्रह्मादिक भी अत्यन्त भक्तियुक्त होकर उसे नमन करते हैं। संसारमें जितनी भी पवित्र करनेवाली वस्तुएँ हैं, श्रीवृन्दावन-धाम उन सबको भी पवित्र करनेवाला है। चराचर—जितने भी जीव श्रीवृन्दावनधाममें रहते हैं, वे संसारके समस्त जीवोंमें श्रेष्ठतम हैं। श्रीराधिका-रमण श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके भक्ति-रसका तो यह भंडार ही है। अहा! वह समय कब होगा जब परम सन्तोषपूर्वक मैं नित्य इस वृन्दावन-भूमिमें निवास करूँगा? इस वृन्दावनधामका ऐसा अलौकिक प्रभाव है कि इसमें निवास करनेवाले चराचर समस्त जीव-समूह आनन्द-समुद्रमें गोता लगाने लगते हैं। जो कोई भी किसी भी भावसे मृत्युपर्यन्त यहाँ रह जाते हैं, वे सर्वश्रेष्ठ वैष्णवधर्म मुकुट-मणि बन जाते हैं।'

(श्रीवृन्दावनमहिमामृत)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri